तमिलनाडु
का
जैन इतिहास

तमिलनाडु
का
जैन इतिहास

पं. मल्लिनाथ शास्त्री
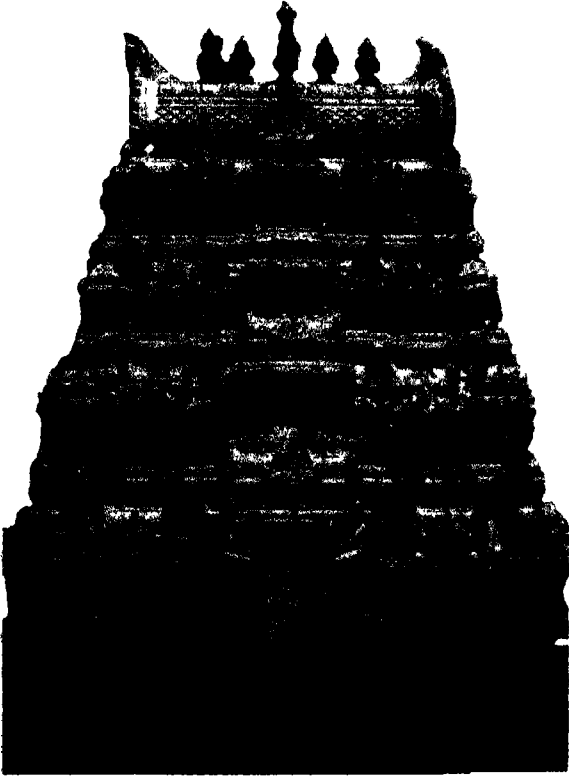
सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य विद्यानन्द जी मुनिराज के शुभाशीर्वचन

"जिस व्यक्ति को अपना और अपने पूर्वजो का इतिहास ज्ञात नही है, वह समाज मे अपनी पहचान खो देता है, वह जारज पुत्र के समान है" — यह कथन उच्चकोटि के एक विद्वान् का है।

प मल्लिनाथ जी ने यह पुस्तक लिखकर एक आवश्यकता की पूर्ति की है। मै उन्हे शुभाशीर्वाद देता हूँ।

तमिलनाडु का जैन इतिहास

प्रेरक : प. पू. सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यानंदजी

लेखक : पं. मल्लिनाथ शास्त्री, मद्रास

आवृत्ती : प्रथम—फरवरी १९९५

प्रकाशक : कुन्दकुन्द भारती
१८ बी. स्पेशल इन्स्टिट्यूशनल एरिया,
मेहरोली रोड,
न्यू दिल्ली ११००६७

अर्थ-सहयोग : अहिंसा प्रसारक ट्रस्ट
८२ बजाज भवन,
नरिमन पॉईंट,
मुंबई. ४०००२१

मुद्रक : लोकमंगल मुद्रण सेवा
कल्याण रोड,
डोंबिवली (पूर्व) ४२१ २०१

मुखपृष्ठ : समुद्रविजय अन्नदाते

किमत : रु. १००-००

Jaina History of Tamilnadu

by
Pt Mallinath Shashtri, Madras.

□

A book giving religious, cultural, litarary history of Jaina Tamilnadu and pilgrimage centres, social traditions, names of towns and villages where presently Jains rehabilitate, Bhattarak mathas etc.

□

Publisher :

Kundkund Bharti
18 B, Special Institutional Area,
Mehroli Road,
New Delhi 100 067

□

Financed By :

Ahimsa Prasarak Trust
82 Bajaj Bhavan,
Nariman Point,
Bombay 400 021

□

Price

Rs. 100-00

प्रकाशकीय निवेदन

यह प्रकृति का कैसा वैचित्र्य है कि चौबीस तीर्थंकरों में सभी तीर्थंकर उत्तर भारत में उत्पन्न हुए और आचार्यों में प्रायः सभी आचार्यों ने दक्षिण भारत में जन्म लिया। तीर्थंकर में तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती सम्राट थे, बीस तीर्थंकर राजा थे और एक तीर्थंकर गणतंत्र में उत्पन्न हुए। उत्तर से तीर्थंकरों की वाणी को स्वयं अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु और उनके १२००० दिगम्बर मुनि धर्मदूत बनकर दक्षिण को ले गये। श्रुतकेवली के आदेश से वे मुनि समस्त दक्षिण भारत में फैल गये। उन्होंने सम्पूर्ण दक्षिण को अपनी क्रीड़ास्थली बना लिया। फलतः सारा दक्षिण जैन बन गया। दक्षिण के पर्वतों और गुफाओं में णमोकार मंत्र गूँजने लगा। नदी-तट जैन मुनियों के संगमों (सम्मेलनों) में पढ़ी जाने वाली कविताओं से मुखरित होने लगे। फलतः दक्षिण की सभी भाषाओं में जैन साहित्य की रचना हुई। तमिल के पाँच महाकाव्यों में चार जैन महाकाव्य हैं। कन्नड़ भाषा के कवियों में अधिकांश प्राचीन कवि जैन हैं।

जैन मुनियों का उपदेश सुनने राजा आता, प्रजा आती और जाते, तो जैन बनकर जाते। उनका उपदेश सुनकर गंगवंश ने जैनधर्म धारण कर लिया और लगभग नौ शताब्दी तक शासन किया। होयसल वंश जैन धर्म में दीक्षित हो गया और शताब्दियों तक राज्य किया। अनेक चालुक्य, चोल, कदम्बवंशी राजा जैन बन गये। किन्तु जैन राजाओं ने कभी जैनेतर प्रजा को सताया नहीं; उनके

धर्मायतनों को परिवर्तित नहीं किया। कभी जैनेतर साहित्य की होली नहीं जलाई और कभी नर-संहार नही किया। किन्तु यहाँ प्रश्न उठता है कि जब दक्षिण में जैनधर्म फल-फूल रहा था, तब क्या कारण है कि वर्तमान में दक्षिण भारत में जैनों की संख्या इतनी अल्प रह गई? वे कौन से ऐतिहासिक कारण रहे थे, जिन्होंने जैनों की संख्या को दक्षिण में इतना कृश कर दिया कि वह संख्या नगण्य हो गई।

प्रस्तुत पुस्तक 'तमिलनाडु का जैन इतिहास' हमारे इन या ऐसे ही प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर है। यह पुस्तक तमिलनाडु के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. मल्लिनाथ शास्त्री ने बड़े परिश्रमपूर्वक लिखी है। पुस्तक का संशोधन जैन समाज के विश्रुत विद्वान् डॉ. प्रेमसागर, बड़ौत, डॉ. राजाराम, आरा और पं. बलभद्र ने किया है। पुस्तक की प्रामाणिकता के लिये एक यह तथ्य ही पर्याप्त प्रमाण है कि इस पुस्तक का प्रकाशन कुन्दकुन्द भारती की ओर से हो रहा है। पुस्तक के प्रकाशन में सौ. शरयू दफ्तरी ने अहिंसा प्रसारक ट्रस्ट की ओर से उदार आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। श्रीमती दफ्तरी ट्रस्ट की संचालिका एवं कुन्दकुन्द भारती की माननीय ट्रस्टी है। मैं इस बहुमूल्य सहयोग के लिये अपनी विदुषी बहन का आभारी हूँ। मैं समाज के उपर्युक्त तीनों प्रतिष्ठित विद्वानों का भी अनुगृही हूँ, जिन्होने अपना बहुमूल्य समय लगाकर पुस्तक का संशोधन किया। मैं तीर्थंकर (मराठी) के सुयोग्य संपादक श्री श्रेणिक अन्नदाते का भी आभारी हूँ, जिनकी देखरेख में मुद्रण का सब कार्य हुआ है।

मैं परमपूज्य आचार्य विद्यानन्द जी महाराज के चरणों में प्रणामांजलि अर्पित करता हुआ उनके चरणों में पुस्तक समर्पित करता हूँ।

कुन्दकुन्द भारती
नई दिल्ली

विनीत
सुरेशचन्द्र जैन
मंत्री

तमिलनाडु का जैन इतिहास

अनुक्रम		पृष्ठ

अभिमत

तमिलनाडु केवल इतना ही नहीं था, जितना कि आज है। उसमें कर्नाटक, आन्ध्र-प्रदेश आदि अनेक प्रान्त शामिल थे। एक प्रकार से वह वर्तमानकालीन दक्षिण भारत था। वह जैन धर्मावलम्बियों का गढ़ था। ऐसा अनेकानेक इतिहासवेत्ताओं के आधार पर सुनिश्चित रूप से कहा जा सकता है। वहाँ कण-कण में भिने जैन धर्म और श्रमण संस्कृति का परिणाम था कि आचार्य कुन्दकुन्द, समन्तभद्र और भट्टाकलंक जैसे विश्रुत विद्वानों का वहाँ जन्म हुआ। वे ज्ञान गरिमा के प्रतीक थे, ऐसा केवल जैन ही नहीं, अजैन भी मानते हैं।

वहाँ जैन धर्म कब से था? यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इस ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि तीर्थंकर महावीर का समवशरण आने से पूर्व तमिलनाडु में जैन धर्म मौजूद था और वहाँ जैन श्रावक थे। इससे एक सीमा निर्धारित हुई कि महावीर के समवशरण, अर्थात् ईसा के ६०० वर्ष पूर्व वहाँ जैन श्रावक थे, किन्तु कब से थे, यह न मालूम हो सका।

जैन लोग कब दक्षिण की ओर गये और कब तमिल लोगों के सम्पर्क में आये, एक जटिल प्रश्न है। किन्तु इसके पूर्व सिन्धु घाटी में होने वाली हलचल से अवगत होना ठीक होगा।

सिन्धु घाटी के आर्य दो भागों में बँट गये थे। एक भाग वह था जो "बलि प्रथा" का विरोधी था और अहिंसा में विश्वास करता था। शायद वे अहिंसा के पूर्ण समर्थक थे। वे बलि दी जाने वाले यज्ञों में विघ्न डालते थे। अर्थात् वे केवल अवरोधक ही नहीं, विघ्नकारक भी थे। दूसरा समुदाय इन्हें निर्मूल करने के लिए इन्द्र से प्रार्थना करता था। "जैनिज्म इन हड़प्पा" में ऐसी ऋचायें भी दी हैं, जिनमें इन्द्र से प्रार्थना की गई है।

यह अहिंसक समुदाय पूर्व की ओर बढ़ा और दक्षिण की ओर भी। पूर्व में उन्होंने काशी, कौशल, विदेह और मगध राज्यों की स्थापना की। इस समुदाय में एक विशेषता थी कि यहाँ

क्षत्रिय ब्राह्मण से ऊँचे माने जाते थे। क्षत्रिय अहिंसा और अध्यात्म के प्रवर्तक थे।

क्षत्रिय मूलतः सैनिक थे। सैनिक होते हुए भी उन्होंने अपने निजी जीवन में अहिंसा धर्म को अपनाया। शायद वे उत्तम कोटि के वीर थे, इसी कारण निरीह पशुओं और निर्दोष कमजोर प्राणियों की बलि में विश्वास नहीं करते थे। पशुओं की बलि देने से इहलौकिक अथवा पारलौकिक उद्देश्य हल हो सकता था, ऐसा वे मानने को तैयार नहीं थे। उनमें यह प्रवृत्ति कहाँ से और कैसे आई, एक तलस्पर्शी खोज का विषय है।

इन क्षत्रिय आर्यों ने हर जगह, जहाँ जहाँ वे गये, बलि-प्रथा का विरोध किया। वे शाकाहारी थे, और शाकाहार पर बल देते थे।

प्रो. ए. चक्रवर्ती ने भवभूति के उत्तररामचरित के एक वृत्तान्त का उद्धरण देते हुए लिखा है कि वाल्मीकि के आश्रम में जब वशिष्ठ गये तो उनके भोजन के लिए एक वत्सतरी (बछिया) का वध किया गया और जब महाराज जनक गये तो पवित्र शाकाहारी भोजन लाया गया।

यह भी सत्य है कि जैन ग्रन्थों में राक्षसों को विद्याधर कहा गया है। कोई जगह ऐसी नहीं, जहाँ उनके लिए राक्षस शब्द का प्रयोग हुआ हो। यहाँ तक ही नहीं, इन क्षत्रिय आर्यों ने विद्याधरों की कन्याओं से शादी-विवाह भी किया था। उनका यह गृह-प्रवेश साधारण नहीं था। इस प्रकार उनके घरों में भी अहिंसा का प्रवेश हो गया। आजकल तत्कालीन लंका के संविधान पर विद्वानों ने विचार किया है। उनका निष्कर्ष है कि विद्याधर साइंटिस्ट थे। वे बलि-प्रथा के विरोधी थे। इसी कारण वे ऋषियों के यज्ञ-हवनों में विघ्न डालते थे।

सिन्धु घाटी के कट्टरपंथी आर्य तमिलनाडु में बाद में पहुँचे। तब वहाँ श्रमण धर्म पतन की ओर अग्रसर हुआ। तो आर्यों का वह जत्था, जो अहिंसक था, पहले पहुंचा और दूसरा दल बाद में– बहुत बाद में। उस समय पहला कमजोर होने लगा। दूसरा हिंसक था। वे हिंसा को धर्म कहते थे। तो अहिंसकों को दबना ही था। मेरी दृष्टि में पहला दल दक्षिण में तब पहुँचा, जब लंका और दक्षिण प्रदेश राक्षसों के अधिपत्य में थे। इसी कारण महावीर से पहले जैनों का वहाँ होना अजूबा नहीं था।

कतिपय विद्वानों का कथन है कि तीर्थंकर महावीर के समवशरण जाने के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वहाँ जैन श्रावक पहले से हों। समवशरण जहाँ भी पहुँचता था, वह स्थान-विशेष ही नहीं, अपितु समूचा क्षेत्र जैन धर्म-मय हो जाता था। हाँ, आचार्य भद्रबाहु (ईसा पूर्व ३०० के लगभग) जब अपने शिष्य सम्राट चन्द्रगुप्त के साथ स-संघ, उत्तरी भारत में अकाल पड़ने पर दक्षिण की ओर गये, तो यह निश्चित था कि वहाँ जैन श्रावक-श्राविका होने ही चाहिये थे, अन्यथा इनके आहार की व्यवस्था कौन करता? इस सन्दर्भ में लेखक ने लिखा है कि "इतिहास-वेत्ताओं का यह कथन गलत है कि तमिलनाडु में जैन धर्म का प्रारम्भ आचार्य भद्रबाहु के जाने के बाद हुआ। वह पहले से था, तभी, उत्तरी भारत में अकाल पड़ने पर भद्रबाहु दक्षिण की ओर गये थे।"

एम. एस. रामास्वामी आयंगर ने अपने ग्रन्थ "Studies in South India" के भाग-१ में इसपर पर्याप्त प्रकाश डाला है। श्री पी. बी. देसाई ने भी "JAINISM IN SOUTH INDIA" में पृष्ठ २६-२७ पर इस हकीकत को मंजूर किया है कि जब आचार्य भद्रबाहु वहाँ पहुंचे, तो जैन श्रावक पहले से थे।

लंका और तमिलनाडु

लेखक का कथन है कि लंका और तमिलनाडु के बीच कभी जमीनी रास्ता था। वहाँ समुद्र नहीं था। राम की कथा के समय तक तो समुद्र था, यह सभी रामकाव्यों में देखने को मिलता है। शायद उसके पहले और बाद में जमीनी रास्ता रहा हो। इसका कोई ठोस सबूत नहीं है। इस सम्बन्ध में शोध खोज की आवश्यकता है। यदि लंका और तमिलनाडु जमीन के रास्ते से जुड़े हुए थे तो दोनों के धर्म, संस्कृति, राजनीति और साहित्यिक गतिविधियों में एक चिन्तन धारा के प्रवाहित होने की सम्भावना है। यह एक दिलचस्प पहलू होगा। लेखक ने अनुसन्धित्सुओं के लिए एक सशक्त अध्याय खोला है।

मुझे लेखक का यह कथन प्रामाणिक प्रतीत होता है कि ईसा से ३६७-३०७ वर्ष पूर्व लंका के राजा पाण्डुकाभयन, जो उत्तरी भारत के सम्राट चन्द्रगुप्त के समकालीन थे, ने अनुराधपुर में जैन साधुओं के रहने के लिये एक गुरुकुल बनवाया था। इसे रेजिडेंशल कालेज कहा जा सकता है। उसने गुरुकुल ही नहीं, अनेक पल्लि (पाठशालाएँ) भी स्थापित की थीं। गुरुकुल में दिगंबर जैन साधु ठहरते और विद्याध्ययन करते थे।

बौद्ध ग्रन्थ महावंश से प्रमाणित है कि आगे चलकर, ईसा से कुछ वर्ष पूर्व इस गुरुकुल को गिराकर संघाराम बना दिया गया था। ऐसा एक प्रसिद्ध ग्रन्थ- "इंडियन सेक्ट्स ऑव दि जैन्स" से भी सिद्ध है। उस समय बौद्ध धर्म प्रबल होने लगा था। इसके बावजूद मध्यकाल में यशकीर्ति नाम के एक भारतीय निर्ग्रन्थ साधु का लंका के राजा ने सम्मान किया। वह साधु वहाँ गया और उसने अनेक सभाओं को सम्बोधित भी किया था।

सम्मान के लिए बुलाये गए साधु अथवा आगे चलकर अनेकानेक मिशनरीज, जो वहाँ गये, किस रास्ते से होकर गये, एक प्रश्न है? इस इतिहास में इसका उत्तर दिया गया है। वह है कि लंका और तमिलनाडु के बीच जमीनी रास्ता था। हम यहाँ आश्चर्यचकित नहीं होंगे, क्योंकि इतिहास के अतीत में क्या कुछ घटित हुआ, सुदृढ़ रूप से नहीं कहा जा सकता।

लंका में जैन धर्म बहुत प्राचीन समय से था। पउमचरिउ से विदित होता है कि रावण पक्का जैन था। उसने तीर्थंकर शान्तिनाथ की रत्न-जटित प्रतिमा इन्द्र से प्राप्त की थी। लंका का पतन होने पर उसने वह प्रतिमा समुद्र में डुबा दी। आगे चलकर कर्नाटक के सम्राट शंकरराय ने समुद्र में खोज करवाई और प्राप्त कर ली तथा अपने राज्य के एक नव-निर्मित मन्दिर में स्थापित कर दी। इसी प्रकार मालि और सुमालि, जो विद्याधरों के सम्राट थे, लंका से एक अन्य जिनेन्द्र-प्रतिमा लाये, जो श्रीपुर के मन्दिर में विराजमान की गई।

चम्पा के महाराजा करकण्डु भी लंका से एक जैन मूर्ति लाये थे और उसे तेरापुर के गुफा-मन्दिर में स्थापित किया था। वह स्वयं लंका गया था और उसने वहाँ की राजकुमारी के साथ शादी भी की थी। समय-समय पर अनेक जैन व्यापारी लंका जाते थे। लंका से जैन सम्पर्क बहुत पुराना है। अतः यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।

प्राचीन ऐतिहासिक काल में, ईसा से छठी शती पूर्व, जैन मिशनरीज लंका गये। उन्होंने वहाँ अनेकानेक जैन संस्थाएँ कायम कीं। उनका प्रभाव इतना अधिक था कि वहाँ के कई राजाओं ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था।

शिव और ऋषभदेव

तमिलनाडु के जैन इतिहास में जैन और शैवों के भीषण संघर्ष की कहानी दी गई है। आठ हजार जैन साधुओं के कत्ल की बात भी लिखी है। किन्तु साथ ही यह भी लेखक का कथन है कि यह वृतान्त किसी जैन ग्रन्थ में नहीं मिलता। हाँ, एक शैव मन्दिर की दरो-दीवार पर उनके चित्र उकेरे गये हैं। प्रतिवर्ष वे लोग इस खुशी को एक जल्से के रूप में मनाते हैं। अर्थात् सैकड़ों वर्ष पूर्व के इस साम्प्रदायिक विष को याद करते हैं।

हर जगह कुछ अच्छे और कुछ बुरे लोग होते हैं। कट्टरपन सदैव हिंसा को प्रश्रय देता है अथवा यूं कह सकते हैं कि उसमें से हिंसा स्वतः झरती है। उस समय भी कट्टरपंथी थे। किन्तु उदारपंथियों की भी कमी नहीं थी। वे सम्प्रदाय निरपेक्ष थे। इस इतिहास में यद्यपि जैन और शैवों के घात-प्रतिघात का सशक्त चित्रण किया गया है, किन्तु उसके भीतर से झाँकती सम्प्रदाय निरपेक्षता भी स्पष्ट देखी जा सकती है।

शिव और ऋषभदेव क्या दो थे? एक ज्वलन्त प्रश्न है। जैन ग्रन्थों में दोनों को एक माना गया है। भट्टाकलंक एक प्रसिद्ध आचार्य थे। उनका एक लोकप्रिय काव्य है— अकलंक स्तोत्र। उसमें लिखा है—

"सोऽस्मान्पातु निरंजनो जिनपतिः सर्वत्र सूक्ष्मः शिवः।" (अकलंक स्तोत्र-१०) मानतुंगाचार्य के भक्तामर स्तोत्र का आज भी घर-घर में पाठ होता है। उन्होंने एक स्थान पर कहा है— नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्रपंथाः ॥ (भक्तामर स्तोत्र-२३) आचार्य जिनसेन ने "हर" शब्द का प्रयोग तीर्थंकर ऋषभदेव के लिए ही किया है। उन्होंने "दुरितारिहरोहरः लिखा है। इसका अर्थ है— "हे तीर्थंकर ऋषभदेव। आप पाप रूपी शत्रुओं का हरण करने से "हर" हैं।

वैदिक ग्रन्थों में भी शिव की दिगम्बर मुद्रा स्वीकार की गई है। "नमः शिवाय" एक प्रसिद्ध स्तोत्र है। उसमें शिव की दिगम्बर मुद्रा का उल्लेख है— "दिव्याय देवाय दिगम्बराय।" भर्तृहरि ने 'वैराग्य शतक' में लिखा है— "एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।" इसी प्रकार 'लिंगपुराण' में लिखा मिलता है—

"नग्नो जटो" निराहारोऽचीरी ध्वान्तगतो हि सः।
निराशस्त्यक्तसंदेहः शैवमाप परं पदम् ॥ (४७/११-१२)

डा. लक्ष्मीनारायण साहू इतिहास के अधिकारी विद्वान हैं। उनके कथन से मालूम

होता है कि तीर्थंकर ऋषभदेव और शिव दोनों अभिन्न हैं और एक ही हैं। कालान्तर में सम्प्रदाय भेद से ये दो भागों में विभक्त कर लिये गये, ऐसा अनुमान है। उन्होंने अपने "उड़ीसा में जैन धर्म" नामक ग्रन्थ में लिखा है, "ऋग्वेद (मं ५, सू. १०) में केशी तथा दिगम्बर का जो वर्णन है, वह जैनियों के भगवान ऋषभदेव और हिन्दूओं के शिवजी को अभिन्न सिद्ध करता है।"

जैनेन्द्र व्याकरण (२/२/१९) में लिखा हुआ मिलता है– "शांकरी जिनविद्या"। नाथ पंथ का प्रारम्भ भगवान शंकर से माना जाता है। अनेक कोषकारों ने शंकर शब्द दिगम्बर जैन अर्थ में लिया है। वाचस्पत्य कोषकार ने शंकर को दिगम्बर जैन से सम्बन्धित बताया है। मेदिनी कोषकार का कथन है, "दिगम्बरः स्यात् क्षपणे नग्ने तमसि शंकरे।" महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय १४, श्लोक १८ में कहा गया है, "ऋषभः पवित्राणां योगिनां निष्कलः शिवः"। हलायुधकोष में भी ऐसा ही लिखा हुआ मिलता है।

डा. रामधारीसिंह दिनकर एवं वाचस्पत्य आदि ने स्पष्टतः शंकर और शिव को दिगम्बरत्व से सम्बन्धित बताया है। ये शिव ऋषभदेव के अतिरिक्त अन्य नहीं थे। ऋषभदेव का एक नामान्तर शिव था। हर, शंकर और शंभु भी उनके ही नामान्तर थे। श्री दिनकर की तो मान्यता है कि शैव मार्ग का विकास जैन साधना से ही हुआ है। वाचस्पत्य ने शिव को जैन का भेद माना है।

यह दुःख का विषय है कि आगे चलकर कुछ सम्प्रदायवादी लोगों ने ऋषभ और शिव को दो पृथक् व्यक्तित्व के रूप में बाँट दिया। जबकी दोनों एक थे। A Peep into Jainism के संशोधित संस्करण में एडवोकेट श्री जयभगवान जैन ने पेज-१० पर लिखा है– "It was again Lord Risabha, who, as will be explained later on, came to be worshipped as Shiva, Shanker, Vishnu and Mahadeva". ऋषभदेव का चरण चिह्न बैल है तो शिव का नन्दी है। दोनों दिगम्बर हैं। मयूर पिच्छिकाधारी दोनों है। शिव जटाधारी हैं, ऋषभ भी लोंच से पूर्व जटाधारी थे। उनकी मूर्तियाँ भी इस रूप में प्राप्त हैं। शिवजी चन्द्रांकित हैं, ऋषभ भी सौम्य चन्द्र जैसे मुखमंडल से सुशोभित हैं। दोनों ही कैलाश-वासी हैं। शिव-पार्वती के संग है तो ऋषभ भी पार्वत्य वृत्ति के हैं। दोनों की मान्यताओं में फाल्गुन कृष्णचतुर्दशी का महत्व है। दोनों एक थे। इतिहास का वह क्षण कितना क्रूर था जब एक महान व्यक्तित्व के दो टुकड़े कर दिये गये।

जैनों का शिक्षा-क्षेत्र में योगदान

बारहखड़ी के पूर्व "सिद्धं नमः" मंगल वाक्य सार्वभौम था। सार्वभौम का अर्थ है कि वह सभी में प्रचलित था। सम्प्रदाय, जाति और वर्ग आदि की सीमाएँ उसे बाँध न सकीं। वह सम्प्रदाय-निरपेक्ष का पावन प्रतीक था। इसका प्रचलन केवल भारत में ही नहीं, अपितु उसकी सीमाओं के बाहर- चीन, जापान, मंगोलिया, तिब्बत आदि देशों में भी बहुत हुआ। मैंने अपने ग्रन्थ "ओ ना मा सी ध म्" में इसका विशद विवेचन किया है।

इस मंगल का मूल था कातंत्र व्याकरण। इसके रचयिता शर्ववर्मा थे। विद्वानों की मान्यता है कि शर्ववर्मा इसके रचियता नहीं, अपितु संकलयिता थे। यह ग्रन्थ समय-समय पर मयूर पिच्छिधारी साधुओं के द्वारा रचा जाता रहा, इसी कारण इसका नाम "कलाप" पड़ा। इसका पहला सूत्र है- सिद्धो वर्णसमाम्नायः। यहाँ से ही "ॐ नमः सिद्धम्" नमस्कारात्मक मंगल वचन प्रारम्भ हुआ। "कातंत्र व्याकरण विमर्श" के प्रास्ताविक में डॉ. भगीरथप्रसाद त्रिपाठी ने लिखा है, "किंच कलापापद पर्यायस्य कातंत्र व्याकरणस्यादावन्ते च जैन परम्परायां "ॐ नमः सिद्धं" इति नमस्कारात्मकं मंगलं बहुगुहस्तलेखेषु दृष्यते।"

सातवाहन राजाओं में सातवें का नाम "हाल" था। यह एक इतिहास-विश्रुत राजा था। लोकप्रिय होने के साथ-साथ विद्वान भी था। प्राकृत भाषा से उसे अत्यधिक प्रेम था। शर्ववर्मा ने महाराजा हाल को कातंत्र व्याकरण पढ़ाया था। तभी से कातंत्र व्याकरण का चहुँमुखी प्रचार हुआ। महाराजा हाल का समय २०-२४ खीस्ताब्द निश्चित था।

कातंत्र का प्रचार भारत में ही नहीं, बाहर भी बहुत हुआ। ईत्सिंग का "सि-तन चांग" जिसे "सिद्ध ग्रन्थ" भी कहते हैं, का नाम "सिद्धो वर्णसमाम्नायः" के आधार पर रक्खा गया। बूलर और कीलहार्न का अभिमत है कि ईत्सिंग का ग्रंन्थ वर्णमाला की बात करता है, कातंत्र की नहीं, किन्तु कातंत्र का उपर्युक्त सूत्र-वर्णसमाम्नायः भी तो वर्ण माला की ही बात करता है। दोनों में अन्तर क्या है? कुछ भी नहीं।

इसके अतिरिक्त यूनचांग ने इसी सन्दर्भ में "शी एर्ह चांग" शब्द का प्रयोग किया है। इसको संस्कृत में द्वादश भाग और हिन्दी में द्वादशाक्षरी अथवा बारहखड़ी कहते हैं। कातंत्र के "सिद्धो वर्णसमाम्नायः" में सिद्ध शब्द के कारण ही, "शी-एर्ह-चांग" का दूसरा नाम "सिद्धिरस्तु" अथवा "सिद्धवस्तु" है। अब यह ग्रन्थ चीन देश में नहीं मिलता। जापान में अब तक इसका प्रचार है। वहाँ इसको "सिद्ध पिटक" या "सिद्धकोश" नाम से पुकारते हैं। यह "सिद्धिरस्तु" की हस्तलिखित प्रति है, जो सन् ८८० में लिखी गई। इस पुस्तक के प्रारम्भ में "ॐ नमः सिद्धम्" तत्पश्चात् १६ स्वर और ३५ व्यंजन दिखाये गए हैं।

श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन के अनुसार बीसवीं सदी के पांचवें दशक तक सिंहल और तिब्बत में कातंत्र का प्रचार था।

मध्य एशिया की खुदाई में प्राचीन कूचा नामक स्थान का पता लगा है। वहाँ अनेक बौद्ध मठों के अवशेष मिले हैं। उनसे विपुल साहित्य प्राप्त हुआ है। साहित्य के अध्ययन से विदित हुआ कि वहाँ कातंत्र व्याकरण का उपयोग किया जाता था। उसे सिद्ध व्याकरण कहा जाता था। वह शायद इसीलिए कि कातंत्र का प्रारम्भ "सिद्धो वर्णसमाम्नायः" से होता है।

प्रसिद्ध आर्ज ब्यूलर का कथन है कि बारहखड़ी का प्रारम्भ "ॐ नमः सिद्धम्" से होता था और इस मंगलपाठ के कारण बारहखड़ी को "सिद्धमातृका" भी कहते है। इसकी प्राचीनता का प्रमाण हुइ-लिन (७८८-८१० ई) से भी मिलता है। उसमे इस मंगलपाठ

को पहली फाड या चक्र कहा है। उस काल में हिन्दू लड़के इसी से विद्यारम्भ करते थे। व्हूलर का यह कथन सत्य है कि प्रारंभ में सिद्ध को नमस्कार करने के कारण ही बारहखड़ी का नाम "सिद्धमातृका" अथवा "सिद्धाक्षर समाम्नायः" पड़ा।

दक्षिण में हिन्दू छात्रों को बारहखड़ी के प्रारम्भ में "श्री गणेशाय नमः" के स्थान पर "ॐ नमः सिद्धम्" पढ़ाया जाता था। राष्ट्रकूट समय से लेकर अभी तक यह सम्प्रत लगातार चलता रहा। इस पर प्राकृत-अपभ्रंश के प्रकाण्ड विद्वान सी. वी. वैद्य का निम्नलिखित कथन दृष्टव्य है। उनकी दृष्टि में "–मास एजूकेशन जैनों के द्वारा नियंत्रित था। बारहखड़ी के प्रारम्भ में उनका "ॐ नमः सिद्धम्" सर्वमान्य था। सार्वभौम था। जैनों की गिरती दशा में भी सर्वजन में प्रचलित रहा। इससे जैन शिक्षा का महत्त्व स्वतः ही अंकित हो जाता है।" (राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ. ३०९-१०)

'भारत में ब्रिटिश राज्य' के रचयिता पं. सुन्दरलाल ने अपने एक भाष्य में कहा था कि मध्यकाल में, उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक जैन पाठशालाओं का जाल बिछा हुआ था। उनमें व्यापार, भाषा और धर्म की शिक्षा दी जाती थी। किन्तु पण्डित जी ने यह कहीं नहीं लिखा कि ये पाठशालाएँ बिल्डिंग रूप में थीं अथवा चटशालाएँ थीं।

सत्य यह है कि जैन साधु और साध्वियाँ समूचे भारत में विहार करते थे। एक जगह टिके रहना नियम-विरुद्ध है। इनके संघ चलते-फिरते विद्यालय होते थे। जाति, वर्ग और सम्प्रदाय से निरपेक्ष होकर वे सभी को शिक्षा देते थे। चातुर्मास में जहाँ भी टिकते, छात्रों की भीड़ इकट्ठी हो जाती थी। भारत में शिक्षा का प्रचार-प्रसार जितना जैन साधु संघों के द्वारा हुआ, अन्य कोई न कर सका।

इनमें एक विशेषता थी कि उन्होंने शिक्षा की कोई विद्या अथवा अन्य किसी जाति विशेष के लिए रिजर्व नहीं किया था। उनका द्वार सभी के लिए खुला था। इसके साथ-साथ यह भी स्पष्ट है कि वे समूचा ज्ञान निःशुल्क बाँटते थे। कोई फीस आदि लेने का प्रश्न ही नहीं था। वे स्वयं नग्न, निरीह और नितांत अपरिग्रही थे।

कुछ नगर जैन विद्यालय और पाठशालाओं के स्थायी केन्द्र थे, जैसे वाराणसी, जौनपुर, राजगृह आदि। मध्यकाल में जगह-जगह पाठशालाओं के भवन भी बन गये थे। हिन्दी के कवि बनारसीदास की प्रारम्भिक शिक्षा ऐसी ही पाठशाला में हुई थी। उनके पिता खड़गसेन भी उसी पाठशाला में पढ़े थे। वहाँ अक्षर ज्ञान और गणित मुख्य थे। शिक्षा का यह हाल था कि वे एक वर्ष में ही व्युत्पन्न हो गये थे। हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार बनारसीदास चतुर्वेदी ने अर्ध कथानक की भूमिका में लिखा है, "ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक नगर में चटशाला या छात्रशाला रहा करती थी, उसमें पाण्डे गुरु जीवनोपयोगी लिखने-पढ़ने और लेखे-जोखे की शिक्षा दिया करते थे।"

"तमिलनाडु में जैन संतगण बिना भेदभाव के अहिंसा, करुणा आदि का प्रचार करते थे। वे जगह-जगह पाठशाला और विद्यापीठों की स्थापना करते थे और उनमें बिना

भेदभाव के शिक्षण-कार्य होता था।" ऐसा इस इतिहास-लेखक का अभिमत है। यह भेद-भाव के बिना शिक्षण कार्य केवल तमिलनाडु में ही नहीं, अपितु समूचे भारत में होता था। जैन साधु नितांत असाम्प्रदायिक थे। वे भारतीय एकता के प्रतीक थे।

सच यह है कि जैन साधु-साध्वी चलती-फिरती पाठशालाएँ थीं। इसी कारण वे जहाँ ठहरते, उस स्थान को पल्लि (पाठशाला) कहने लगते थे। आजकल उसे पल्लिक्कूडं कहते हैं। यह तमिल का शब्द है और इसका अर्थ है– विद्या– संस्थान। ये विद्या–संस्थान कभी-कभी बहुत विशाल रूप धारण कर लेते थे। इतिहास लेखक ने अर्काड जिले के एक प्राचीन शिलालेख का हवाला देते हुए लिखा है, "साउथ अर्काड जिले में जिंजी से दस मील की दूरी पर विडाल नामक गाँव है। इसके निकटवर्ती पहाड़ की गुफा में गुणवीर कुरत्ति नामक अर्जिका ने महिला गुरुकुल खोला था, जिसमें ५०० शिष्याएँ पढ़ती थीं।"

पल्लि शब्द ऐसा प्रचलित था कि जो जैन परिस्थितियों से मजबूर होकर मुस्लिम हो गये थे, वे मस्जिद को "पल्लिवासल" कहते थे। वे मस्जिदें भी विद्या– संस्थान थीं। मन्दिर हो या मस्जिद और जैन भले ही अजैन हो गये हों, किन्तु उन्होंने जीवन पर्यन्त अपने जैनत्व के आचार-विचार नहीं त्यागे।

प्रो. ए. चक्रवर्ती ने "जैन लिटरेचर इन तमिल" में पृ. १३७ पर लिखा है, "जब तमिलनाडु में, दण्ड स्वरूप राजनैतिक कारण से अनेकानेक जैनों को हिन्दू बना दिया गया, इस परिवर्तन के होने पर भी उन्होंने अपने वे आचार-विचार नहीं त्यागे, जब वे जैन थे। वे जैन जीवन और तत्सम्बन्धी आचार-विचार नहीं छोड़ सके।"

जैन धर्म का प्रभाव

आज तमिलनाडु में "SAIVAM" का अर्थ है शिव के भक्त। शैव ब्राह्मण पक्के शाकाहारी होते हैं। ये द्राविड़ ब्राह्मण कहलाते हैं। उत्तरी भारत के गौड़ ब्राह्मण मच्छी-माँस का सेवन करते हैं। बंगाली ब्राह्मण काली देवी के सामने बकरा-बछड़ा आदि काट कर चढ़ाते हैं और प्रसाद-स्वरूप कुछ माँस घर भी लाते हैं। किन्तु द्राविड़ ब्राह्मण कहीं भी जायें, कहीं भी रहें, शाकाहार ही उनका भोजन होता है। इसमें जरा-सी भी अतिशयोक्ति नहीं है कि तमिलनाडु के मन्दिरों में चाहे वे विष्णु के हों या शिव के, पशुओं को नहीं काटा जाता। प्रो. ए. चक्रवर्ती की दृष्टि में यह सब जैनों की अहिंसा का ठोस प्रभाव है, अर्थात् वहाँ के हिन्दुओं ने भी अहिंसा को स्वीकृति दी थी और वह आज तक बरकरार है।

इतिहास-लेखक ने भी एक स्थान पर लिखा है, "जैन लोगों ने कलह के समय अपने धर्म को तो छोड़ा, परन्तु प्राण से प्यारी अहिंसा न छोड़ सके, बल्कि उसे हिंदू धर्म का अंग बना दिया।"

जो जैन मुस्लिम हो गये, वे भी जैनत्व नहीं छोड़ सके। तमिल का एक मुसलमान अभी तक अपने को जैन अलाउद्दीन नैनार मुहम्मद लिखता है। जैनों के प्रति मुसलमानों

के हृदय में उदार भाव था। अर्काड के नवाब ने भगवान आदिनाथ के मन्दिर के लिए जमीन दान में दी थी। ऐसे अनेकानेक दृष्टान्त हैं। जब मुसलमान जैन मूल से रूपान्तरित हुए हों, तो उनके हृदय में जैनों के लिए एक कोमल स्थान बनना स्वाभाविक है।

दक्षिण में जैन धर्म सैकड़ों वर्षों तक महत्वपूर्ण रहा। धीरे-धीरे उसका पतन होने लगा। क्यों? मेरी दृष्टि में अहिंसक को वीर होना चाहिए, मजबूत और दृढ़, जिससे वह हिंसा और हिंसक का मुकाबला कर सके। शायद नवागन्तुक हिंसक लोगों के सामने वे टिक भी न सके। इन नये आये हुओं ने केवल शास्त्रों का ही नहीं, शस्त्रों का भी प्रयोग किया। जहाँ तक शास्त्रों का सम्बन्ध था, जैन सदैव अप्रतिम रहे। शास्त्रार्थ में कोई जीत नहीं सकता था। इसी कारण प्रतिपक्षियों ने कुटिलता और हिंसा का सहारा लिया। इसके अतिरिक्त दक्षिण के राजाओं—पल्लव, चोल और पाण्ड्य का जैनों की उन्नति में कोई सक्रिय योगदान नहीं रहा। वे विमुख हो गये। निष्कर्ष स्वरूप १० वीं शती और उसके बाद जैन धर्म ने तमिलनाडु में अपनी प्रसिद्धि समाप्त कर दी।

कुछ शोध-खोज करनेवालों का कथन है कि जैन धर्म की गिरती हालत में भी, जैन विद्वानों ने अपने बौद्धिक प्रयासों को सुरक्षित रक्खा। के. आर. वेंकटराम अय्यर का यह कथन सत्य है कि "जैन धर्म को शैव और वैष्णव प्रभाव-हीन नहीं कर सके। जैन विद्वान तमिल साहित्य को समृद्ध बनाते रहे। उन्होंने उत्तम काव्य रचना की, व्याकरण, कोष और नैतिक शास्त्रों को लिखा। इससे जनता पर उनकी पकड़ १०वी शती के बाद भी बढ़ती गई। इसके अलावा जैन साधु और साध्वियाँ भी अपने अध्यापन और प्रवचनों से जन-जीवन को प्रभावित करते रहे।"

जैन प्रभाव के कारण ही "तिरुपरुत्तिकुन्ड्रम्" का नाम "जिनकांची" पड़ गया। वहाँ जैन धर्म और तत्सम्बन्धी बौद्धिक प्रयास प्रबलता से चलते रहे। यह उस समय की बात है, जबकि शेष तमिलनाडु में जैन धर्म गिर रहा था। भले ही तत्कालीन परिस्थितियाँ जैन धर्म के विरुद्ध हो गई हों और वहाँ के पीठासीन राजाओं ने अपना हाथ खींच लिया हो, किन्तु वहाँ जैन पल्लि (पाठशाला) जगह-जगह स्थापित होती रहीं और जैन मन्दिर गगन चूमते रहे। यह सब कुछ जैन व्यापारी-संगठनों ने किया था। आज भी जैन सत्ता के मुँहताज नहीं है। वह स्वतंत्र भाव से स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर हैं।

जैन धर्म में भक्ति

दक्षिण में जैनों के पतन का कारण भक्ति आंदोलन नहीं था। यह ठीक है कि जैन धर्म मूल रूप से अध्यात्मवादी था, किन्तु उसमें भक्ति तत्व की कमी नहीं थी। आचार्य कुन्दकुन्द, जिनका जन्म दक्षिण में हुआ, दीक्षा वहाँ ली, तप वहाँ साधा तथा महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना भी वहीं की। यह कथन तथ्य-हीन है कि उनके समयसारादि ग्रन्थों में केवल अध्यात्म है, भक्ति नहीं। मैंने अपने सद्यः प्रकाशित ग्रन्थ "जैन धर्म और भक्ति" में आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य में भक्ति को टटोला है। जो कुछ लिखा, उनके ग्रन्थों पर आधारित है। उन्होंने समयसार की ४१५ वीं गाथा में लिखा है कि भक्ति से परमात्मा मिलता है। कुन्दकुन्द साहित्य के प्रसिद्ध टीकाकार पं. जयचन्द छाबड़ा ने चारित्रपाहुड की

२६ वीं गाथा का अनुवाद करते हुए लिखा– "पंचपरमेष्ठी की भक्ति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, वह आत्मचिंतवन के समतुल्य है। किसी दशा में कम नहीं।" उनकी दृष्टि में आत्मा पर ध्यान केन्द्रित करलो अथवा भक्ति पाठ पढ़ लो, एक ही बात है। आचार्य कुन्दकुन्द ने भावपाहुड में एक स्थान पर लिखा है, "ज्ञान आत्मा में विद्यमान है, किन्तु उसे भक्ति करने वाला भव्य पुरुष ही प्राप्त कर पाता है।"

आचार्य समन्तभद्र का स्वयंभूस्तोत्र और स्तुतिविद्या तथा भट्टाकलंक का अकलंकस्तोत्र जितने प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुए, उतने उनके दार्शनिक ग्रन्थ नहीं। उनके स्तोत्रों में दर्शन का ऐसा भावोन्मेष है, जो आज तक लोगों को भाव-विभोर कर देता है। भावों के प्रशस्त पथ पर चलने में ऐसा आनन्द मिलता है, जो दर्शन की टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों पर नहीं। दर्शन रेगिस्तान है और भाव जल-पल्लवित हरा-भरा मैदान है, जहाँ शीतल मन्द सुगन्ध पवन सदैव प्रवाहित होता रहता है।

इसके अतिरिक्त तमिलनाडु के जैन मन्दिरों में क्या पूजापाठ और स्तुति-स्तवनों का उच्चारण नहीं होता था? स्तुति-स्तवन नहीं पढ़े जाते थे? भजन-कीर्तन नहीं होते थे? यदि हाँ, तो भक्ति जैनों में भी थी। किन्तु यह सच है कि उमने किसी आन्दोलन का रूप धारण नहीं किया। क्यों? कारण था उसकी अध्यात्ममूलकता। जैन भक्त को मालूम था कि उसका भगवान कर्ता नहीं है। वह कुछ दे नहीं सकता। फिर भी माँगता है। क्यों? उसे मालूम है कि माँगने से भगवान भले ही कुछ न दे सकता हो, किन्तु उसकी भक्ति से स्वयं में एक ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है, जिससे तुम्हारी स्वयं की सभी मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं। इस सन्दर्भ में आचार्य समन्तभद्र ने लिखा है–

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे
न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः
पुनाति चित्तं दुरितांजनेभ्यः॥

अर्थ– हे भगवन! तुम्हारी पूजा से कोई अर्थ नहीं, क्योंकि तुम वीतरागी हो। तुम्हारा निन्दा से भी कोई मतलब नहीं, क्योंकि तुममें-से बैर बिल्कुल समाप्त हो चुका है। फिर भी तुम्हारे पुण्य गुणों की स्मृति से हमारा चित्त पाप-मुक्त हो जाता है।

तुम्हारा अपना चित्त, जो पाप-मुक्त हो चुका है,
तुम्हारी मनोकामनाओं को पूरा करने में समर्थ होगा।

भक्त जानता है कि भगवान कर्ता नहीं है, दृष्टा भर है। वह वीतरागी है। उसमें-से राग निकल चुका है। फिर भी यदि उनकी भक्ति करता है तो वह भक्ति सहज रूप से निष्काम ही होगी। अहैतुक होगी। उसे मालूम है कि लेन-देन वाली बात नहीं सध सकती। निष्काम होकर भक्ति करना आसान नहीं है। वह निष्कामता जैन भक्ति क्षेत्र में पनपती रही-चलती रही, यह जैन भक्ति की समझदारी की बात थी। आम-फहम की समझ इस उच्च स्तर तक नहीं पहुँच सकती थी। वह तो साफ-साफ कहता है कि भगवान कुछ

दे, तो हम भक्ति करें, अन्यथा क्या लाभ। व्यर्थ श्रम हमें दरकार नहीं। तो, जैन भक्ति आन्दोलन का रूप नहीं ले सकी।

प्रशंसनीय

भारत गाँव-प्रधान देश है। उसके ग्रामीण अंचल उसके दर्पण हैं। यदि भारत की सही तस्वीर देखनी है, तो वहीं ही देखी जा सकती है। इस इतिहास में तमिलनाडु के दो सौ ग्राम्य क्षेत्रों का सर्वांगीण विवेचन है। यद्यपि लेखक का मुख्य विषय जैन धर्म के अनुयायीगण, जैन मन्दिर, जैन मूर्तियाँ, जैन शिल्प, जैन तीर्थ और जैन साधुओं-साध्वियों और जैन विद्वानों तथा साहित्य का अन्वेषण था, किन्तु उसने सभी धर्मों की विरासत को खुली आँखों से देखा और समझा है। वास्तव में यह तमिलनाडु का जैन इतिहास तो है ही, उससे अधिक गाँव का इतिहास है। इससे तमिलनाडु प्राचीन काल में क्या था, विदित हो जाता है। इस इतिहास का महत्त्व इसमें है कि तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा नहीं गया है। जैसे हैं, वैसे ही प्रस्तुत किये हैं। इतिहास लेखक का यह ईमानदाराना कदम प्रशंसा-योग्य है।

इस इतिहास की प्रेरणा स्रोत हैं— श्रीमती शरयू दफ्तरी। वे बम्बई के वालचंद उद्योगसमूह के श्रीमान लालचंद हिराचंद की सुपुत्री हैं एवं प्रसिद्ध समाजसेविका के रूप में उनकी ख्याति है। वे अहिंसा की प्रतीक हैं। उन्होंने शाकाहार का चतुर्दिक में प्रचार-प्रसार किया है। श्रीमती दफ्तरी बम्बई के प्रसिद्ध और संपन्न घराने की महिला हैं। फिर भी ऐसा सादा जीवन कि आश्चर्य होता है। सादगी उनका जीवन है। "सादा जीवन उच्च विचार" उनमें प्रतिफलित होता है। विपुल सम्पत्ति होते हुए भी, अहंकार नाम मात्र को नहीं। एक दौलतमंद को ऐसा निरअहंकारी होना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। वे हैं, यही उनकी लोकप्रियता का कारण है।

तमिलनाडु, दक्षिण और तमिल-साहित्य पर अंग्रेजी में अनेक ग्रन्थ हैं। हिन्दी में यह पहला ग्रन्थ है, जो जैन सन्दर्भ में पूर्ण है। एतदर्थ, वह प्रेरणा-दीप ही महत्वपूर्ण है, जिसके प्रकाश में यह ग्रन्थ लिखा जा सका। आगे, दफ्तरी जी समाजसेविका ही नहीं, साहित्य-सेविका के रूप में भी प्रख्यात होंगी।

लेखक और श्रीमती दफ्तरी दोनों ही बधाई के पात्र हैं।

डा. प्रेमसागर जैन
निदेशक
दि. जैन मुनि विद्यानंद शोधपीठ
बड़ौत (मेरठ)

उपोद्‌घात

तमिलनाडु, जैन सिद्धान्त और दिगंबर जैनत्व के अतिप्राचीनतम भग्नावशेष का अत्यंत स्थान भूत देश है। यहाँ का स्थान जिनबिम्ब, जिनालय, विज्ञान, कला आदि से ओत-प्रोत है। यहाँ पर जैनत्व के अनमोल जवाहरात बिखरे पडे हैं। इन रत्नों का परिचय होना दिगम्बर जैन समाज के लिये अत्यन्त आवश्यक है। यदि उत्तर भारत की जैनी जनता यहाँ के खण्डहरों का अवलोकन करेंगी तो साफ साफ मालूम होगा कि एक जमाने में जैन संप्रदाय के लोग कितनी तादाद में रहे होंगे और उन लोगों से जैन धर्म की आराधना किस तरह से की गई होगी। यहाँ के याने तमिल प्रान्त के जैन तीर्थ और उन स्थानों को जाने का मार्ग आदि जानना आवश्यक समझा जायेगा। उसके लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी रहेगा।

यहाँ की परम पवित्र तपोभूमियाँ त्यागी महात्माओं के त्याग के रजकणों से भरी पडी हैं। जिस प्रकार हमारे तीर्थंकर परम देवों ने उत्तर भारत को अपने दिव्य चरणों से पवित्र किया है, तदनुसार अत्यन्त उद्‌भट महती प्रतिभा से ओत-प्रोत आचार्यवर्यों ने तमिलप्रान्त को एकदम पवित्र बनाया है। इस प्रदेश में दिगम्बर जैनाचार्यों के संचार ने जैन संस्कृति को अत्यन्त प्रगतिशील बनाया है। मगर कालवश उसका उत्थान पतन हुआ है।

श्रुतकेवली भद्रबाहु महाराज के साथ १२ हजार मुनिराजों का विहार दक्षिण भारत में हुआ था। उनमें से आठ हजार साधुगण तमिलप्रान्त में विहार किये थे। उनके विहार से पवित्रित यह भूमि भग्नावशेषों के द्वारा आज भी उनकी पवित्र गाथाओं की याद दिलाती हुई शोभित हो रही है। काश! जैन धर्म ज्यों का त्यों रहता तो कितना अच्छा होता! अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिमित परिग्रह आदि पंचशीलों का कैसा प्रचार रहता।

भगवान महावीर के मोक्ष चले जाने के बाद उनके पदानुगामी कुन्दकुन्द महाराज

की तपोभूमि इसी प्रान्त में है, जिसका नाम पोन्नूरमलै है। वह पवित्र स्थान उनके महत्व की याद दिलाता हुआ शोभायमान हो रहा है। अकलंक बस्ती आह्वान करता हुआ बता रहा है कि आओ और महात्माओं के चरण चिन्हों से आत्म-संशोधन कर प्रेरणा प्राप्त करलो। दक्षिण मथुरा आदि जिलों में जैन धर्मानुयायी मिट चुके हैं। परंतु यहाँ के सुरम्य पर्वतों की विशाल चट्टानों पर उत्कीर्ण जिनेन्द्र भगवान के बिम्ब और गुफाओं में बनी हुई नमतिकायें तथा चित्रकारी आदि सब की सब अपनी अमर कहानी सुनाती रहती हैं।

यहाँ सैकड़ों साधु-साध्वियों के निवास, अध्ययन-अध्यापन के स्थान, आश्रम आदि के चिन्ह पाये जाते हैं। सिद्धन्नवासल, यानैमलै, कलुगुमलै, समणमलै आदि पहाड़ हैं। वे दर्शनीय होने के साथ साथ आत्मतत्व के प्रतिबोध के रूप में माने जा सकते हैं।

वर्तमान समय में यह प्रान्त उपेक्षा का पात्र बना हुआ है। कर्नाटक प्रान्त भगवान बाहुबली से प्रख्यात है। परन्तु यह प्रान्त विशेष आकर्षणशील वस्तु के अभाव होने के कारण इस प्रान्त की तरफ लोगों का ध्यान नहीं के बराबर है। परन्तु यहाँ की तपोभूमि का अवलोकन करेंगे तो अध्यात्म तत्व से अमरत्व प्राप्त तपोधनों के रजकणों का महत्व अवश्य ध्यान में आ सकता है। जैनत्व की अपेक्षा से देखा जाय तो कोई भी प्रान्त उपेक्षणीय नहीं है। सत्य की बात यह है कि त्यागी महात्माओं से धर्म का प्रचार होता है और टिका रहता है। सैंकड़ों वर्षों से दिगम्बर जैन साधुओं का समागम एवं संचार का अभाव होने से जैन धर्म का प्रचार नहीं के बराबर हैं, परन्तु खद्योत के समान टिम-टिमाता हुआ जिन्दा भी है - अर्थात् सर्वथा नष्ट नहीं हुआ है।

यहाँ की जनता सरल एवं भोली-भाली है। धर्म के प्रति अच्छी श्रद्धा है। व्यवसायी होने के नाते अपने धार्मिक कृत्य को पूर्णरूप से करने में असमर्थ है। यहाँ के जैनी लोग संपन्न नहीं हैं। धर्म प्रचार के लिये भी धन की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। नीति है कि "धनेन विना न लभ्यते क्वापि" अर्थात् धन के अभाव में कोई भी कार्य साधा नहीं जा सकता। इस भूमि में फिर से धर्म प्रचार करने की बड़ी आवश्यकता है। इस पर उत्तर हिन्दुस्तान के संपन्न व्यक्ति अथवा संपन्न संस्था यदि ध्यान देगी तो सब कुछ हो सकता है। अन्यथा ज्यों का त्यों ही रहेगा।

प्राचीन काल में तमिलनाडु के अन्दर जैनधर्म राजाओं के आश्रय से पनपता था। चेर, चोल, पाण्ड्य और पल्लव नरेशों में कुछ तो जैन धर्मानुयायी थे और कुछ जैन धर्म को आश्रय देनेवाले थे। इसका प्रमाण यहाँ के भग्नावशेष और बड़े-बड़े मन्दिर हैं। चारों दिशाओं के प्रवेशद्वार वाले अजैनों के जो भी मन्दिर हैं, वे सब एक जमाने में जैन मन्दिर थे[1]। वे सब समवशरण की पद्धति से बनाये हुए थे। बाद में जैनों का ह्रास कर ले लिये गये थे। अब भी बहुतसे अजैन मन्दिरों में जैनत्व के चिन्ह पाये

---

१ उनके नाम में जिनकांं (जिनपुर) गुपुर जाने प्रयोग कर सकता है। इससे पता चलते हैं कि एक जमाने में वह जिन मन्दिर था।

जाते हैं[१]।

इस पवित्र भूमि में जगत्प्रसिद्ध समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक, सिंहनन्दी, जिनसेन, वीरसेन और मल्लिषेण आदि धुरंधर महान ऋषियों ने जन्म लिया था। यह पावन स्थान उन तपोधनों का जन्मस्थान होने के साथ साथ उनका कार्यक्षेत्र भी रहा था। यहाँ का कोई भी पहाड ऐसा नहीं है जो जैन सन्तों के शिलालेख, शय्यायें, वसतिकायें आदि महत्त्वपूर्ण चिन्हों से रिक्त हों।

वर्तमान में यहाँ के मन्दिरों के जीर्णोद्धार के लिए अखिल भारतवर्षीय दि. जैन महासभा एवं भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी इन दोनों संस्थाओं की ओर से काफी सहायता मिल रही है। उनकी सहायता से कई मन्दिरों का जीर्णोद्धार हुआ है। करीब पन्द्रह साल पहले (१९७७) आचार्य निर्मलसागरजी महाराज पधारे थे। वे करीब छे साल तक रहे। उन्होंने सारे तमिलनाडु में विहार किया। उसके कारण जैनधर्म का काफी प्रचार हुआ था। उसके बाद आर्यिका गणिनी १०५ विजयमती माताजी का आगमन हुआ था। उन्होंने भी छे साल तक सारी जगह विहार कर काफी प्रचार किया था। तदनन्तर आर्यिका १०५ श्री सुप्रकाशमती माताजी एवं सुभूषणमती माताजी इन दोनों का आगमन हुआ था। उन दोनों के कारण से भी जैन धर्म का अच्छा प्रचार हुआ था।

समझने की बात है कि धर्म का प्रचार त्यागियों से है, हो रहा है और होता रहेगा। क्योंकि त्यागी लोगों को आहार, जप-तप-अनुष्ठान और धर्म प्रचार के सिवाय और कोई काम नहीं है। लोग भी उनकी वाणी का आदर करते हैं। गृहस्थी में बसनेवाले श्रावकों को सैकडों काम रहते है। नित्यप्रति देवदर्शन करने के लिए भी उन्हें अवकाश नहीं मिलता। आजकल के नौजवानों के दिल में कालदोष एवं वातावरण के कारण धर्म के प्रति श्रद्धा कम होती जा रही हैं। सिनेमा, ड्रामा, रेडियो, टीवी, विडियो आदि के विषय में दिलचस्पी ज्यादा दिखाई दे रही हैं। बिरला ही घर ऐसा होगा जहाँपर रेडियो और टीवी नहीं रहते हों। लोगों के दिल में कामवासना की जागृति ज्यादा दिखाई देती है। आचार-विचार दूर होता जा रहा है। भविष्य अन्धकार सा दिखता है। पाश्चात्य देशों की शिक्षा भी इसका एक मुख्य कारण है। थोडे दिनों में सदाचार का नामो-निशान रहना भी मुश्किल सा दिख रहा है। पाश्चात्य शिक्षा के कारण युवक और युवतियाँ स्वतन्त्र हो गये हैं। माता-पिता के आधीन नहीं रहते। ऐसे जमाने में धर्म धारणा कहाँ तक रहेगी यह बात समझ में नहीं आती। फिर भी त्यागी महात्माओं का संपर्क बार-बार मिलता रहेगा तो थोडा बहुत सुधार होने की संभावना है।

तमिलनाडु में जैनाचार्यों से विरचित नीतिग्रंथ बहुत हैं। जैसे तिरुक्कुरल, नालडियार, अरनेरिच्चारं आदि। ऐसे महत्त्वपूर्ण नीतिग्रन्थ होते हुए भी लोगों के दिल में सुधार नहीं हो पाता। हिंसा कांड की भरमार है। साधारण जैनेतर लोग तो छोटे-मोटे देवताओं की पूजा एवं, भक्ति में लगे हुए हैं। वे लोग मनौति करते हैं कि अमुक कार्य

---

१. नागर कोयिल

पूरा हो जाय तो बकरे और मुर्गियों को बलि देंगे। सरकार की तरफ से "कालि" आदि देवियों के सामने बलि देने को मना है। फिर भी कुछ दूर जाकर छिपछिपाते हुए बलि देते ही रहते हैं। लोग अज्ञानवश अनाचार करते हैं। उन्हें रोकना असंभव सा दिख रहा है।

यहाँ भट्टारकों की मान्यता है। यह प्रथा एक जमाने में सारे भारत में थी। उधर (उत्तर में) धीरे-धीरे मिट चुकी है। दक्षिण में अब तक मौजूद है। वर्तमान में मेलचित्तामूर के अन्दर लक्ष्मीसेन भट्टारक जी है। उनकी मान्यता में भी शिथिलता देखी जा रही है। तमिलनाडु, कर्नाटक और महाराष्ट्र में भट्टारकों की मान्यता अब भी मौजूद है। मैं समझता हूँ कि जैन धर्म के रक्षार्थ यह मान्यता आदि शंकराचार्य के बाद ही हुई होगी। आदि शंकराचार्य जैनधर्म के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने मठ की स्थापना कर कन्याकुमारी से हिमालय तक हिंदूधर्म का प्रचार किया। जैन धर्म का ह्रास होते देखकर जैनी लोगों ने भी दिल्ली, कोल्हापूर, जिनकांचि, पेनुगोण्डा आदि स्थानों में मठ की स्थापना कर जैन धर्म की काफी रक्षा की थीं। न जाने उत्तर भारत में क्यों भट्टारक परंपरा खतम कर दी गई? लोगों का कहना है कि शिथिलाचार के कारण से ही यह परंपरा नष्ट हुई। कुछ भी हो दक्षिण में अब भी मौजूद है।

तमिलप्रान्त की प्रथा यह है कि जैनियों के लडके-लडकियों को पहले पहले भट्टारकों से ही पंचनमस्कार महामंत्र का उपदेश दिलाया जाता है। लडकों को पंच नमस्कार मन्त्रोपदेश देते समय जनेऊ पहनाया जाता है। जनेऊ का प्रचार यहाँ अब तक चलता आ रहा है। कुछ नौजवान लोग इससे दूर होते जा रहे हैं। दुबाल कृष्णप्प नायकन के जमाने में सारे के सारे जैन अजैन हो गये। उनमें से वर्तमान के जैन लोग जनेऊ पहना कर जैन के रूप में परिवर्तित किये गये। बाकी लोग शैव धर्मानुयायी के रूप मे वैसे ही रह गये। अब वे लोग मौजूद हैं। इस का मतलब यह है कि एक जमाने में जैन धर्म की रक्षा जनेऊ से हुई थी, इसे कभी नहीं भूल सकते।

वर्तमान में यहाँ रहनेवाले जैन लोग ज्यादातर कृषक हैं। अर्थात् खेती करनेवाले हैं। ये लोग गाँवों में रहते हैं। जैनियों के सैंकडों गाँव हैं। जैनियों के लडके अब पढने लग गये हैं। अंग्रेजी का प्रचार ज्यादा है। अपने जैन युवक नौकरी भी करते हैं। वकील, इंजिनियर, डाक्टर, आडिटर और अध्यापक आदि पदवी पर रहते हैं। धनाढ्य नहीं के बराबर हैं। हर गाँव में जैन मन्दिर दुरवस्था में है। धनाभाव के कारण कुछ मन्दिरों का जीर्णोद्धार नहीं हो पा रहा है। पुरुषों की अपेक्षा नारियों को धर्म के प्रति श्रद्धा ज्यादा है। कुछ लोग देवदर्शन आदि नित्य कर्म करते हैं। फिर भी शिथिलता पाई जाती है। परन्तु सर्वथा अभाव नहीं है।

यहाँ की तमिल भाषा में ग्रन्थ बहुत है। धनाभाव के कारण कुछ अप्रकाशित भी हैं। जैन ग्रन्थों को जैनियों की अपेक्षा अजैन लोग प्रकाशन में लाते हैं। क्योंकि जैन धर्म के ग्रन्थ उत्तमोत्तम है। ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ अन्य धर्म में नहीं हैं। इसका उदाहरण नीलकेशि, जीवक-चिन्तामणि, मेरुमन्दरपुराण आदि हैं। जैन लोगों की अपेक्षा अजैन

लोग इन्हें चावसे पढते हैं।

यहाँ का मौसम बड़ा अनुकूल है। यहाँ न तो गर्मी है और न सर्दी। समशीतोष्ण है। आश्विन कार्तिक बरसात का मौसम है। यहाँ पर अधिकतर धान और मूँगफली पैदा होती हैं। गन्ना भी पैदा किया जाता है। चार-पाँच सालों से बरसात का अभाव रहा। बरसात के अभाव के कारण कृषकों को बहुत नुकसान हुआ। गत साल अच्छी बरसात हुई। यहाँ के लोगों का मुख्य खाना चावल है। कभी कभी गेहूँ का उपयोग किया जाता है। हलका खाना होने से चावल जल्दी हजम हो जाता है। जैन और ब्राह्मणों को छोडकर अन्य लोग माँसाहारी होते हैं। गाँवों में जैनियों का निवास स्थान अलग ही रहता है। वहाँ माँस बेचनेवाले जाते ही नहीं है। इस तरह जैन लोग गाँवों से पृथक् रहकर अपना आचरण करते हैं। अन्य मतवाले जैनियों का आदर करते हैं। परन्तु आजकल कम होता जा रहा है।

यहाँ की जैन संस्कृति का ह्रास अधिकतर शैववालों से हुआ है। एक जमाने में तमिलनाडु जैन वाङ्मय से और कलाकौशल से समृद्ध था। यह ऐतिहासिक तथ्य है। ऐसा कलाकेन्द्र-देश इस तरह अवनति की हालत में आने का कारण क्या था? मतद्वेष! धर्म के नाम से जो संघर्ष हुआ था, उसी कारण से यह हालत हुई। असत्य के द्वारा सत्य छिपाया गया था। अहिंसावादी धर्मात्मा लोगों को खतम कर दिया गया था। अन्य लोगों का विचार यह रहता था कि अहिंसावादी रहेंगे तो अपना हिंसात्मक कांड नहीं चलेगा। अतः इन लोगों को किसी तरह से खतम कर देना है। इस तरह कंकण (राखी) बाँध कर नाश किया गया था। प्रजा अनभिज्ञ थी। उसे सत्य-असत्य का विचार नहीं था। अनभिज्ञता के कारण झूठे चालबाजियों के जाल में प्रजा फंस जाती थी, तथा अकृत्यों को भी कर डालती थी।

कौटुंबिक, जातीय, धार्मिक कोई भी वैमनस्य याने विद्वेष होता हो तो उससे होनेवाली भवितव्यता पर मानव की दृष्टि नहीं जाती। चाहे सगे-संबंधि क्यों न हो, किसी न किसी तरह से विपक्षवालों को हरा देना ही एक मात्र प्रण लिया जाता था। यह चरित्र-प्रसिद्ध प्रामाणिक बात है।

इतिहास पर जरा दृष्टि डालिये। पृथ्वीराज को हराने के लिये जयचन्द ने मुहम्मद गोरी को बुलाया था। जयचन्द को मालूम नहीं था कि पृथ्विराज की जो हालत होगी, एक दिन वही हालत अपने को भुगतनी पडेगी। क्रोध से अन्धा व्यक्ति इस बात को कहाँ सोचता है? फिर जयचन्द की क्या हालत हुई थी, दुनियाँ जानती है। इसी तरह इब्राहिम लोदी ने अपने रिश्तेदार को हराने के वास्ते बाबर को बुलाया था। परन्तु बाद में इब्राहिम लोदी की क्या दशा हुई थी? इसका इतिहास साक्षी है।

इसी तरह ८ वी सदी में आपस के वैमनस्य के कारण तमिलनाडु में भी दो साम्राज्य खतम हुए। कांचीपुर के पल्लव नरेश का राज्य एवं दक्षिण मधुरा के पाण्ड्य नरेश का राज्य, इन दोनों की हालत भी यही रही।

पहले के जमाने में कोई भी धर्म हो वह पनपने एवं सुरक्षित होने के लिए

राज्यसत्ता की जरूरत पड़ती थी। "यथा राजा तथा प्रजा"। राजा जिस धर्म को अपनाता है या आदर करता है, उसकी उन्नति होती थी। प्रजा के अन्दर न्याय और अन्याय के विषय में विचार करने की न तो शक्ति थी और न कर सकती थी। राजा किसी भी धर्म को या धर्मवालों को खतम करना चाहे तो वह आसानी से कर सकता था। न तो प्रजा पूछ सकती थी और न कोई दूसरा पूछ सकता था। राजा सर्वेसर्वा था और उसकी हुकूमत प्रजा पर सर्वोपरि थी।

८ वीं सदी तक तमिलनाडु में जैन धर्म फलफता रहा। जैन धर्म का प्रचार-प्रसार यह था कि लोगों में अहिंसा का अस्तित्व हो, याने सभी अहिंसा के पुजारी रहें। साथ ही साथ जनता के आचरण में सत्य और सदाचार का परिपालन होता रहे। कुछ हिंसावादी लोगों को यह पसन्द नहीं आया और वे लोग विरोध करने लगे। बस, यही बात सत्य है।

तमिलनाडु के अन्दर शुरु से जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव धर्म के लोग अपने-अपने आचरण करते आ रहे थे। राज्यसत्ता जिस ओर झुकती वह धर्म बढता और जिस ओर न झुकती वह धर्म घटता रहता था। प्रजा इस पर कुछ नहीं कर सकती थी। उसे न अधिकार था और न विचारशीलता थी। लेकिन ये चारों धर्मवाले प्रेमभाव से मिलजुल कर नहीं रहते थे, अर्थात् आपस में लड़ते रहते थे।

जैन, बौद्ध दोनों अहिंसावादी थे। जैन लोग अहिंसावादी होने के साथ साथ माँसाहार के विषय में तीव्र विरोधी थे। बौद्ध लोग माँसाहार के विरोध में कुछ भी कहे बिना सिर्फ अहिंसा प्रचार किया करते थे। इस विषय में जैन लोग सहमत नहीं थे। जैनों के ग्रन्थ माँस खाने पर खूब खण्डन करते थे। उदाहरण के लिये देखिये - तमिलनाडु के नीतिप्रधान कुरल काव्य में बताया गया है कि--

कोल्लान फुलालै मरुत्तानै कैकूप्पि - एल्ला

उयिरूं तोलुं।

इस का मतलब यह है कि जो मानव हिंसा नहीं करता है, साथ साथ माँस का भी त्यागी रहेगा तो, उसे संसार के सारे जीव हाथ जोड कर नमस्कार करेंगे।

देखिये, कितनी मधुर बात है। शायद बौद्धों का खण्डन करने के लिये ही तिरुक्कुरल के कर्ताने अहिंसा के साथ साथ माँस त्याग पर भी जोर दिया हो। इस तरह जैन धर्म का दृष्टिकोण लोगों के आचार-विचार पर केन्द्रित था। इसलिये जैनाचार्योंने तिरुक्कुरल, नालडियार, अरनेरिच्चारं आदि नीतिग्रन्थों की सृष्टि की थी। इस तरह भरमार नीतिग्रन्थों की रचना किसी भी अन्य भाषा में किसी भी प्रान्त में नहीं देखी जा सकती है। इस तरह नीतिप्रधान आचरण भी कुछ हिंसामय क्रियाकाण्डवालों को पसन्द नहीं आता था।

हम देखते हैं कि दुनियाँ के अन्दर धर्म के नाम पर नीतिप्रधान सदाचार का प्रचार होवे तो उसे भी अन्य धर्मवाले सहन नहीं करते। चाहे न्याय हो अथवा अन्याय हो, किसी न किसी तरह से उस धर्म को समूल नष्ट करने के लिये उतारू हो जाते थे।

उसके लिये राज्यसत्ता की जरूरत पडे तो उसे भी अपनी तरफ खींचने के लिये तैयार हो जायेंगे। बस, यही हालत तमिलनाडु में जैन धर्म की हुई थी।

जैन धर्म की उन्नति के समय में शैव-वैष्णव धर्म उतनी उन्नति पर नहीं थे। तमिलनाडु में जैनधर्म को गिराने में शैव धर्मवाले आगे रहे। वैसेही कर्नाटक में वैष्णव धर्मवाले आगे रहे।

पहले शैव धर्म में भी हिंसा का जोर नहीं था। बाद में कापालिक वाममार्ग के लोग आकर घुमे। वे लोग हिंसामय क्रियाकांड पर जोर देने लगे। जैन लोग हिंसा के विरोधी थे ही। इसलिये जैन लोगों को अलग करने एवं नीचा दिखाने की दृष्टी मे वेद को आधारशिला बना कर जैन लोगोंको अविरत, अन्यविरत, अयज्ञ, अतान्त्रिक आदि शब्दों के द्वारा खण्डन करने के साथ साथ मांसाहार की पुष्टि करने लगे।

उन लोगों का विचार यह था कि साधारण जनता को अपनी तरफ खींचना है। वह सदाचार को बोझ सा समझती है। माँस खाना, मदिरा पीना, भोग भोगना और मनमानी चलना यह सब के लिये इष्ट है। इस पर नियन्त्रण रखना साधारण लोगों के लिये एक तरह बोझ (Burden) है। इस तान्त्रिकवाद को वे लोग अच्छी तरह समझते थे। अतः उन लोगों का प्रचार इस तरह होने लगा कि देवताओं के नाम पर बलि देना धर्मशास्त्र के अनुसार अनुचित नहीं है। बल्कि उचित ही है। शिवजी ने नरबलि चाही। देखो, इस का आधार तिरुतोंड नायनार पुराण है। माँस खाना अनुचित नहीं है। क्योंकि शिवजीने कण्णप्प नायनार से दिये हुए माँस को खाया[1]।

कापालिक लोगों के संबन्ध होने के बाद ही शैव धर्म में कमियाँ आने लगीं। कापालिक लोगों को मदिरा पीना, माँस खाना, भोग भोगना सर्वसाधारण था। अतः कुछ लोग प्रजा को अपनी ओर खींचनें का प्रयत्न कर रहे थे।

उस समय जैनधर्म का जोर था। तिरुक्कुरल, नालडियार, अरनेरिच्चारं आदि आचार ग्रंथों का प्रचार होने से कापालिक उन्हें अपने मार्ग पर खींचने में असमर्थ हो रहे थे।

उसके बाद उन लोगों से एक नाटक खेला गया। एक व्यक्ति के दो बच्चे थे। एक लडका, एक लडकी। लडके का नाम था तिरुनावुक्करसु और लडकी का नाम था निलकवती। तिरुनावुक्करसु बडा हो गया था। उसका कापालिक मार्ग पर आदरभाव था।

संबन्धर नाम का एक व्यक्ति था। उसको भी कापालिक मार्ग में आदरभाव था। इसलिए संबन्धर और तिरुनावुक्करसु दोनों मिलकर षड्यन्त्र रचाने लगे। उन लोगों का प्लान (Plan) यह था कि तिरुनावुक्करसु को कपट जैन संन्यासी बनाया जाय। उसे पाटलीपुत्र (तिरुप्पापुलियूर) जैन मठ में शामिल करा दिया जाय। जैन साधु के बराबर सारा आचरण रहें। फिर क्या करना है? उसे पीछे बताया जायगा।

इस कूट नीति के अनुसार तिरुनावुक्करसु को कपट जैन संन्यासी बनवाकर

---

१. तमिलरवीथिइ, पेज - १०

पाटलीपुत्र के जैन मठ में प्रवेश करा दिया गया। जैन साधु होने के बाद उसका नाम "धर्मसेन" रखा गया। जैन साधुगण मायाचार से दूर रहनेवाले थे। उन को इन लोगों का कपट व्यवहार मालूम नहीं था। वे लोग धर्मसेन को सच्चा साधु समझते थे। कुछ दिन ऐसा चलता रहा। संबन्धम और तिलकवती (तिरुनावुक्करसु की बहन) दोनों इसपर निगरानी रखते थे।

उसके बाद एक दिन "धर्मसेन" (तिरुनावुक्करसु) नाम का कपट संन्यासी पेट दर्द का बहाना बना कर एकदम चिल्लाने लगा। जैन साधुगण वास्तव में दर्द समझकर मणि-मन्त्र-औषधि के द्वारा चिकित्सा करने लगे। दर्द शान्त नहीं हुआ। बढ़ता ही गया। वह जोर-जोर से चिल्लाकर रोता था। वास्तव में पेट दर्द होता तो चिकित्सा से ठीक हो जाता। यह तो मायाचार था। कैसे शान्त होता? जैन साधुगण असमंजस में पड़ गये। क्या किया जाय? इतने में यह समाचार सुनकर धर्मसेन की बहन तिलकवती आयी। भाई को तसल्ली दी और कहने लगी कि शैव धर्म को छोड़ने से ही यह हालत हुई। तुम पर भगवान शिवजी का कोप है। यह सब उनकी माया है। घबराओ मत। मैं शिवजी की विभूति (राख, शैव लोग राख को विभूति कहते हैं) लायी हूँ। इसे शिवजी का नाम लेकर पेट पर लगाओ। सब ठीक हो जायगा। ऐसा ही लगाया गया। फौरन दर्द ठीक हो गया। अर्थात् ठीक हो जाने का दृश्य दिखाया गया[1]। यह नाटक का पहला दृश्य था।

फिर लोगों में यह प्रचार शुरु कर दिया गया कि जो पेट-दर्द जैनों के मणि-मन्त्र-औषधि आदि से ठीक नहीं हो सका, ऐसा भयंकर दर्द शिव महाराज की राख से एक क्षण में ठीक हो गया। देखो, शिव जी की महिमा। इस तरह शिव महिमा के बारे में खूब प्रचार करने लगे। कपट संन्यासी के रूप में जो "धर्मसेन" था, वह जैनधर्म को छोड़कर फिर से शैव धर्म में आ गया और "अप्पर" के नाम से शैव भक्तों में प्रधान बन गया था। इस तरह यह पहला नाटक था।

उन लोगों का प्रचार यह था कि जो कुछ भी कर लो परवाह नहीं। परन्तु शिवजी पर भक्ति करना है। शिवजी सब को क्षमा कर देंगे। लोग अपनी हालत से मुक्त हो जायेंगे। जैनों के ज्ञानमार्ग में कुछ नहीं है। केवल आचरण पर जोर देते रहते हैं। ढोंगी हैं। मायाचारी हैं। उन लोगों की बात पर विश्वास करना नहीं। इस तरह उन लोगों का प्रचार होता रहता था।

कापालिकों का यहाँ तक याने हद से ज्यादा प्रचार था कि जितना भी भोग कर लो परवाह नहीं, शैव भक्त होकर शिवजी की भक्ति करने लग जाय तो भगवान शिवजी क्षमा कर देंगे[2]। ललाट पर राख लगाओ और रुद्राक्ष (एक तरह फल की माला) गले में रहे तो काफी है। अन्य कोई आचार-विचार के ऊपर ध्यान देते फिरने की जरूरत नहीं है। इस तरह भक्ति मार्ग पर जोर देते हुए प्रचार करने लगे। साधारण प्रजा कुछ

---

१. समिक्लवीलिया पेज - १७   २. समिक्लवीलिया - २५

समझती नहीं थी। जो मार्ग आसान पड़ता है, जिसमें कठिनाई नहीं है, उसे अपनाने लग जाती थी।

इस तरह भक्ति मार्ग का प्रचार करने के साथ साथ जैन मन्दिरों के जिनेन्द्र भगवान को हटा कर बलात्कार के साथ शिवलिंग की स्थापना करते जाते थे। जहाँ कहीं इस तरह जबरदस्ती से मन्दिरों को परिवर्तित किया गया था, उक्त गाँव के नाम आज भी जैनत्व को जता रहे हैं। जैसे अरहन्त नल्लूर[1] जिनप्पल्लि आदि।

अप्पर (तिरुनावुक्करसु) के साथ सम्बंधन नाम का व्यक्ति मिला हुआ तो था ही। इन दोनों का विचार यह था कि किसी न किसी तरह से आचार्य वसुनन्दी से स्थापित मूल संघ को खतम करना है[2]। उक्त संघ की शाखायें तमिलनाडुभर में फैली हुई थी। जैन धर्म पर उनका प्रचार जोरदार था। वे (जैन लोग) मरते दम तक तर्कवाद करते थे। वें तर्क शास्त्र में निपुण थे। इसलिये उन शैव भक्तों का विचार यह था कि उन्हे (जैन तर्कवादियों को) जीतना है तो कपट व्यवहार से ही जीत सकते है न कि तर्कवाद से। इस का रास्ता क्या है? इसे ढूंढना आवश्यक है। यह कापालिक शैवों का विचार था।

सम्बंधन को दैवी शक्तिमान एवं शिवजी के दूत के रूप में प्रचलित किया जाता था। यह बात राजा पाण्ड्य का अमात्य कुलच्चिरै को मालूम हुई। वह पक्का शैव भक्त था। पाण्ड्य नरेश जैन धर्मावलंबी था। अमात्यने रानी मंगैयर्क्करसी को येन केन प्रकारेण शैव धर्मानुयायिनी बना लिया था। फिर क्या था? ये दोनों मिलकर जैनधर्म को खतम करने के कार्य में षड्यन्त्र करने लगे।

इन दोनों ने सम्बन्धन (शिवदूत) को मथुरा, (दक्षिण) बुला लिया। वहाँ एक मठ में उसे ठहराया गया था। संबन्धन के द्वारा श्रमण (जैन) धर्म के विरुद्ध खूब प्रचार किया गया। बाद में उन्हीं लोगों ने उस शैव मठ पर आग लगा दी। उल्टा प्रचार इस तरह किया गया था कि जैन लोगों ने ही शैव मठ पर आग लगा दी थी। उस समय जैनोंपर जितना उपद्रव करा सकते थे उतना किया गया था[3]।

उसके बाद दूसरा नाटक तैयार किया गया था कि शिवदूत नामका जो संबंधन था, उसके मुँह से यह शाप दिलाया गया था कि शैव मठ पर जो आग लगा दी गई थी उसके दण्ड स्वरूप राजा पाण्ड्य के पेट में भयंकर दर्द हो जाय। रानी शैव धर्मानुयायिनी तो थी ही। उसने छिपछिपा कर राजा के भोजन में पेट दर्द होने की दवाई देदी थी। राजा पेट के दर्द के मारे तड़पता था। श्रमण (जैन) लोगों ने बढ़िया दवाइयाँ दी थी। रानी बहाना बनाकर उसे नहीं खिलाती थी। उसका विचार यह था कि किसी न किसी तरह से राजा को शैव बनाना है। फिर संबन्धन को बुलाया गया। उसने आकर "शिवाय नमः" कहते हुए पेट के ऊपर विभूति (राख) लगायी। पेट दर्द फौरन ठीक हो गया। विचार करने की बात यह है कि कोई भी बीमारी हो दवाई से

---

१. तमिलरवीथि पेज ३४ २. Journal of Bihar & Orissa Society J.B.O.R.S.XVII 1 - P74 ३. तमिलरवीथि

मेलचितामूर

कुछ धातूकी प्रतिमाएँ

मदिर का प्रवेशद्वार
ध्वजस्तभ, मानस्तभ
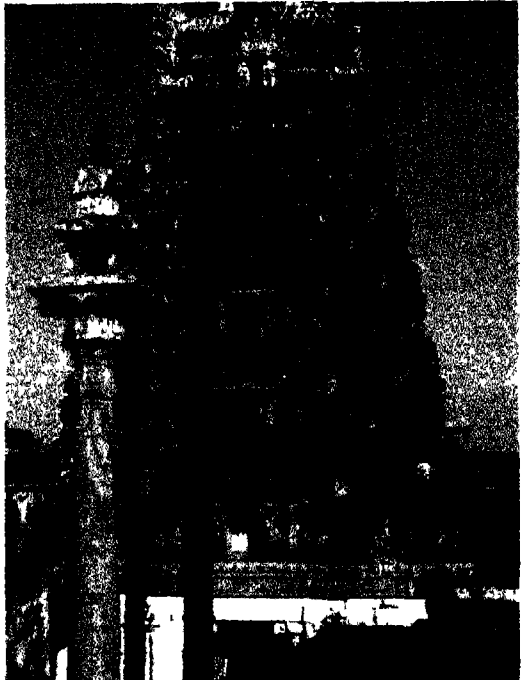
श्री जिनबिंब, पार्श्व में रगीन चित्र

तिरुमलै

यहाँ एक छोटे से पहाड पर १८ फुट ऊँची नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा दृष्टिगोचर हो रही है। यहाँ के शासन मे "कुन्दवै जिनालय" का नाम अकित है। कुन्दवै चोलराजा की बहन थी। तमिलनाडु की प्रतिमाओ मे यही सबसे ज्यादा ऊँची मानी जाती है। इस पहाड के नीचे दो मन्दिर है। यहाँ की गुफा मे चोल राज्य की चित्रकारी है, परतु घिसी हुई है। इसमे समवशरण भी है। चट्टान पर कुछ सुन्दर मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई है।
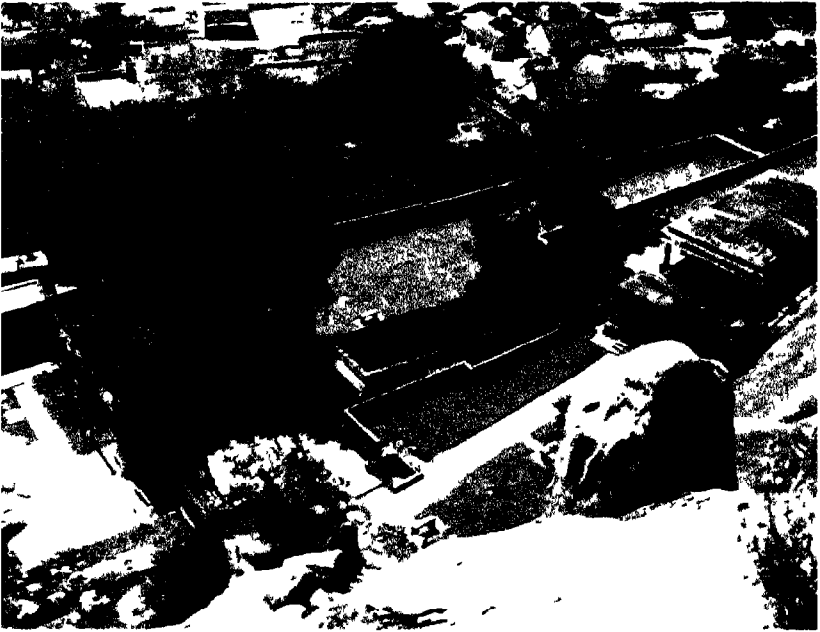
तलहाटी के मदिरका विहगम दृश्य

नेमिनाथ भगवान को शिखामणिनाथ भी बोलते है। इन मन्दिरो मे कई धातु की मूर्तियाँ है। साथ ही शासनदेवताओ की मूर्तियाँ भी है। एक छोटा सा झरना है जिसका पानी भगवान की पूजा आदि के काम मे आता है। सबसे ऊपर छोटा सा पार्श्वनाथ जिनालय है। उसके ऊपर एक चट्टान पर तीन पादुकाये है। वे (१) श्री वृषभाचार्य, (२) श्री समन्तभद्राचार्य, (३) श्री वरदत्त गणधर की बताई जाती है। यह हजारो साधुसतो की तपोभूमि रही है। अत्यन्त पवित्र स्थल है।

शिल्पाकित अकलक स्वामी

कुथुनाथ जिनालय की
कुछ प्रतिमाएँ

शासन देवी

छतपर की चित्रकारी
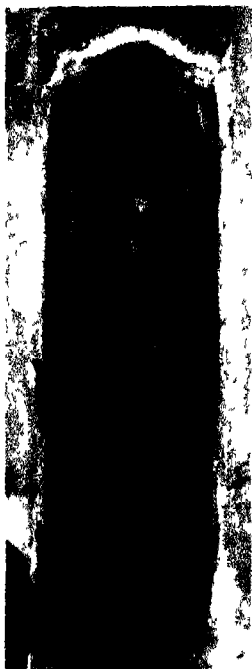
बाहुबली स्वामी की मूर्ती

महावीर स्वामी का मदिर

मेलचितामूर

इस गॉव मे भगवान मल्लिनाथजी का पुरातन मन्दिर है। उसमे एक ही चट्टान पर मल्लिनाथजी, पार्श्वनाथजी, महावीर स्वामी और बाहुबली की प्रतिमाये उत्कीर्ण है। बगल मे कूष्माण्डिनी देवी है। एक जैन मठ भी है। यही तमिलनाडु के जैनो का एक मात्र मठ है। पहले यह काजीवर मे था। न जाने वहॉ से यहॉ कैसे आ गया?
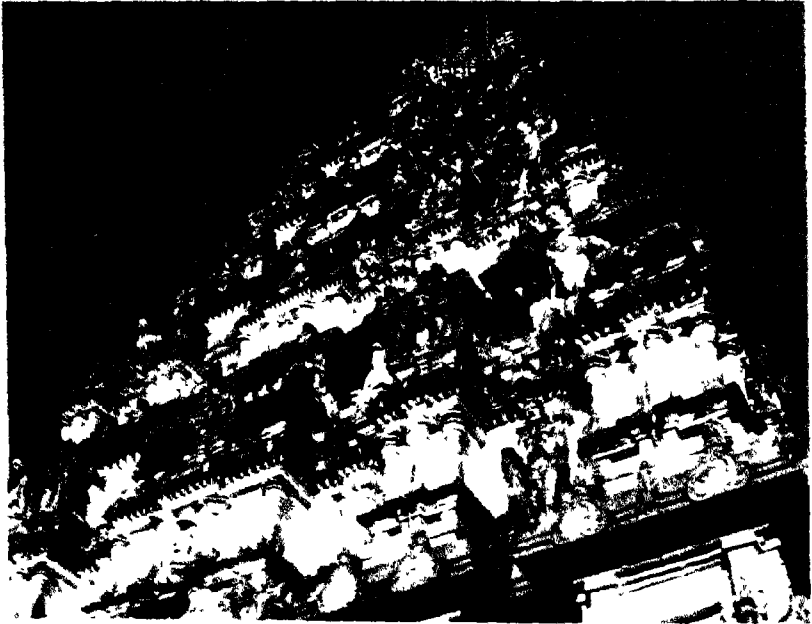
मंदिर के शिखर का शिल्प - वैभव

मठ के अन्दर ताडपत्र का शास्त्र भण्डार है। देख-रेख की कमी के कारण ग्रन्थ जीर्ण होते जा रहे है। मठ की काफी जमीन है। बडे मन्दिर के गोपुर का जीर्णोद्धार करना आवश्यक है क्योकि वह शिथिल होता जा रहा है।

मेलचितामूर

तेजस्वी जिनप्रतिमा

चद्रप्रभू जिनालय

ही ठीक हो सकती है। वहाँ दवाई है नहीं। सिर्फ राख से हो जाती है। क्या यह बात विश्वास करने लायक है? बिलकुल नहीं। यह नाटक तो सिर्फ मत (धर्म) प्रचार के सिवाय और कुछ नहीं है। अनभिज्ञ राजा पेट दर्द ठीक हो जाने से यह राख की महिमा समझकर शैव भक्त स्वयं बन गया। नहीं, नहीं, बना दिया गया था। देखिये, कैसी विडम्बना है?

राजा को अपनी इच्छा के अनुसार शैव बना लिया गया। उन लोगों के नाटक का दूसरा मंच भी पूरा हो गया था। फिर क्या था? राजा को वश मे रखकर श्रमणों (जैनों) को खतम करने का काम बाकी था। उसके लिये भी जो करना था वह भी शुरु कर दिया गया। वह यह था कि श्रमणों (जैनों) के साथ शास्त्रार्थ किया जाय। उसमें जो हार जाते हैं, उन सबको शूली पर चढा कर मार दिया जाय। इस के लिए शिवजी से सिफारिश माँगी गई थी[1] । हर एक कार्य याने श्रमणों को खतम कर देने का भार शिवजी के ऊपर डाल दिया जाता था। ये सारी बातें 'सम्बन्धन तेवारं' में आती है। परन्तु यहाँ समझने की बात यह हैं कि सम्बन्धन ने अपने तेवारं ग्रन्थ में यह बात नहीं लिखी थी, अर्थात्, श्रमण लोगों के द्वारा शैव मठ को आग लगा दी गई थी। इसी से जान सकते है कि जैनों पर शैव मठ के ऊपर आग लगाने का आरोप बिल्कुल कल्पित है।

फिर श्रमणों (जैनों) के साथ वाद (शास्त्रार्थ) करने का निश्चय किया गया था। शास्त्रार्थ वह कहलाता है कि स्वपक्षी प्रश्न पूछेगा, उस का विपक्षी जवाब देगा। जिस से जवाब नहीं हो पाता है, उसे हारा हुआ समझा जाता है। मगर यहाँ पर विचित्र शास्त्रार्थ था। वह यह था कि अपने पक्ष के ताडपत्र को लिखकर पानी में डाला जाय, उन में जिस का पत्र पानी के प्रवाह में बह जाय, वह हारा है जिसका उल्टा वापस आयें वह जीता हुआ समझा जायेगा। वह कैसा शास्त्रार्थ था? पता नहीं। उन शैव लोगों वाली गाली में लिखते है कि "सवायुं वादुसेय समणर गल" अर्थात् जैन लोग मरते दम तक वाद (शास्त्रार्थ) करनेवाले हैं। इसलिये छल कपट के द्वारा जैनों पर हार की छाप लगा दी गयी थी। उन लोगोंने निरपराध श्रमण (जैन) साधुओं को सूला पर चढा कर मार दिया था। इसे उन्होंने उनके पुराण में लिख रखा है और दक्षिण मथुरा में आज तक उसका उत्सव भी मीनाक्षी मन्दिर में मनाते हैं। देखिये, कैसी मानसिकता है?

समझने की बात यह है कि खास कर जैन साधुओं को खत्म करने का कारण यह था कि उन साधुओं के कारण से ही श्रमण (जैन) धर्म का प्रचार होता था। अतः उन साधुओं को खत्म कर दें तो अपने आप जैन धर्म खत्म हो जायेगा। इसी कारण से श्रमण साधुओं को खत्म कर दिया गया था। तथा जैन धर्म के अनुयायियों को मार-पीट कर भगा दिया गया। उनकी जमीन जायदाद छीन ली गई। महिलाओं का मानभंग किया गया। इस तरह जैन लोगोंपर भयंकर अत्याचार किया गया था। जैसे पाकिस्तान में हिन्दुओं पर हुआ था। इस का आधार उन्हीं लोगों के शैव पेरीय पुराण,

---

१. संबन्धन तेवारं वेदवेल्लियवे

तेवारं आदि हैं[1]। खैर, जो हुआ सो हुआ। हमें तो मतद्वेष कितना भयंकर है, इसपर ध्यान देना है। यह सारी बातें सातवीं सदी एवं आगे पीछे की हैं।

जैन धर्म पर क्रमशः आपत्ति के ऊपर आपत्ति आती रही। दूसरा उपद्रव यह रहा कि करीब तीन सौ साल के पहले जिंजी प्रदेश को वेंकटप्प (कृष्णप्प) नायक नाम का छोटा राजा राज्य करता था। वह विजयनगर साम्राज्य के अधीन था। उसका विवरण आगे ग्रन्थ में देख सकते है। उससे भी बडी हानि हुयी थी[2]।

इस तरह जैनों और जैन साधुओं पर कई आपत्तियाँ आयीं। उन सभी आपत्तियों कों सहना पडा। बेचारे और क्या करते? जैन साधु लोग कीडे-मकोडे से लेकर मनुष्य तक के किसी भी जीव को किसी तरह का दुख या कष्ट देनेवाले नहीं थे। "जियो और जीने दो" इस सिद्धान्त को पालनेवाले थे। ऐसे सन्तोंपर भी अत्याचार एवं अनाचार होता है, हुआ था। इतनाही नहीं, निर्दयता के साथ हजारों साधुओं का कतल किया गया था। खासकर साधुओं के प्रति विद्रोह करते थे। काश! कैसा भयंकर मतद्वेष रहा। हर धर्मवाले आनन्द के साथ अपने-अपने धर्म का आचरण कर सकते थे। न जाने, अन्य धर्म के विनाश में क्यों खुशी मनाते थे? यही बात समझ में नहीं आती है। खैर, क्या करें? मनुष्य का स्वभाव है। उसे मिटाया नहीं जा सकता। सब धर्मों में ऐसा होता है। जो हुआ सो हुआ अब करना क्या है? कुछ नहीं। केवल पछताना है।

६-७ साल के पहले मैंने इन सारी बातों को जैन गजट में धारावाहिक लेखके रूप में लिखा था। वह प्रकाशित भी हुओ थी। कई लोगों ने इस विषय में पत्र भी लिखे थे। परन्तु वह अधूरा रह गया था।

इसे फिर से लिखने का मौका अहिंसा धर्म प्रचारक ख्यातनाम उद्योगपति, वालचंद उद्योग समूह के शेठ लालचंद हीराचंद की सुपुत्री, श्रीमती शरयू दफ्तरीजी के कारण से मिला है। श्रीमतीजी मेरे मित्र श्री. भरतकुमारजी काला को साथ में लेकर दक्षिण के जैन तीर्थों के यात्रार्थ तमिलनाडु पधारी थीं। तमिलनाडु के जो पवित्र एवं मुख्यस्थान थे जैसे तिरुप्परुत्तिक्कुन्रू (जिनकांची) तिरुम्मलै (१८ फुट ऊँची कायोत्सर्ग नेमिनाथ भगवान की अतिशय मूर्ति) करन्दे, अकलंक-बस्ती, पोन्नूरमलै, आचार्य कुन्दकुन्द तपोभूमि, मेलसित्तामूर, वर्तमान जिनकांची, आदि अतिशय एवं पुण्य क्षेत्रों के दर्शनार्थ पधारी थीं।

मैं बहनजी के साथ सब जगह गया था। हर जगह भगवान के सामने वे उदक चन्दनतन्दुल..... यह श्लोक कह कर वह अर्घ्य चढाती थीं, नमन करती थीं, भक्ति करती थीं। मैं अचम्भे में पड गया। मैंने सुना था कि ये लोग सुधारकवादी हैं। इन्हें धर्मपर श्रद्धा नहीं है। मैं साक्षात् बहनजी के धर्मश्रद्धान और भक्ति को देख कर सन्तुष्ट हुआ और दूसरों की बात पर अविश्वास भी हुआ। माननीया बहनजी ने सब जगह फोटो खिंचवायी थी और बढिया "केलेण्डर" छपवायी थीं जिस के लिये मैं समझता हूँ कि

---

१. समणमुं तमिलुं पेज - ८१ २. समणमुं तमिलुं पेज - ८३

करीब करीब एक लाख रुपये लगे होंगे।

मुझे लगा कि उत्तर भारत में कई श्रीमन्त और धनवान महिलाएँ हैं। किसी भी संपन्न व्यक्ति को ऐसी भावना नहीं हुई थी कि तमिलनाडु के जैन अतिशय क्षेत्रों का दर्शन करें एवं उन क्षेत्रों के भगवन्तों की फोटो खिंचवाकर केलेन्डर छपवावें, आदि। इससे मुझे यह भावना होती है कि बहनजी के एक-दो जन्म हमारे तमिलनाडु में हुए होंगे। इसीलिए इस प्रान्त पर उन्हें असीम प्रेम लगा है। नहीं तो ऐसा नहीं होता।

बहनजी पूर्व जन्म के पुण्य प्रभाव के कारण संपन्न घराने में जन्म ली हुई हैं और पति का परिवार भी संपन्न घराने का ही है। ये सब पूर्व पुण्य के माहात्म्य से होता है। नीतिकार का कहना है कि "पुण्येन बिना न लभ्यते क्वापि" अर्थात, पुण्य के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता है और न सुखमय जीवन ही मिल सकता है। इसमें और एक विशेष बात यह है कि पूर्वोपार्जित पुण्य से धनसंपत्ति मिलने पर भी उसे मात्र भोग-विलास में न लगाकर धर्मकार्य में लगाने की भावना होना, यह भी एक अतिशय पुण्य का माहात्म्य ही है ऐसा कहना चाहिये। कुछ भी हो, बहनजी हमारे प्रान्त की महिला हैं। इसमें कोई शक नहीं हैं। नहीं तो इस प्रान्त पर इतना प्रेम नहीं होता। यह संस्कार की बात है।

जब बहनजी दर्शनार्थ तमिलनाडु पधारी थीं तब वहाँ के पावन अतिशय क्षेत्र आदि का दर्शन करने के बाद उनके दिल में यह पुनीत भावना हुई कि ऐसे पवित्र क्षेत्रों का इतिहास प्रकाशित कराना है। तदनुसार मुझसे उसे लिखने के लिए कहा गया था।

प्रकाशन के कार्य में ताईजी का उत्साह भी कम नहीं है। वे इसे टाईप कराई थीं। बराबर पत्राचार चलता रहा। अतः ताईजी के प्रोत्साहन के बारें में ज्यादा कहने की कोई जरूरत नहीं है।

इस ग्रन्थ में निम्न लिखित विषयोंपर प्रकाश डाला गया है। १. तमिलनाडु में महान आचार्य श्रुतकेवली भद्रबाहु महाराज के आगमन के पहले भी यहाँ जैन धर्म का अस्तित्व था। इसका विशद विवरण दिया गया है। २. जैन धर्म की अभिवृद्धि ३. जैन साधुओं की सहायता ४. जैन धर्म पर अर्जिकाओं की सेवा ५. मतसंघर्ष ६. जैन धर्म का पतन ७. हिंन्दू धर्म में जैन धर्म का आचरण ८. जैन साधुओं की साहित्यसेवा ९. तमिलनाडु के जैन साहित्य का बृहद्परिचय १०. जैन साहित्य के व्याख्याकार ११. तमिलनाडु के पवित्र जैनतीर्थ। साथही, जैन परंपरा, भट्टारक परंपरा, जैन राजा, श्रावक-परंपरा तथा पर्वादि की भी जानकारी दी गयी है।

इन विषयों को पढने से तमिलनाडु के अन्दर जैन धर्म का उत्थान- पतन -उथल-पुथल कैसे हुआ ? जैन धर्म के ऊपर क्या-क्या आपत्तियाँ आयीं ? जैन साधु-सन्त एवं जैनी लोगों को कैसे-कैसे कष्ट सहने पडे ? ये सारी बातें नजर आ सकती हैं। वहाँ के पुरातन कालीन परिस्थितियों को जानना प्रत्येक जैन मानव का परम कर्तव्य है। इस पर इस तरह का विचार हो सकता है कि यह बात किस कारण से हुई ? और क्यों हुई ? ऐसी बात फिर से न हों। ऐसे विषयोंपर ख्याल किया जा सकता है। बचाव

का रास्ता भी ढूँढा जा सकता है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य में बहुत से महानुभावों की सहायता मिली। उन सबको मैं जीवनपर्यन्त भूल नहीं सकता।

सबसे पहले त्रिकालवन्द्य, राष्ट्रसन्त आचार्यवर्य श्री १०८ विद्यानंदजी महाराज के दिव्य चरणों में कोटिशः नमोस्तु समर्पित करता हूँ। प पू. महाराजश्री का दर्शन कई बार हुआ है। पहली बार दिल्ली में, दूसरी बार धर्मस्थल की पंचकल्याण प्रतिष्ठा में और तीसरी बार कोथली में। महाराज की उदार दृष्टि मेरे ऊपर बहुत ज्यादा बनी हुई है। इसे महाराजश्री की कृपा का ही फल कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं है। अब इस ग्रन्थ के प्रकाशन में महाराजश्री का आशीर्वाद तो है ही। महाराज सारे विषयों की जानकारी रखनेवाले कोश (भण्डार) सरीखे अद्वितीय महान सन्त हैं। अतः महाराजश्री का अधिनायकत्व अत्यन्त आवश्यक है।

दूसरी बात यह है कि परमादरणीय विद्वत् शिरोमणि श्रीमान् पं. बलभद्र जी जैन को मैं कभी नहीं भूल सकता। जब वे महाशय जैन सन्देश के संपादक थे तब से ही वे मेरे परिचित हैं। महाराज साहब की कृपा से जब कुन्दकुन्द भारती (दिल्ली) में पाँच विद्वानों का सम्मान हुआ था उसमें पण्डितजी और मैं दोनों शामिल थे। उस समय पण्डितजी के साथ रह कर विचार-विनिमय करने का मुझे अच्छा अवसर मिला था। इस ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य के विषय में भी पण्डित जी का सहयोग सर्वोपरि है। अतः मैं पण्डितजी को सहस्रशः धन्यवाद देता हूँ। उनका सहयोग स्मरणीय रहेगा।

डा. प्रेमसागरजी साहब ने इस ग्रन्थ का अभिमत लिखा है। डा. साहब मेरे अपरिचित होने पर भी उनके उपकार को स्मरण कर हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

श्री. श्रेणिक अन्नदाते जी तीर्थंकर मासिक (मराठी) के संपादक एवं अहिंसा प्रसारक ट्रस्ट के कार्यकर्ता है। उन्होंने मेरे ग्रन्थ के प्रति सुझाव प्रस्तुत किए हैं। उनका विचार यह है कि ग्रन्थ को और भी महत्त्वपूर्ण बनाना है। मेरे पत्र का बराबर उत्तर देते रहते हैं। अतः उन्हें भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता।

मेरे मित्र श्री भरतकुमार जी काला से पुराना परिचय है। उन्होंने भी कुछ सुझाव दिए थे, उसके लिए मैं धन्यवाद देता हूँ। कालाजी के कारण से ही माननीया ताईजी का परिचय मिला है। अतः उन महाशय को सहस्रशः धन्यवाद देता हूँ।

बहिन ताईजीसाहबा के कहे अनुसार इस ऐतिहासिक ग्रन्थ को लिख कर प्रस्तुत कर रहा हूँ। यह काम पूरा होने के कारण मुझे बड़ी खुशी हुई है।

इसमें समझने की बात यह है कि बिना आधार मेरी ओर से कुछ भी नहीं लिखा गया है। सभी बातों का आधार हर पेज के नीचे दिया गया है।

यह ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखने में नीचे लिखे ग्रन्थों से सहायता ली गई है।

१. समणमुं तमिलुं: लेखक, मयिलैसीनु वेंकटस्वामी
२. तमिलरवीच्चिः लेखक, नीलदुरैक्कण्णन

३. कलवैट्रिलसमणं: लेखक, डा. एकांबरनाथन
४. आचार्य निर्मलसागरजी की तमिलनाडु विजयः लेखक, निर्मलसागर संघ
५. समणकाप्पियंगल: लेखक, डा. सुनन्दादेवी
६. विजयमंगलं: लेखक, जीवबन्धु टी. एस्. श्रीपाल
७. करन्दै वरलारू: लेखक, डा. एकांबरनाथन
८. चित्तमूर वरलारू: लेखक, डा. एकांबरनाथन
९. तिरूनरूंकुन्द्रं वरलारू: लेखक, डा एकांबरनाथन
१०. तमिलगमुं जैनुशिलालेखमुम्: लेखक जीवबन्धु टी. एम्. श्रीपाल

इन ग्रन्थों की सहायता एवं शिलालेखों के आधार से मैंने तमिलनाडु का जैन इतिहास लिखकर प्रस्तुत किया है। पाठक गण इसे अवश्य पढ़ें और अपने दिगम्बर जैन साधु महात्माओं के चरणस्पर्श से पवित्रित पुण्यभूमि का दर्शन अवश्य करें। कम से कम उन त्यागी महात्माओं के त्याग से अवशिष्ट क्षेत्रोंकी दयनीय दशा का अवलोकन करते समय, होनेवाले सादर भक्तिभाव से उत्पन्न हृदयोद्गार के द्वारा निकलनेवाले अश्रुबिन्दुओं को उन महात्माओं के चरणों में चढाना न भूलें। यही जैनधर्म के प्रति होनेवाली श्रद्धा की एक मात्र विनयांजलि है। अपने से और क्या हो सकता है? बस, इतना ही।

श्रीस्तु! शुभमस्तु!! तथास्तु!!!

–पं. मल्लिनाथ जैन, शास्त्री

'शास्त्री भवन'
२३, पेरुमल कोइल स्ट्रीट,
मद्रास- ६०००७९

तमिलनाडु का जैन इतिहास

(१) पृष्ठभूमि

जैन धर्म के कई नाम हैं, जैसे आर्हत धर्म, णिग्गंठ (निर्ग्रन्थ) धर्म, अनेकान्त धर्म और स्याद्वाद धर्म आदि। जैन धर्म के देव को "जिन" कहते हैं। जिन का अर्थ है– "जयतीति जिनः", अर्थात्, जो कर्मों को जीतता है। "जिन" को जो नमन करते हैं, वे जैन कहलाते हैं। णिग्गंठ का अर्थ है निर्ग्रन्थ। ग्रन्थ का अर्थ है परिग्रह। ग्रन्थ से जो मुक्त है, वे निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। "जिन" को "अर्हत्" भी कहते हैं। "अर्हत्" जिसका देवता हो उसे आर्हत कहते हैं। जैन धर्म अनेकान्त धर्म है। उसे स्याद्वाद धर्म भी कहते हैं।

एक जमाने में जैन धर्म सारे भारत में महोन्नत स्थिति में था। इस बात को जैन और जैनेतर सभी विद्वान स्वीकार करते हैं। जैनेतर विद्वानों में खासकर सर राधाकृष्णन्, प्रो. विरूपाक्ष एम्. ए., काशीप्रसाद जायसवाल, डा. वासुदेवशरण अग्रवाल आदि उल्लेखनीय हैं। विदेशी विद्वानों में डॉ. जेकोबी, डॉ. बूलर और स्मिथ आदि स्मरणीय और प्रशंसनीय हैं। जैन विद्वानों में महामना चंपतरायजी, डॉ. ए. एन्. उपाध्ये, बैरिस्टर जुगमंदरलालजी और प्रो. ए. चक्रवर्ती आदि हैं। इन इतिहासवेत्ता विद्वानों ने भारत के विषय में, खासकर जैनत्व के विषय में खोज कर यह निष्कर्ष निकाला है कि भारत में विद्यमान धर्मों में जैन धर्म बहुत प्राचीन है और ऊंचा है।

इसके मूलनायक/प्रवर्तक भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) थे। शुरु में उन्हीं से जैन धर्म का प्रचार हुआ था। आजकल के कुछ इतिहासकारों का कहना है कि भगवान महावीर ही जैन धर्म के प्रवर्तक एवं प्रचारक थे। उन लोगों के कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान महावीर के पहले जैन धर्म नहीं था। यह बात बिलकुल गलत है। सर राधाकृष्णन् का कथन यह है कि जैन परंपरा भगवान ऋषभदेव को अपना संस्थापक एवं प्रचारक बतलाती है। इस धर्म का काल अतिप्राचीन है। भगवान वर्धमान और पार्श्वनाथ के पहले भी जैन धर्म था, इसका प्रमाण यह है कि हिन्दुओं के यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीनों का उल्लेख मिलता है। भागवत पुराण में श्री भगवान ऋषभदेव को

जैन धर्म का संस्थापक बताया गया है।

एक अन्य वैदिक विद्वान प्रो. विरूपाक्ष का कथन है कि भगवान ऋषभदेव का ऋग्वेद में जिक्र किया गया है। "वृषभंमासानां सपत्नानां विषासहि" इत्यादि से यह बात स्वीकार करने योग्य है।

सन्त विनोबा भावेजी का कहना है कि जैन धारा को अतिप्राचीन कहने में संकोच नहीं करना चाहिए। क्योंकि हिन्दुओं के अतिप्राचीन वेदवचनों में "अर्हन इदं दयसे विश्वसंभवस" आदि वचन पाये जाते हैं। अर्हन् शब्द जैन धर्म के अधिनायक भगवान ऋषभदेव को ही सूचित करता है। इस बात को हम यदि मंजूर कर लेते हैं तो हिन्दुओं के वेद काल से भी प्राचीनता जैन धर्म को मिल जाती है। इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है।

मोहन-जो-दरो और हरप्पा से मिली नग्न दिगम्बर मूर्तियों से भी जैनत्व को (दिगम्बर जैनत्व) पाँच हजार साल से पहलेकी प्राचीनता प्राप्त होती है। मोहन-जो-दरो का काल पाँच हजार साल का है।

उदयगिरि और खण्डगिरि से प्राप्त शिलालेखों से (जो कि जैन भक्तशिरोमणि खारवेल के जमाने के हैं) भी हम कह सकते हैं कि जैन धर्म प्राचीन है।

इन सभी आधारों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जैन धर्म भगवान ऋषभदेव रूपी हिमालय से निकली हुई गंगा है। ना कि भगवान नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान से। अज्ञान एवं अनुसंधान के अभाव से कुछ इतिहासज्ञ जैन धर्म की प्राचीनता को तिरोहित करने के लिए, जैन धर्म के आदि संस्थापक के रूप में भगवान ऋषभदेव को स्वीकार न करते हुए, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ अथवा महावीर को मानते हैं। उन लोगों की भ्रमपूर्ण वार्ताओं पर दृष्टि न डालकर विशिष्ट इतिहासवेत्ताओं के प्रामाणिक वचनों को स्वीकर कर लेना ही उत्तम है।

उपर्युक्त कथन से जैनत्व की प्राचीनता प्रमाणित होती है। हमें अब दक्षिण की ओर यात्रा करनी है। दक्षिण में जैन धर्म कब से है? कौन इस के प्रवर्तक रहे? यह महान धर्म कहाँ-कहाँ फैला हुआ था? आदि जानना है।

दक्षिण भारत तमिल, तेलगु, कर्नाटक और केरल इन चार प्रान्तों में विभाजित है। इन चार प्रान्तों में केरल और तेलगु में स्थानीय जैनियों को खत्म कर दिया गया है। आदि शंकराचार्य का जन्म केरल प्रान्त में हुआ था। वे जैन धर्म के कट्टर विरोधी थे। वे ३५ साल की उम्र में ही गुजर गये। परन्तु उन्होंने अपनी ३५ साल की उम्र के अन्दर ही कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक पैदल चल कर अनेकानेक मठों की स्थापना की थी। जिन के प्रभाव से जैन धर्म ओर बौद्ध धर्म का ह्रास हुआ[१]। उन्हीं के कारण केरल में जैन धर्म लुप्त हो गया। पुराने जमाने में केरल "चेरनाडु" कहा जाता था। वहाँ के

---

१. कुछ मनीषी विद्वानों का विचार है कि उस समय जैन धर्म की रक्षा के लिये जैन मठों की स्थापना की गयी थी। जिससे जैन धर्म थोड़ा बहुत बचाया जा सका। यह युक्तिसंगत मालूम पड़ता है।

राजा लोग प्रायः जैन धर्मानुयायी होते थे। "शिलप्पधिकारं" नामक एक महाकाव्य तमिल भाषा में है। वह पहली या दूसरी सदी का माना गया है। उस महाकाव्य के रचयिता "इलंगोवडिगल" चेरनाडु के युवराज थे। शिलप्पधिकारं से पता चलता है कि युवराज पक्के जैन थे और उन की परंपरा भी जैन थी। शिलप्पधिकारं कथा का नायक वैश्यकुलतिलक "कोवलन" भी पक्का जैन था। शिलप्पधिकारं की कथा रोचक और ऐतिहासिक है। एक जमाने में केरल एकदम जैनत्व से भरा हुआ था। आज वहाँ जैन धर्म का नामो निशान भी नहीं है और एक भी स्थानीय जैन नहीं है। यह सब आदि शंकराचार्य के कारण हुआ। सारांश यह है कि जैन धर्म को केरल से हटा दिया गया।

दूसरा नम्बर आंध्र प्रान्त का आता है। प्राचीन काल में वहाँ भी जैनधर्म प्रचलित था। न जाने वहाँ जैन धर्म कैसे खत्म कर दिया गया? यह सब किस के प्रभाव से कब और कैसे हुआ, यह पता नहीं चलता। वास्तव में एलोरा की शिल्प कला से पता चलता है कि आंध्र, जैन-बौद्ध धर्म का गढ़ था। आंध्र और महाराष्ट्र में जैन और बौद्धधर्म महोन्नत स्थिति में अवश्य रहे, इसमें कोई शक नहीं है। आंध्र में शैव धर्म की अपेक्षा वैष्णव धर्म ज्यादा प्रचलित है। काल के प्रभाव से उलट-पलट होती रहती है। जैनधर्म के प्रख्यात महान आचार्य कुन्दकुन्द महाराज का जन्म आंध्र में ही हुआ था। आंध्र पहले तमिलनाडु से मिला हुआ था। जैन धर्म के बारे में आचार्य कुन्दकुन्द से ज्यादा ठोस उदाहरण देने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसे विशिष्ट स्थान में आज एक भी स्थानीय जैन नहीं है। अब वहाँ व्यापारी या सर्विस वाले जैन ही आकर रहते हैं।

जहाँ तक कर्नाटक का सम्बन्ध है, प्राचीन काल से आज तक कर्नाटक जैन धर्म का केन्द्र बना रहा है। वहाँ के बहुत से राजा जैन धर्मानुयायी थे। खास कर चालुक्य वंश के राजा लोग जैन धर्म को मानने वाले थे। बाद में वहाँ भी वैष्णव धर्म ने जोर पकड़ा। उस समय राजाओं के अमात्यगण जैन धर्म के पक्के श्रद्धावान थे। उन अमात्यों में खास कर जैन भक्तशिरोमणि चामुण्डराय और इरगप्पन तथा हुल्लर स्मरणीय हैं।

जैन धर्म के प्रति महामना अमात्य हुल्लर की सेवा असाधारण रही। ये राजा नरसिंह देव के अमात्य एवं भण्डारी थे। उनके द्वारा बनाया हुआ मन्दिर श्रवणबेलगोल में आज तक भण्डारी बस्ती के नाम से प्रसिद्ध है। भण्डारी हुल्लर की सेवा से सन्तुष्ट जैन जनता ने उन्हें "सम्यक्त्वचूड़ामणि" नाम की पदवी से अलंकृत कर गौरव प्रदान किया।

दूसरे धर्मश्रद्धालु चामुण्डराय, संसार के महान अतिशय स्वरूप भगवान बाहुबली की प्रतिमा के निर्माण व स्थापना के कारण अमर बन गये। भविष्य में भगवान बाहुबली की सातिशय मूर्ति के साथ-साथ सम्यक्त्वरत्न चामुण्डराय का नाम भी आचन्द्रार्क टंकोत्कीर्ण बना रहेगा। महान विभूति बाहुबली भगवान के कारण और सिद्धान्त रहस्य पारंगत आचार्यवर्य धरसेन, भूतबली-पुष्पदंत और सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्र आदि आचार्यवर्यों के कारण कर्नाटक में प्राचीन काल से आज तक जैन धर्म बड़े महत्त्व के साथ चलता आ रहा है। आज भी यह स्थान वैभवमय है तथा भविष्य में भी रहेगा।

वहाँ पर (कर्नाटक में) जैन धर्म की प्रसिद्धि का कारण दो वस्तुयें हैं। पहला-महामहिम

भगवान बाहुबली की प्रतिमा, दूसरा, मूडबद्री के धवल ग्रन्थ। आज कल श्रवणबेलगोल जैनबद्री के नाम से भी प्रसिद्ध है। इन सभी कारणों से कर्नाटक जैन धर्म का महान केन्द्र बन गया है।

अब तमिल प्रान्त के बारे में विचार करना है। तमिलनाडु के अन्दर चेर, चोल और पाण्ड्य नामक तीन वंश के राजा रहते थे। इन तीनों में बहुत से जैन धर्मानुयायी तथा सहानुभूतिशील होने के नाते यहाँ पर जैन धर्म खूब फला फूला। प्राचीन चेर राज्य आजकल केरल में है। चोल राज्य के राजराज चोल नरेश की बहन "कुन्दवै" ने तमिलनाडु के तिरूमलै में जिनमन्दिर बनवाया था। आज भी वह मन्दिर उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। उनके जमाने में जैन धर्म का बोलबाला था।

पांड्यराजा "नेडु मारन" पक्का जैनी था। उनकी रानी "मंगैयर्क्करसी" और अमात्य "कुलच्चिरै" दोनों शैव थे। उस जमाने में एक घर के अन्दर कुछ लोग जैन और कुछ लोगों का शैव रहना स्वाभाविक था। मंत्री और रानी इन दोनों ने कई तरह के षड्यन्त्रों के द्वारा राजा को शैव बना लिया। । (यह कथा बड़ी लंबी है यहाँ पर इसका विवेचन करना असंगत है) उनके जमाने में शैव और जैनों का खूब संघर्ष होता था। जैन और शैवों को भिड़ा कर राजा तमाशा देखता था। अन्ततः उन दोनों में वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) का निर्णय लिया गया। उसमें शर्त यह रखी गई कि वाद-विवाद में जो जीतेगा उसका धर्म श्रेष्ठ माना जायेगा। जीतने वाले के धर्म को, हारने वाला स्वीकार करेगा। वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) में तर्कवाद से निर्णय लेना चाहिये था। परन्तु शैव लोगों ने चालाकी से "अनलवाद, पुनलवाद" का निर्णय करा लिया। अनलवाद का अर्थ है– अग्नि में ताडपत्र को डालना, पुनलवाद का अर्थ है– पानी में ताड़पत्र को डालना। जिसका ताड़पत्र अग्नि में जल जाय और पानी में बह जाय, उस पक्ष वालों को हारा हुआ माना जायेगा। जिसका जला नहीं और बहा नहीं, उसे जीतां हुआ माना जायेगा। वस्तुतः यह शास्त्रार्थ नहीं था बल्कि धोखा था। षड्यंत्र रचकर जैनियों पर हार की छाप लगा दी गयी। जैनियों के पक्ष में आठ हजार मुनिराज थे और शैवों के पक्ष में अकेला "संबन्धन" नाम का व्यक्ति था। राजा तो शैव मतानुयायी हो गया था। फिर क्या था? मनमानी चली। जैनियों पर हार की छाप लगाकर आठ हजार मुनिराजों को (शैव मत को स्वीकार न करने के कारण) शूली पर चढ़ाकर मार दिया गया[1]। यदि तर्कवाद के साथ जैनियों के साथ शास्त्रार्थ करते तो जैनियों से तीनों काल में जीत नहीं सकते थे। शैवों ने अपने शास्त्र में लिखा है कि "तर्कसमणरगल" और "सावायुं वादुसेय, समणर गल" अर्थात्, जैन लोग तर्कवाद में दक्ष और मरते दम तक तर्क से वाद-विवाद करने वाले होते हैं। आज भी उनके "तेवारं" ग्रन्थ में ये वाक्य मिलते हैं।

इस तरह की भयंकर हत्या की बातें "पेरियपुराणं" में स्पष्ट देखी जा सकती हैं। इससे यह अनुमान किया जाता है कि वाद-विवाद आदि की ये बातें वस्तुतः नहीं हुई। अपने मत प्रचार के लिये गढ़ ली गई। तमिलनाडु और कर्नाटक में विद्वेषियोंकेद्वारा जैनों

---

१. समणमुं तमिलुं

के ऊपर अकथनीय अत्याचार हुए। निष्कर्ष यह है कि कई तरह से (मारना, पीटना, भगाना और छीनना) जैनत्व को नष्ट किया गया था। इस तरह अत्याचार से डरकर बहुत से जैन लोग शैव बन गये और मुसलमान भी। इसका विशद विवेचन आगे भी किया जायेगा। कालदोष के कारण जैन धर्म किस-किस तरह से नष्ट किया गया, यह बात समझने की है।

ऊपर के विषयों से अच्छी तरह पता चलता है कि तमिलप्रान्त में प्राचीन काल से ही जैन धर्म प्रचलित था और अगणित जैन अनुयायी लोग थे। इसी पवित्र भूमि में तर्क-चूड़ामणि महान आचार्य समन्तभद्र महाराज का जन्म हुआ था। उन्होंने साठ जगहों पर अन्यमत वालों से शास्त्रार्थ कर जैन धर्म का डंका बजाया था। उन महान आचार्य ने कहा था कि "शास्त्रार्थं विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितं" अर्थात् हे राजन्, शास्त्रार्थ के लिये मैं शार्दूल (सिंह) के समान निडर होकर संचार कर रहा हूँ। कोई भी मेरे साथ शास्त्रार्थ करने के लिये आवे, मै तैयार हूँ। इस तरह चुनौती देकर शास्त्रार्थ करने वाले महान साधु समन्तभद्र की पवित्र भूमि यही थी। बौद्धों को शास्त्रार्थ में हरा देने वाले तार्किक शिरोमणी, त्याग देवता अकलंक देव की जन्मभूमि भी यही थी। इसी पवित्र भूमि में आचार्य पूज्यपाद महाराज ने जन्म लिया था। प्राभृतत्रय के रचयिता आचार्य कुन्दकुन्द महाराज ने इसी पवित्र भूमि में मूलसंघ की स्थापना कर सारे तमिलनाडु में जैन धर्म का प्रचार किया था। इस तरह तमिलनाडु कई आचार्यवर्यों एवं सन्तों का जन्मस्थान, निवासस्थान और तपोभूमि रहा है।

कुछ भ्रमग्रस्त इतिहासवेत्ताओं का कहना यह है कि दक्षिण में प्राचीन काल से जैन धर्म नहीं था। श्रुतकेवली भद्रबाहु महाराज के दक्षिण में आने के बाद ही यहाँ पर जैन धर्म प्रचलित हुआ। इसमें सोचने की बात यह है कि जैन धर्म के चौबीसों तीर्थंकरों का (भगवान आदिनाथ से लेकर महावीर वर्धमान पर्यन्त) उत्तर भारत में ही जन्म हुआ और तप धारण कर कर्मों को नष्ट करते हुए मोक्षधाम सिधारे। परन्तु भगवान महावीर स्वामी ने घातिया कर्मों का विनाश कर, केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद समवशरण के द्वारा सारे देशों में, अर्थात् ५६ देशों में विहार कर जैन धर्म का प्रचार किया। उन देशों में द्रविड़ देश का नाम भी मौजूद है। जब सारे द्रविड देश में भगवान महावीर का समवशरण आया और जैन धर्म का प्रचार किया गया, तो दक्षिण में जैन धर्म कैसे नहीं रहा होगा? दूसरी बात यह है कि जहाँ पर धर्मानुरागी लोग रहते है, वहीं समवशरण जाता है, अन्यत्र नहीं। इस का मतलब यह निकला कि भगवान महावीर के जमाने के पहले भी दक्षिण में जैन धर्म मौजूद था और उसके अनुयायी जैन श्रावकगण भी रहते थे। इसीलिये भगवान महावीर का समवशरण यहाँ आया। यदि केवल पहाड़ और जंगल ही होता तो कहाँ समवशरण क्यों जाता? अतः भगवान महावीर के जमाने के पहले से ही दक्षिण भारत में खास कर तमिल प्रान्त में जैन धर्म मौजूद था, यह बात निर्विवाद सिद्ध है।

महान आचार्य भद्रबाहु ई-पूर्व ३१७ से २९७ तक जैन धर्म के आचार्य रहे। ये जगत्प्रसिद्ध सम्राट मौर्य चन्द्रगुप्त (प्रथम) के धर्मगुरु भी थे। यह चन्द्रगुप्त सिकन्दर का

समकालीन था। चन्द्रगुप्त सम्राट अशोक के पितामह थे। सम्राट चन्द्रगुप्त के जमाने में उत्तर भारत के अन्दर बारह साल तक भयंकर अकाल पड़ा। जिस के कारण श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी के नेतृत्व में बारह हजार मुनिराजों के विशाल दिगंबर जैन मुनिसंघ ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। भगवान श्रुतकेवली के अद्वितीय शिष्य सम्राट चन्द्रगुप्त संसार की असारता को जानकर अपने मणिमौलिकिरीट के साथ, महान साम्राज्य को त्यागकर अपने गुरुदेव के चरणों का अनुसरण करते हुए पीछे-पीछे चलने लगे। सारा संघ कर्नाटक के श्रवणबेलगोल आने के बाद, श्रुतकेवली महाराज ने अपने दिव्य ज्ञान के द्वारा अपनी आयु का अवसान जाना। फिर अपने शिष्यगण-साधुओं को, विशाख नाम के मुनिराज के नेतृत्व में चेर-चोल-पाड्य देशों की ओर गमन करने का आदेश दिया। उस संघ में आठ हजार मुनिराज थे। बाद में भद्रबाहु महाराज ने ई. पूर्व २९७ में अपनी अन्तिम अवस्था के समय सल्लेखना धारण कर ली और आत्माराधना के साथ स्वर्गवास को प्राप्त हुए। राजाधिराज चन्द्रगुप्त अपने गुरु महाराज से जिन दीक्षा धारण कर गुरुदेव के चरणानुगामी बने।

इस बात का आचार्य हरिषेण (ई. ९३१) नें अपने कथाकोश में उल्लेख किया है। तथा देवचन्द्रजी (ई. १८३८) ने अपनी "राजावली कथा" में इसे अंकित किया है। इसके अलावा श्रवणबेलगोल के चन्द्रगिरि पहाड़ पर आचार्य भद्रबाहु-गुफा एवं चंद्रगुप्त बस्ति आज भी मौजूद है। चंद्रगुप्त बस्ती में भद्रबाहु के ऐतिहासिक चिन्ह शिल्प कला के रूप में अंकित हैं। इसके साथ-साथ वहाँ का शासन (शिलालेख) भी इस बात की पुष्टि करता है।

इस तरह ई. पूर्व तीसरी शताब्दी में आचार्य भद्रबाहु के शिष्य विशाख मुनि द्वारा तमिलनाडु में जैन धर्म का आगमन हुआ, यह एक मत है। पाण्ड्य देश के मथुरा (दक्षिण) जिले के अन्दर एक शिलालेख है। यह ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ जैन लेख है। इसका समय ई. पूर्व तीसरी सदी है। इस बात को सरकार का आरकोलोजिकल डिपार्टमेन्ट भी स्वीकार करता है। इससे भी सिद्ध है कि यहाँ ई. पूर्व तीसरी सदी से जैन धर्म का अस्तित्व था।

दूसरा प्रमाण यह है कि महावंश नाम का एक बौद्ध ग्रन्थ है। उसमें ई. पूर्व तीसरी सदी के पहले से जैन धर्म का अस्तित्व बताया गया है। ई. पूर्व ३७७ से ३०७ तक लंका द्वीप पर राजा "पाण्डुकाभयन" राज्य करता था। उसने अनुराधपुर नाम के नगर में जैन साधुओं के निवासस्थान (गुरुकुल) का निर्माण किया था।[1]

उत्तर हिन्दुस्तान का राजा चन्द्रगुप्त और लंका द्वीप का राजा "पाण्डुकाभयन" दोनों समकालीन थे। उस समय जैन धर्मानुयायी साधु लंका द्वीप में रहे हों, तो वे तमिल प्रांत के जरिये ही गये होंगे। उस समय तमिलनाडु और लंकाद्विप इन दोनों में आने-जाने में दिक्कत नहीं थी। अर्थात्, समुद्र का घेराव नहीं था। पैदल जाने-आने की सुविधा थी। इसलिये ई. पूर्व तीसरी सदी के पहले तमिलनाडु और लंकाद्वीप में जैन लोग और साधुगण

१ महावंश पुराण पेज ९७, ९८, ९९

निवास करते थे। यह बात निस्सन्देह स्वीकृत है।

यहाँ समझने की बात यह है कि दिगंबर जैन साधु संत सब जगह सभी लोगों से (अन्य साधुओं के समान) आहार ग्रहण नहीं करते। जो श्रावक बड़ी श्रद्धा और भक्ति भावना के साथ नवधा पुण्य क्रम से आहार देता है, तो (आहार) ग्रहण करते है, नहीं तो समता और शान्ति के साथ उपवास ग्रहण करते है। यहीं उन साधुओं का नियम है। गुरु भद्रबाहु महाराज इसे अच्छी तरह जानते थे। ऐसी परिस्थिति में गुरुदेव श्रमणसंत भद्रबाहु महाराज, हजारों मुनीराजों को श्रुद्धालु जैन श्रावकों से रिक्त तमिलनाडु कैसे भेजते? कदापि नहीं। आजकल आठ-दस मुनियों का संघ आ जाय तो कितना परिश्रम उठाना पड़ता है। हजारों मुनिराजों के समागम होने पर कितने श्रद्धालु जैन श्रावको की आवश्यकता पड़ेगी? यह समझने की बात है। वस्तुतः दिगंबर जैन साधुगण, जहाँ भक्त एवं श्रद्धालु श्रावक समाज बसता है, वहीं पदार्पण करते हैं। इसलिये यहाँ पर अच्छी तरह समझना यह है कि हजारों की संख्या में मुनिराजों का समागम हुआ हो, तो उन्हें सम्हालने की क्षमता तमिलनाडु के तत्कालीन जैनियों पर निर्भर थी। और उस समय जैन लोग लाखों की संख्या में तमिलनाडु में निवास करते थे। तभी तो चर्या (आहार) को संभालना सभव हो सका, नहीं तो असंभव ही था। अतः निःसन्देह स्वीकार करना पड़ेगा कि श्रुतकेवली भद्रबाहु महाराज के शिष्यगण दक्षिण में, खास कर तमिलनाडु में, आने के पहले से ही वहाँ पर जैन धर्म मौजूद था और लाखों की संख्या में जैन लोग वहाँ निवास करते थे। यह बात निर्विवाद सिद्ध है। इस बात को स्वर्गीय डा. ए. एन्. उपाध्ये ने भी अपने प्रवचनसार की प्रस्तावना में, दृढ़ता के साथ स्वीकार किया है।

इस के अलावा "मेक्डोनल" नाम के विदेशी विद्वान ने संस्कृत व्याकरण पर बहुत कुछ लिखा है। उनका कथन है कि संस्कृत का "इन्द्र" व्याकरण और तमिल भाषा का "तोल्काप्पं" इन दोनों का काल एक है। अर्थात्, इन्द्र व्याकरण का काल ई पूर्व ३५० है। वैसे ही तोलकाप्पं का काल भी है।

पराक्रमी सिकन्दर ने भारत पर चढ़ाई की थी। उस समय के ज्योतिषी भी उनके साथ आये हुए थे। वे ज्योतिषी अपनी टिप्पणी में लिखते हैं कि तमिल भाषा में "तोल्काप्पं" नाम का अद्वितीय व्याकरण है। इससे पता चलता है कि सिकन्दर के भारत में आने के पहले से ही "तोल्काप्पं" प्रसिद्ध व्याकरण के रूप में मशहूर था। इसीलिये ज्योतिषी को उसके बारे में लिखना पड़ा। भारत पर सिकन्दर की चढ़ाई ई. पू. तीसरी सदी से पहले हुई है। अतः "तोल्काप्पं" का काल उससे पहले का है। इसे निःसंकोच स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है। "तोल्काप्पं" एक जैन व्याकरण है। उसमें एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक का वर्णन है। एक स्थान पर लिखा है– विनैयिन नींगि विलंगिय अरिवन मुनैवन कण्डदु मुदल नूलागुम्" अर्थात्– कर्म-बन्धन से विमुक्त ज्ञानी (केवलज्ञानी-सर्वज्ञ) जो प्रथम महापुरुष (आदिनाथ ऋषभदेव) हैं, उनके ज्ञान में प्रतिभासित शास्त्र ही पहला शास्त्र है। यह बात सर्वज्ञ वीतराग आदिनाथ के साथ घटित होने से, निष्पक्ष विचारशील अजैन "वेणुगोपाल पिल्ले" और मयिले सीनु वेंकटस्वामी आदि विद्वान

लोग "तोल्‌काप्पियं" को जैन आचार्यों की ही रचना कहते हैं। अतः उक्त ग्रन्थ को जैन ग्रन्थ कहने में किसी तरह संदेह करने की कोई जरूरत नहीं है। उसमेंसे जैन धर्म संबन्धी कई बातें ज्ञात होने से स्पष्ट है कि उसके पहले से ही तमिल प्रान्त में जैन धर्म फैला हुआ था।

इसके अलावा तमिलनाडु के रामनाथपुरं जिले में बहुत प्राचीन ब्राह्मी शिलालेख मिले हैं। वे अशोक के स्तंभों के शिलालेख से (अक्षरों से) मिलते-जुलते हैं। इतिहास-वेत्ता उन्हें ई. पूर्व. तीसरी सदी के पहले का मानते हैं। ये शिलालेख जैन संस्कृति से संबंधित है। तमिलनाडु के इन शिलालेखों की ब्राह्मी लिपि और लंकाद्वीप के शिलालेखों की लिपि में समानता है ऐसा इतिहास वेताओंका मत है। अतः ये दोनों शिलालेख समकालीन होने चाहिये। इस कारण से ये दोनों ई-पूर्व तीसरी सदी से पहले के माने जाते हैं। ऐसी हालत में तमिल प्रान्त के अन्दर जैन धर्म का अस्तित्व ई. पूर्व तीसरी सदी से पहले मानने में किसी तरह की हिचकिचाहट की जरूरत नहीं है।

और एक बात यह है कि पाण्डवों के जमाने में अर्थात् कृष्णजी के समय में जैन धर्म का अस्तित्व तमिलनाडु में स्वीकार किया जाता है। यह काल नेमिनाथ भगवान के तीर्थ समयका है। इस का आधार (प्रमाण) "तोल्‌काप्पियं" पोरूल अधिकार ३२ सूत्र की व्याख्या में है।

और एक अन्य प्रमाण (आधार) यह है कि इन जैन लोगों के साथ चेर, चोल, पाण्ड्य नरेशों का बेटी-लेन-देन का व्यवहार भी होता था। इस का आधार संघ-काल के ग्रन्थ हैं। संघकाल दो हजार सालपूर्व का माना जाता है। इन लोगों को उस जमाने में "अरुलालर" याने करुणा वाले के नाम से पुकारते थे। अर्थात् जैन लोगों को करुणा वाले कहना उचित है। क्योंकि ये लोग अहिंसावादी थे। इससे पता लगता है कि ई. पूर्व कई सौ सालों से तमिलनाडु में जैन लोगों का निवास था। उस समय के नरेशगण भी जैन हुआ करते थे। इन लोगों का आपस में बेटी लेन-देन का व्यवहार भी होता था।

यहाँ पर एक खास बात यह है कि कृष्णजी के वंशवाले अठारह-गृहस्थ (पतिपेन्कुडि) व्यवसायी अरुलालर थे। ये सब जैन धर्मावलम्बी थे। इन लोगों के उत्तर भारत से दक्षिण भारत आने के बाद, इस प्रान्त में कृष्ण और बलराम इन दोनों को पूजने की परंपरा भी चलने लगी। इससे समझना यह है कि ई. पूर्व कई सदी से अर्थात् कृष्णजी और पाण्डवों के जमाने से जैन धर्म तमिल प्रान्त में विराजमान था, न कि आचार्य भद्रबाहु महाराज के जमाने से[1]। इससे अच्छी तरह पता लगता है कि तमिलनाडु में जैन धर्म प्राचीन काल से ही विद्यमान था।

---

१. समणमुं तमिलुं पेज ४०

(२) जैनधर्म की अभिवृद्धि

प्राचीन काल में जैनधर्म तमिलनाडु भर में फैला हुआ था तथा जैन बहुसंख्यक थे। वे लोग अच्छे धनाढ्य एवं समृद्धिशाली थे। जैन धर्म की अभिवृद्धि के विषय में अन्यमतों के तेवारं, पेरियपुराणं, तिरूविलैयाडर्पुराण, नालायिर प्रबन्ध आदि शैव-वैष्णवों के ग्रन्थ और बौद्धमत के मणिमेखलै, जैनमत के सिलप्पधिकारं विस्तृतरूप से बतलाते हैं। इसके अलावा तमिलनाडु के अन्दर सब जगह मिलने वाले शिलालेख, खण्डहर, जैन मन्दिर, पहाड़, जंगल आदि स्थलों में असुरक्षित, अव्यवस्थित पड़ी तीर्थंकरों की प्रतिमायें इस बात की साक्षी हैं।

जैनधर्म के लोग अन्न, अभय, औषध और शास्त्र इन चार दानों को अपनी शक्ति के अनुसार जाति भेद के बिना सारे लोगों को दयादृष्टि के साथ दिया करते थे। गरीबों को आहारदान, औषधदान देना और जो डरे हुए हैं, उन्हें अभयदान देना अपना जन्मसिद्ध कर्तव्य समझकर देते थे। वे लोग अभयदान का स्थान यथासंभव बहुत कर के जैन मन्दिर के आसपास ही रखते थे। इस स्थान का नाम तमिल भाषा में "अंजिनान् पुगलिडं" अर्थात् "भयभीतों का रक्षा स्थान" था। शासन (खुदाई) में इसके बारे में लिखा हुआ मिलता है। साऊथ आर्काड जिले में पल्लिचन्दल गाँव के खेतों में एक शिलालेख है[1], दुसरा है नार्तारकाड जिला, वन्दवासि ताल्लुका, तेल्लार गाँव में, एक मन्दिर के मण्डप में, मारवर्मन त्रिभुवन चक्रवर्ती विक्रम पाण्ड्यदेव के पाचवें वर्ष में लिखा गया "अंजिनान् पुगलिडं" है।[2] सकल लोक चक्रवर्ती संबुवरायर राजा के १६ वें वर्ष में एक पूरा गाँव "अंजिनान पुगलिडं" रहा।[3]

औषधदान में भी जैन लोग अग्रगण्य रहे थे। ये लोग खुद वैद्य बन कर सभी लोगों के रोगों की निःशुल्क चिकित्सा कर सहायता करते थे। (उन लोगों के औषधिदान-महिमा का स्मरण अपने जैन ग्रन्थ दिलाते है।) जैसे तिरिकडुकं, एलादी, सिरुपंचमूलं आदि ये

---

१. ४४८ ऑफ १९३७-३८ -Ep Rep-१९३७-३८, पेज-८९

२. २२ ऑफ १९३४-३५ ३. ९५ ऑफ १९३३-३४

ग्रन्थ (लौंग-इलायची) रोग निवारण करने वाली दवाई के नाम से रचे गये हैं। इन ग्रन्थों से शरीर का रोग और आत्मा का रोग (कर्म) दोनों निवारण किया जाता था।

वे लोग शास्त्रदान (ज्ञानदान) में भी आगे रहते थे। जैन लोगों के साधुगण हमेशा धर्मोपदेश के साथ-साथ ज्ञानदान दिया करते थे। हर गाँव में पाठशाला खोलकर बच्चों को निःशुल्क पढ़ाकर ज्ञानदान देना जैनियों का कर्तव्य समझा जाता था। इस कारण, सारी जनता जैनों के प्रति आदरभाव दिखाती थी। दूसरी बात यह है कि जैनियों के कारण ही बच्चों के पढ़ने का स्थान पाठशाला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आज भी उसी नाम से पुकारा जाता है।

यहाँ जैन धर्म पनपने का एक कारण और यह है कि जैनों का प्रचार-प्रसार मातृभाषा तमिल में ही हुआ करता था। उनके सारे अमूल्य ग्रन्थ मातृभाषा तमिल में लिखे गये। इससे स्थानीय लोग जैन तत्वों को आसानी से समझ पाते थे। इसी में धर्म प्रचार कार्य भी चलता था। ब्राह्मण वैदिक लोग अपने ग्रन्थों को संस्कृत भाषा मे लिखते थे तथा दूसरों को न पढ़ने देते थे और न सुनने देते थे। यदि कोई इस नियम का उल्लंघन करेगा याने पढ़ेगा तो उस की जीभ काट ली जाती थी, और सुनेगा तो उस के कान में सीसे को तपाकर डाला जाता था। यह कार्य होता था या नहीं, कह नहीं सकते परन्तु प्रतिबन्ध लगाया जाता था। मगर जैनधर्म में किसी तरह की रुकावट न होने के कारण यह धर्म दिनों दिन पनपता रहा था।

इस तरह विशाल हृदयवाले जैन धर्मावलम्बी तमिल देश के अन्दर तमिल भाषा में अपने धार्मिक सिद्धान्त ग्रन्थों को लिखते थे।[1] इस ग्रन्थ निर्माण कार्य में साधु लोगों का सहयोग अवर्णनीय रहा। इन लोगों ने लोकोपकार के निमित्त कोष, काव्य, अलंकार, छन्द, नीतिग्रन्थ आदि अगणित शास्त्रों का निर्माण कर समाज का महान उपकार किया। यह भी जैन धर्म की अभिवृद्धि का कारण बना।

जैन साधुओं की सहायता

तमिल प्रान्त में जैन धर्म का प्रचार और प्रसार का भार ज्यादातर जैन साधुओं पर निर्भर था। वे साधुगण संघ के जरिये सब जगह जाकर जैन धर्म के प्रभावना कार्य में संलग्न रहते थे। संघ के साधुसंत सच्चरित्र के साथ नग्न दिगम्बर मुद्राधारी रहा करते थे। उन त्यागी महानुभावों को आहार के सिवाय और किसी तरह की चीजों की आवश्यकता नहीं होती थी। सिर्फ उन लोगों के लिये जप-तप-ध्यान और स्वाध्यायार्थ एकान्त निवासस्थान की आवश्यकता होती थी। तन्निमित्त वे साधुसंत पहाड़ों और गुफाओं में निवास किया करते थे। केवल उन्हें आहार के समय नगर आना पड़ता था। लेकिन धर्मात्मा लोग ऐसे साधु महात्माओं के सान्निध्य में आकर धर्म लाभ लेते हुए अपने जीवन को सफल बनाते थे। उन त्यागी महात्माओं के निवासस्थान स्वरूप जो पहाड़ और गुफायें हैं, उनमें उन महापुरुष त्यागी गणों के नामों से अंकित पाषाण शिलायें आज भी कई जगह

---

१. मेरुमन्दर पुराणं, तिरुक्कलंबकं आदि

मौजूद हैं। इस तरह साधु महात्मा लोग सारे तमिलनाडु भर में जैन धर्म और जैन सिद्धांत का प्रचार करते थे। उसके साक्षी अगणित शिलालेख हैं।[१]

प्राचीन काल में मद्रास बड़ा शहर नहीं था। छोटे-छोटे गाँवों में बँटा हुआ था। जैसे सैदापेट, चिन्दादिरिपेट और वार्पेमेनपेट आदि। कांजीपुरं, तंजाऊर और मथुरै (दक्षिण) आदि शहर ख्याति प्राप्त थे। कलुगुमलै शिलालेख यह बतलाते हैं कि श्रमण संतगण समणर्मलै, कलुगुमलै, तिरुच्चारणत्तुमलै आदि स्थलों को केन्द्र बनाकर विद्यापीठों की स्थापना करते हुए जैन सिद्धान्त, अहिंसा और करुणा आदि सार्वजनिक धर्मों का भेद-भाव के बिना प्रचार किया करते थे। ये निस्वार्थी, त्यागी महात्मा लोग तन-मन और आत्मा इन सारी अमूल्य चीजों को लोकोपकारार्थ समर्पित करते हुए, रात-दिन सदा-सर्वथा धार्मिक कार्य में संलग्न रहते थे। इन त्यागी महानुभावों के त्याग के कारण से ही जैन धर्म दिन-दूना रात चौगुना बढ़ता रहता था। मुनिराजों का मुख्य कार्य यह हुआ करता था कि लोगों को धर्मोपदेश देना, महोन्नत ग्रन्थराजों की सृष्टि करना आदि।

यहाँ समझने की बात यह है कि मुनिओं का समूह संघ कहलाता था। उस के नायक आचार्य होते थे। पुराने जमाने में मूल संघ के नाम से बहुत बड़ा संघ था। उस के अन्तर्गत चार गण थे। वे हैं– नन्दिगण, सेनगण, सिंहगण और देवगण। प्रत्येक गण में गच्छ, अन्वय ये दो अवान्तर भेद थे।

नन्दिगण संघ के मुनियोंके नाम इस प्रकार हैं– पुष्पनन्दी, श्रीनन्दी, कनकनन्दी भट्टारक, उत्तमनन्दी गुरुवडिगल्, पेरुनन्दी भट्टारक, गुणनन्दी, अज्जनन्दी, भवनन्दी भट्टारक, चन्द्रनन्दी आदि। तमिल भाषा में "नन्नूल" नामक प्रसिद्ध जैन व्याकरण है। उस के रचयिता भवनन्दी भट्टारक हैं। यह व्याकरण सर्वोत्तम माना जाता है। इस के बराबर कोई दूसरा व्याकरण नही है। जैन-अजैन सारे के सारे इसी व्याकरण का उपयोग करते हैं।

सेनगण संघ के मुनिगण के नाम हैं– चन्द्रसेन, इन्द्रसेन, धर्मसेन, कन्दुसेन और कनकसेन आदि। ये सब सेन संघ के थे।

देव संघ के मुनियोंमे तिरुत्तक्कदेवरने - "जीवकचिन्तामणि" महाकाव्य की रचना की है। तोलामोलिदेवरने "चूलामणि" काव्य की रचना की है। ये काव्य जैन-अजैन लोगों के द्वारा सर्वश्रेष्ठ मानकर उपयोग किये जाते हैं।

मुनि वज्रनन्दी ने विक्रम संवत् ५२६ में (ई. ४७०) "द्राविड संघ" की स्थापना की थी। इसके बारे में डॉ. ए. एन् उपाध्ये ने अपने "प्रवचनसार भूमिका" में जिक्र किया है[२] इस संघ के मुनिगणों ने तमिल ग्रन्थों की रचना की थी। "द्राविड़ संघ" के मुनियों के बारे में "मैसूर शिलालेख" में कहा गया है–

श्रीमद्द्रमिलसंघेऽस्मिन् नन्दिसंघोस्त्यरुंगला।
अन्वयो भाति निःशेष शास्त्रसाराधिपारकैः॥

इसका मतलब यह है कि द्रविड संघ नन्दिसंघ के अन्तर्गत था। इसके आचार्य गण

१. सित्तन्नवासल कलुगुमलै, समणर्मलै और तिरुच्चारणत्तुमलै आदि 2. Page XXI Introduction : Pravachana sara By Upadhye, P. 74 J. Bom. R.A.S. Vol. XVII

शास्त्र-सागर के पारंगत थे।

मैसूर शिलालेख में द्रविड संघ के आचार्यों के नाम इस तरह बतलाये गये हैं–त्रिकालमुनि भट्टारक, अजितसेन भट्टारक, शान्तिमुनि, श्रीपाल त्रैविद्यर् आदि।

जैनधर्म की अर्जिकायें

इन्हें अर्जिका और गउन्दी के नाम से पुकारा जाता था। तमिलनाडु के शिलालेख में इनका नाम "कुरत्तियर" बतलाया गया है। जैसे - तिरुच्चारणत्तु कुरत्तिगल्, अरिष्टनेमि कुरत्तिगल्, कनकवीर कुरत्तिगल् आदि।

प्राचीन काल में तमिल प्रान्त के अन्दर जैन धर्म के प्रचार और प्रसार कार्य में अर्जिका माताओं की सेवायें कम नहीं थीं। बल्कि बड़ी महत्त्व की थीं। अर्जिका माताओं से मिलने में और धर्म श्रवण करने में मुमुक्षु महिलाओं को काफी सुविधा रहती थी। इसलिये महिला समाज में, जैन धर्म का प्रचार कार्य, त्यागशील अर्जिकाओं से ज्यादातर हुआ करता था। ये मातायें कई जगह महिलाओं के लिये "विद्या केन्द्र" आदि की स्थापना कर जैन धर्म और नीति धर्म (जैन-अजैनों के योग्य नीति प्रधान आचार शास्त्र) का प्रचार-प्रसार करती थीं। नीति धर्मों के उपदेश के कारण सामान्य लोग भी आकर्षित हो जाते थे। उस जमाने के शिलालेख[१] इन सभी बातों को अभिव्यक्त करते हैं कि अर्जिका माताओं की सेवा अमूल्य थी। इसके उदाहरण के रूप में समझ सकते हैं कि तमिल प्रान्त के साऊथ आर्काड जिले में जिंजी (Gingee) से दस मील की दूरी पर "विडाल" नामक गाँव है। इस गाँव में एक बड़ा पहाड़ है। उस पहाड़ की गुफा में "गुणवीर कुरत्ति" नाम की अर्जिका माताजी पाँच सौ महिलाओं को शास्त्राध्यन (पठन-पाठन) कराती थी। यह बात यहाँ के शिलालेख से ज्ञात होती है। आज भी वह गुफा मौजूद है।

इस तरह साधु-साध्वियों से तमिलनाडु भर में जो धार्मिक सेवायें हुई थीं, उस का पूरा विवेचन करना सर्वथा अशक्य है। हमें यह शंका उठती है कि साधु-साध्वियों के कारण जैन धर्म का प्रचार अविरत चलता रहता है। यदि इसे रोकना हो तो उनके (जैन धर्म) प्रचार कार्य में लगे हुए साधु-साध्वियों को खत्म करना होगा। इसके बिना उन लोगों का (जैनियों) प्रचार रोका नहीं जा सकता। मानों इसी उद्देश्य से साम्प्रदायिक विद्वेषियों मधुरा (दक्षिण) के अन्दर आठ हजार मुनिराजों को सूली पर चढ़ा कर खत्म किया हो। इस तरह का अन्याय दुनियाँ में और कहीं नहीं हुआ होगा। मुनिराजों का यह कैसा त्याग? धर्म के लिये जीवन को तुच्छ समझकर सूली पर चढ़ जाना सचमुच त्याग कहना हो तो यही वास्तविक त्याग है। वे त्यागी महात्मा लोग धर्म के सामने अपने नश्वर शरीर को बिलकुल तुच्छ समझते थे। धर्मरक्षा में जीवन बलिदान कर अपने को धन्य समझते थे। उन महात्माओं का यही विचार था कि जीवन को छोड़ देंगें परंतु धर्मरक्षण करेंगे। कदापि अन्य धर्म स्वीकार नहीं करेंगे। इस तरह के त्यागियों के अभाव के कारण से ही तमिलनाडु आज जैन धर्म प्रचार से खाली पड़ा है।

---

१. गुरुकुल का शिलालेख

राज्य सत्ता की सहानुभूति

कोई भी धर्म तत्कालीन राज्य की सहानुभूति के बिना कभी भी पनप नहीं सकता। "यथा राजा तथा प्रजा" यह नीति बतलाती है कि हर धर्म के लिए राज्यसत्ता की सहायता अत्यन्त आवश्यक है। पल्लव राज्य के अधिपति महेन्द्र वरमन् पक्के जैन धर्मानुयायी थे। वे संस्कृत के अच्छे जानकार और विद्वान थे। उन्होंने "मत्तविलास प्रहसनं" नामक एक रोचक ग्रन्थ का निर्माण किया था। उनमें अन्य धर्मों का उपहासमय खण्डन और जैनधर्म का मण्डन है। स्व.ए.चक्रवर्ती ने उसे प्रकाशित किया था जो अत्यधिक रोचक है।

□ □

(३) मत-संघर्ष

इस बात को हम लोग जान गये हैं कि ई. पू. कई सदी पहले से जैनधर्म तमिलनाडु में समृद्ध होकर पनपता आ रहा था। इसका मतलब यह नहीं कि यहाँ दूसरा धर्म नहीं था। उस जमानें में अन्य धर्मवाले भी मौजूद थे। वे, वैदिक धर्म (ब्राह्मण धर्म), बौद्ध धर्म, एवं मक्खली के आजीवक धर्म तीनों थे। इनके अलावा तमिलनाडु का द्राविड धर्म भी एक था।

ऊपर कहे गये जैन, बौद्ध, आजीवक और वैदिक ये चारों धर्म वाले आपस में लड़कर एक दूसरे को गिराने के प्रयत्न में लगे हुए थे। इसलिये इनकी लड़ाई के बारे में जानना आवश्यक है।

इन धर्मों की लड़ाई में आजीवक धर्म शक्तिहीन होकर तिरोहित हो गया। बाकी जैन, बौद्ध, वैदिक (वेद-आधारित) तीनों बहुत काल तक आपस में लड़ते रहे[१]।

इनमें वैदिक धर्मवालों की हालत भी बिगड़ने लगी। इसका कारण यह है कि वैदिक हवन में हिंसा होती थी। ब्राह्मण लोग ऊँच-नीच का विचार रखते थे। अपने वेदशास्त्र का अध्ययन अन्य मतवालों को नहीं करने देते थे। ये लोग स्वर्णदान, क्षेत्रदान, गोदान, महिषदान, अश्वदान, गजदान और कन्यादान को प्राप्त करने में ही ज्यादा दिलचस्पी रखा करते थे। जैन और बौद्ध साधारण जनता के लिए शास्त्रदान, विद्यादान, औषधदान और अभयदान दिया करते थे। इन कारणों से जैन-बौद्ध के समान वैदिक मत पनप नहीं रहा था।

जैन-बौद्ध के पनपने का कारण यह था कि पहले कहे अनुसार इनके धर्म के प्रचार में साधुओं का हाथ ज्यादा था। इसके अलावा शिक्षा देना, रोगियों का रोग निवारण करना यह अच्छी सेवा थी। हिंसा और माँस भक्षण नहीं करते थे। लोकप्रिय कार्यों से

---

१. मणिमेखलै काव्य १३ वाँ पद्य

जनता आकृष्ट हो जाती थी।

दुर्भाग्य की बात यह है कि ये दोनों (जैन-बौद्ध) मिल-जुलकर नहीं रहे। आपस में लड़ते थे। इसका आधार नीलकेशी और कुण्डलकेशी ग्रन्थ हैं। इन दोनों तमिल ग्रन्थों में, आपस के मतभेद का खण्डन है। आखिर बौद्धमत के अन्दर भेदभाव होने से उस की शक्ति क्षीण हो गयी। ई. ८ वीं सदी (ई. ७५३) में जैन धर्म के महान आचार्य अकलंक महाराज ने कांजीपुरं नगर के कामाक्षी मन्दिर में[1] बौद्धों के साथ शास्त्रार्थ किया। बौद्ध लोग उस वाद में हार जाने से, सारे के सारे, लंकाद्वीप चले गये। इस कारण से भी बौद्ध धर्म क्षीण हो गया।

समृद्ध जैन धर्म भी ज्यादा दिन तक टिक नहीं सका। उसका कारण है कि हिंदू धर्म मे भक्तिमार्ग का प्रवेश हुआ। यह कैसा था? इसके बारे में आगे विचार किया जायगा।

पुराने जमाने में, इन धर्मों के साथ, एक द्राविड़मत (धर्म) का जिक्र किया गया था। उक्त द्राविड मतवाले षण्मुख, शिव– पार्वती और विष्णु की पूजा भक्ति करते थे। ये लोग काली (कोट्रवै) माता को बलि (जीव हिंसा) दिया करते थे। लेकिन शिव और विष्णु देवता के सामने उनके जीव-हिंसा (बलि) का आधार नहीं मिलता है। इसके अलावा, उस समय वैदिक धर्म के सिवाय शैव-वैष्णव धर्म अलग-अलग दिखाई नहीं देते थे।

ऐसी परिस्थिति में वैदिक धर्मवाले आगे बढ़ने का प्रयत्न करने लगे। इन लोगों को आगे बढ़ना है तो जैन-बौद्धों को गिराना है। तभी काम बन सकता है। ये लोग उसके लिए रास्ता ढूँढने लगे। उन लोगों को यही दिखने लगा कि जैन-बौद्धों को हराना है, तो हमें द्रविड मतों के साथ मिल जाना है। तभी साधारण लोगों को अपनी तरफ खींच सकते हैं। इसी उद्देश्य से वैदिक धर्मवाले, द्रविड धर्मवालों के षण्मुख, कालीमाता, शिव-विष्णु आदि देवताओं को अपने देवता के रूप में स्वीकार करने लगे। सिर्फ इतना ही नहीं, द्रविड धर्म के देवताओं के साथ संबन्ध भी जोड़ने लगे। उन देवताओं के नये-नये नाम कल्पित करने लगे। जैसे षण्मुख के साथ सुब्रमण्यन्, कन्दन, मुरुगन आदि नाम जोड़ा गया। तमिलनाडु की देवी वल्लिदैवाने को उनकी पत्नी बनाया गया। इस तरह आर्य-द्रविड संबन्ध होने लगा।

एक जमाने में वैदिक लोग "शिश्नदेव" लिंग का उपहास करते थे। बाद में उसी को उत्कृष्ट देवता मानकर शिव का चिह्न मान लिया गया। पार्वती को शिव की पत्नी बना दिया गया। लेकिन केरल में पार्वती (काली) को शिव की पत्नी न मानकर बहिन मानते आ रहे हैं।

षण्मुख को शिव और पार्वती का पुत्र मान लिया गया। महाराष्ट्र से आये विनायक

---

१. हिमशीतल महाराजा के दरबार में हुआ था। इसका प्रमाण अकलंकाष्टक है। श्लोक:–
"नाहं कारवशीकृतेन मनसा .....राज्ञः श्री हिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो बौद्धौघान्
सकलानविजित्य स घटः पादेन विस्फालितः"

को भी पुत्र मान लिया गया। वैसे ही विष्णु को मायोन, तिरुमाल, नारायण आदि नाम दिया गया। इन सब की नयी-नयी कथायें कल्पित कर दी गयीं। नया पुराण भी लिख दिया गया। इस तरह वैदिक मत (धर्म) द्रविड मत (धर्म) अलग-अलग न रहकर, एक ही हिन्दू मत (धर्म) में परिवर्तित कर दिये गये।[१] इन दोनों की मिलावट एकदम नहीं हुई। इस प्रक्रिया में सैकड़ों साल बीत गये।

□ □

---

१. समणमुं तमिलुं पेज : ५१

(४) जैनधर्म का ह्रास

हिन्दू धर्म के अन्दर भक्तिमार्ग प्रवेश करने के बाद, उसने जैन धर्म पर आक्रमण करना शुरु किया। भक्तिमार्ग ने जै.: धर्म को कैसे गिराया, इस पर जरा विचार करेंगे।

मोक्ष प्राप्त करने के लिये जैन धर्म और हिन्दू धर्म दोनों का विचार क्या है? इसके बारे में पहले जानना, जरूरी है।

जैनधर्म : इनके अरिहन्त परमात्मा राग-द्वेष से मुक्त हैं। उनकी जो भक्ति करते हैं या नहीं करते हैं, दोनों की अवस्था एक अपेक्षा से बराबर की हैं। वे भगवान न देते हैं और न लेते हैं। परन्तु उन्होंने मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग बताया है। प्रत्येक व्यक्ति उनके बताये गये मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। गृहस्थी में रहने वाले स्त्री-पुरुष दोनों पुण्य कार्य करेंगे, तो स्वर्ग मिल सकता है, मोक्ष नहीं। मोक्ष प्राप्त करने के लिये दिगम्बर मुनि का धर्म ग्रहण करना पड़ेगा। मुनि धर्म में, तप कर, कर्मों को नाश करना है। तभी मोक्ष मिलता है। कितना कठिन है। इसका मतलब यह है कि **गृहस्थ धर्म से मोक्ष नहीं है, बल्कि मुनि धर्म से ही मोक्ष मिल सकता है।** मोक्ष प्राप्त करना हो तो सदाचार की बड़ी जरूरत है। सदाचार रूपी तप से मोक्ष मिलता है। इसके लिये प्रयत्न करना पड़ेगा।

हिन्दू धर्म : गृहस्थ, यति, नारी सभी मोक्ष पा सकते हैं। किसी को रोक-टोक नहीं। इसके लिये भक्ति मात्र काफी हे। "भक्ति से मुक्ति" यह उन की नीति है। चाहे जितना भी पाप किया हो, ऐसे पापी व्यक्ति भी शिव (भगवान) के चरणों का भक्त बन जायेगा, तो शिवजी उस के सारे पापों को मिटा कर पवित्र बना देते हैं। साथ-ही-साथ उसे मोक्ष का भी पात्र बनाते हैं। यह शिव भगवान की महिमा है। बनाना-बिगाड़ना सब उनके हाथ में है। इस बात को उनके "नालायिरं तिरुमाले" ग्रन्थ में लिखा मिलता है। उनके "तेवारं" आदि ग्रन्थ में भी इसके कई उदाहरण हैं।

हिन्दुओं के मतानुसार, गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को और भयंकर-से-भयंकर पापी को भक्ति से मोक्ष मिलता है। कोई कठिन परिश्रम करने की जरूरत नहीं है। आचार-विचार, सदाचार, कठिन तप आदि किसी की भी जरूरत नहीं है। केवल भक्ति करनी है बस, मुक्ति मिल जाती है। इस तरह खूब प्रचार होने लगा। भयंकर पापी से लेकर पतित तक सभी को बिना परिश्रम के घर बैठे-बैठे, भोग-भोगते, किसी तरह की रुकावट के बिना आसानी से मोक्ष मिलता है तो, इसे कोई छोड़ सकता है ? कभी नहीं। साधारण जनता आसानी को पकड़ती है और कठिन को छोड़ती है। हर आदमी यही चाहता है कि परिश्रम के बिना मोक्ष मिल जाय। किसी ने मोक्ष को देखा नहीं। देखे हुए व्यक्ति से सुना भी नहीं। मुक्ति तप करने वाले को मिलती है या भक्ति करने वाले को। कोई देखकर बोलने वाला भी नहीं है। जो बडे हैं, वे जो कुछ कहें, उस मत (धर्म) को विश्वास से सत्य मान लिया जाता है। मतान्ध लोगों की विचार करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। फिर क्या रहा ? चाहे सत्य हो अथवा असत्य हो, अपने-अपने धर्मके आचार्य से कह देने पर, मान लिया जाता था। धर्माचार्य के सामने किसी को बोलने की गुंजाइश नहीं थी। वह तो भगवान का ठेकेदार, चेला समझा जाता था। उस के मुँह से जो कुछ निकलता था, वह भगवान की वाणी समझी जाती थी। अंधविश्वास का जमाना था।

हिन्दु धर्म का भक्तिमार्ग आसान और सरल था। ऐसे सुलभ मार्ग को छोड़कर, पुत्र-मित्र-कलत्र, धन-धान्य आदि सभी परिग्रहों को, सांसारिक भोग-विलास को छोड़कर, पाँचों इंद्रियों को दबाकर, कठिन तप के द्वारा आठों कर्मो का नाश कर, ज्ञानवीर होते हुए, मोक्ष प्राप्त करने कौन आयेगा ? कोई नहीं आता। इसलिये साधारण लोग, आसान भक्ति मार्ग को अपनाने लगे। इससे जैन धर्म की वृद्धि क्षीण होने लगी। हिन्दु धर्म की अभिवृद्धि नजर आने लगी।

लेकिन भक्तिमार्ग से ही जैन धर्म क्षीण हो गया हो, ऐसा समझना ठीक नहीं है। हिन्दू धर्मवालों ने जैनधर्म की अभिवृद्धि रोकने के लिये कई तरीकों को अपनाया। धर्म के विपरीत बलात्कार आदि कई दुष्कृत्यों का उपयोग किया गया। इसके कई आधार हैं[१]। इसके बारे में ज्यादा लिखना उचित नहीं है। इस तरह धर्म के माध्यम से आपस में जो लड़ाई हुई थी, वह ईस्वी ७, ८, ९, वीं सदी की थी।

हिन्दू धर्म के अन्दर भी शैव-वैष्णवों की लड़ाई हुई थी। परन्तु जैनियों के साथ लड़ते समय दोनों मिल जाते थे। उन दोनोंकी लड़ाई पीछे की है। तेवारं नामक शैव ग्रन्थ में जिन-जिन मन्दिरों का जिक्र किया गया था, उन सभी स्थानों में जैन-बौद्धों का निवासस्थान, मन्दिर, पाठशाला आदि थे। उन सबको छीन कर बदल दिया गया।

जैन धर्म के लोग हर तरह प्रताड़ित हुए थे। उन लोगों के साथ हिंसा करना, शूली पर चढ़ाना, कलह करना, धन-धान्य, घर-बार सब को छीन लेना आदि अत्याचार हुए थे। धर्म विद्वेष के कारण भयंकर हत्याकाण्ड हुआ था। इन सबका आधार उन लोगों के ही ग्रन्थ हैं[२]।

---

१. समणमुं-तमिलुं : ६६, ६७

२. समणमुं-तमिलुं : ७०, ७१

"अम वण्णं आकरिल.....पलुं पालिप्पल्लिकलुं परित्तु
वकुलंसूल करै पडुत्तु"। (शैव पेरियपुराणं)

इसका मतलब है कि श्रमणों (जैन) के कई घर, धर्मशाला, पाठशाला आदि छीन कर बड़ा तालाब बनाया गया था।

"तलैये आगे अरुप्पदे करूमं कण्डाय"
(शैव-आलवार तिरुप्पाडल ग्रन्थ।)

इसका मतलब है कि जैनियों के सिर काटो, यही तुम्हारा काम है। इसके उदाहरण के रूप में, शैवों के पेरियपुराणं, तिरुविलैयाडर पुराण आदि ग्रन्थों में बतलाया गया है कि आठ हजार जैन साधुओं को शूली पर चढ़ाकर मारा गया था। दक्षिण मथुरा के शिव मन्दिर की दीवार पर इसका दृश्य उत्कीर्णित किया हुआ है। हर साल शैव लोग इसकी स्मृति के रूप में दस दिन उत्सव मनाकर नाटक दिखाते हैं।

कांजीपुरं के पास "तिरुवोत्तूर" में इस तरह का कलहकारी कार्य हुआ था। वहाँ के शैव मन्दिर में यह दृश्य उत्कीर्णित रूप में मौजूद है। चोल देश के "परैयार" में भी यही हुआ था। इसका जिक्र शैव तिरुत्तोण्डर पुराण ग्रन्थ में है। तिरुवारूर में भी इस तरह का कलहकारी कार्य हुआ था। जैनों के मठ, पाठशाला, घर-बार आदि छीन लिए गए थे। यह बात शैव पेरिय पुराणं में है–

"पन्नुं पालि पल्लि कलुं परित्तुवकुलं सूल करै पडुत्तु" (शैव पेरिय पुराणं)

इसका मतलब है कि जैनों के मठ, पाठशाला, घर-बार आदि छीन लिये गये थे। इस तरह जैनों को सूली पर चढ़ाना, हाथी के पैरों तले दबाकर मारना, गाँव से भगाना, जमीन जायदाद छीन लेना आदि भयंकर अत्याचार एवं कलह हुआ था[1]।

करीब पाँच सौ साल के पहले साउथ आर्कांड के "जिंजी" नगर में ई. १४७८ के समय "वेंकट पति नायकन" नाम का छोटा सा राजा राज करता था। उसे "दुवाल कृष्णप्पनायकन" के नाम से भी पुकारते थे। यह विजयनगर साम्राज्य के अधीन तेलगू वंश का था। उसका विचार यह था कि ऊँचे कुलवालों के यहाँ से एक लड़की से शादी कर लेना आवश्यक है। उसने ब्राह्मणों को बुलाकर लड़की देने के वास्ते पूछा। उन लोगों को उसे लड़की देने की इच्छा नहीं थी। किन्तु राजा के सामने मना नहीं कर सकते। इसलिये उन लोगों ने चालाकी से यह कहा कि हम लोगों से श्रमण याने जैन ऊँचे हैं, आप उनसे एक लड़की लीजिये, तब हम भी दे देंगे। यह राजा मूर्ख एवं अन्यायी था। उसने वैसे ही जैनियों से भी एक लड़की माँगी। जैनों को भी उसे लड़की देने की इच्छा नहीं थी। मना करें तो उपद्रव मचायेगा। इस विचार से एक नतीजे पर आये। राजा से यह कहा गया कि अमुक दिन अमुक जगह पर आइये। वहाँ आप को लड़की मिल जायेगी। तदनन्तर जैनियों ने एक घर को खाली कर साफ-सुथरा किया। खूब दीप जलाये, एक कुतिया को नहलवा कर, तिलक लगवाया, और उसे बाँध कर चले गये। राजा ने आकर देखा। कोई आदमी नहीं था। सिर्फ कुतिया बँधी हुई थी।

१. शैव तिरुत्तोण्डर पुराणं और तिरुविलैयाडल पुराणं-२७

इसे देख कर राजा को बड़ा गुस्सा आया। उसने इसे अपना अपमान समझा। इसलिये जैनियों को दण्ड देने के विचार से कत्ल करना शुरु किया। जैसे एक का सिर काटकर दूसरे के सिर पर रखना। इस तरह दस-दस आदमियों को मारता जाता था। उन्हें' एक आदमी ढोता था। इसे "सुमन्तान तले पत्तु" अर्थात् काटे गये दस सिर को ढोने वाले कहते हैं। उस समय हजारों जैन लोग मारे गये। जैन लोगों ने बेमतलब आपत्ति मोल ली थी। उस जमाने में सारे जैन लोग जनेऊ पहनते थे। बहुत से लोग उसे फेंक कर डर के मारे शैव बन गये। अब भी उस जाति वाले शैव के रूप में रहते हैं। उनको नैनार कहते हैं। यहाँ स्थानीय जैनों को भी नैनार कहा जाता है। दोनों का फर्क इतना है कि वे रात में खाते हैं, सिर पर राख लगाते हैं, जनेऊ नहीं पहनते। स्थानीय जैन लोग इन तीनों से परे हैं। उन लोगों को "नीरपूसी नैनार" याने माथे पर राख लगाने वाला कहा जाता है। उनकी संख्या भी काफी है। यदि वे लोग भी जैन रहते तो आज तमिलनाडु में जैनों की लाखों की संख्या होती। जैन धर्म के ऊपर क्या-क्या और कैसी-कैसी आपत्तियाँ नही आयीं? जैन लोगों ने इन सबको झेला। इन सभी आपत्तियों से अभी तक कुछ लोग बचे हैं। उन की संख्या करीब पचास हजार है।

उस समय जिंजी के पास वेलूर में "वीरसेनाचार्य" नामके एक मुनि तटाक के किनारे तप कर रहे थे। सेवक उसे पकड़कर राजा के पास ले गया। उस समय राजा पुत्रोत्पत्ति की खुशी में था। इसलिये मुनि को छोड़ दिया। वे श्रवणबेलगोल चले गये।

जिंजी राजा के अत्याचार के समय जिंजी के पास तायनूर गाँव में "गाँगेय उडैयार" नाम के बड़े व्यक्ति रहते थे। वे उडैयार पालैयं छोटे राजा के पास अभय की दृष्टि से गये थे। वह राजा बड़ा दयालु था। उसने आदर दिया और जमीन जायदाद भी दी। वे ही महाशय दंगा शान्त होने के बाद श्रवणबेलगोल गये थे। वहाँ विराजमान वीरसेनाचार्य महाराज को लेकर आये। यहाँ जो लोग मत परिवर्तन करके शैव बन गये थे, उन्हें फिर से जैन बनवाया गया था। वीरसेनाचार्य महाराज ने उन लोगों को यज्ञोपवीत पहना कर जैन धर्म में दीक्षित किया था। सबको नहीं कर पाये। उस उडैयार परंपरा के लोग जैन समाज में आज भी मौजूद हैं। वे लोग शादी-ब्याह आदि में कहीं भी जावें, समाज उन लोगों को आगे बिठाकर सम्मान करती है। वह कार्य आज तक चालू है।

समझने की बात यह है कि तमिलनाडु के सारे जैन लोग रत्नत्रय स्वरूप यज्ञोपवीत बराबर पहनते हैं। हर साल श्रावण पूर्णिमा के दिन मन्दिर जाकर यज्ञोपवीत बदलते हैं। दूसरी बात यह है कि तमिलनाडु में उस यज्ञोपवीत ने ही जैन धर्म को बचाया था। उस समय जितने लोगों को जैन बना सके, वे जैन बने। बाकी लोग वैसे ही शैवधर्म में रह गये। नैनार के नाम से शैव मतानुयायी के रूप में लाखों लोग आज भी मौजूद हैं। जैन मत के लिये एक से एक भयंकर दुर्घटनाएँ घटी हैं। इस तरह कई आपत्तियाँ आयी थीं। आजकल जितने जैन मौजूद हैं, वे इस तरह की कठिनाइयों से बचे हुए लोग हैं। उन सबसे बचकर अल्प संख्या में आज भी जैन लोग जिन्दे हैं। बौद्धों के समान बिलकुल खत्म नही हुए।

कुछ जैन लोग भयंकर कलह के समय अपना धर्म छोड़ कर, अपनी जीवनरक्षा के निमित्त शैव बने, कुछ लोग वैष्णव बने, और कुछ मुसलमान बने। इसके उदाहरण में देख सकते हैं कि केरल के आसपास आज भी कुछ मुस्लिम लोग अपने नाम के साथ "जैन अल्लाउद्दीन" नैनार मुहम्मद लिखते हैं। ये सब जैन परंपरा के हैं। धर्म को छोड़ा। मगर जैन शब्द को नहीं छोड़ सके। उसे अपने नाम के साथ लिखते ही हैं।

तमिल भाषा में पाठशाला को "पल्लि" कहते हैं। तमिलनाडु में मुस्लिमों की मसजिद को पल्लिवासल के नाम से पुकारा जाता है। जैनों की "पल्लि" पल्लिवासल के नाम से बदल दी गयी है। इस तरह बगावत के समय जैन धर्म छिन्न-भिन्न होकर नष्ट-भ्रष्ट हो गया था।

जैन लोगों ने हिन्दू धर्म में परिवर्तित होने के बाद, अपने आचरण को उस धर्म में मिला दिया। इसके बारे में आगे-विचार किया जायगा। इसमें दो बातें है। एक जो जैन मतपरिवर्तित होकर हिन्दू बन गये, वे अपने आचरण को नहीं छोड़ सके। उन्होने अपने आचरणको हिंन्दू धर्मसे मिलाया। दूसरा यह है कि हिन्दू धर्मवाले जैनियों के कुछ अच्छे आचरण को नहीं छोड़ सके। उसे इसमें मिलाया। तीसरा यह है कि हिन्दू धर्मवालों ने जैनियों के कुछ अच्छे आचरण को ले लिया। वे कौन से हैं?

हिन्दू धर्म में जैनधर्म का आचरण

मॉंस त्याग : हिन्दू धर्म ने जैन धर्म से माँस त्याग के आचरण को ले लिया था। हिन्दू लोग, "कालिमाता", "कोट्रवै" आदि देवताओं को मुर्गे- बकरे आदि जीव बलि देकर उस के माँस को खाते थे। पहले के जमाने में ब्राह्मण लोग भी इन्द्र, वरुण आदि देवों को घोड़े, बैल आदि जीवों की बलि देकर उनका माँस खाते थे[१]। ऋषियों को, भोजन खिलाते समय, और श्राद्ध के समय बछड़े, बकरे, हिरण आदि जीवों का माँस पकाकर खिलाया जाता था। जितना अधिक माँस हो, उतना श्रेष्ठ माना जाता था। इन लोगों पर माँस त्याग का प्रभाव जैनधर्म का ही है।

जब जैनधर्म उन्नत स्थिति में था उस समय जैन लोग माँस खाना, जीव हिंसा करना, मछली पकड़ना, जुआ खेलना आदि कार्यो को करते तो नहीं थे, साथ-ही-साथ करने वालों को नीच भी समझते थे।

"विलंगिन मार्कोन्दु....नरपति आदि दे" (जीवक चिन्तामणि जैन काव्य)

जैन लोगोंने कलह के समय, अपने धर्म को तो छोड़ा, परन्तु प्राण से प्यारी अहिंसा को नहीं छोड़ सके। बल्कि उसे हिन्दू धर्म का अंग बना दिया।

बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध अहिंसा का प्रचार तो करते थे, मगर माँस त्याग पर जोर नहीं देते थे। इसलिये सारे बौद्ध लोग माँसाहारी है। अतः आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने तिरुक्कुरल महाकाव्य में बतलाया है कि– "कोल्लान पुलालै मरुत्तानै कैकूपि एल्ला उयिरुम् तोलुं" अर्थात् अहिंसा के साथ जो व्यक्ति माँस त्यागी होता है उसे संसार के सारे

---

१. समणमुं-तमिलुं पेज ७७

प्राणी हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हैं। उन्होंने खास कर बौद्धों के खण्डन के रूप में यह बात कही थी।

आज भी लंकाद्वीप में शाकाहार को "आर्हत भोजन" कहते हैं। "आर्हत भोजन" माने अरिहंत भगवान की परंपरा का अहिंसामय भोजन। देखिये ! कितना मधुर शब्द है। जैन लोग भी इस शब्द का उपयोग नहीं करते।

दीपावली : यह धार्मिक त्यौहार जैनियों से हिन्दू लोगों ने स्वीकार कर लिया है। जैन लोग भगवान महावीर के मोक्ष-प्राप्ति के दिन को, बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं। समझने की बात यह है कि साधारण लोग मर जावें, तो लोग उसे दुख दिन समझ कर रोते हैं और अशुभ समझते हैं। परन्तु भगवान के मोक्ष प्राप्त करने से, उसे मंगल एवं कल्याण का दिन समझकर दीपालंकार के साथ उत्सव मनाते हैं। यह जैनियों से उधार लिया गया त्यौहार है। बाद में, उसकी कई काल्पनिक कथायें जोड़ दी गयी हैं[१]।

शिवरात्रि : इस त्यौहार को जैन और शैव दोनों मानते और मनाते हैं। जैन मन्दिर और शैव मन्दिर में उस दिन बडी जोरदार पूजा होती है। दोनोंका माह, पक्ष, तिथि, नक्षत्र आदि एक ही है। जैन लोग, चूं कि उस दिन भगवान आदिनाथ कैलाश पर्वत परसे मोक्ष गये थे, इसलिए उनका मोक्ष कल्याण मनाते हैं।

हिन्दू लोग उस दिन शिवजी की पूजा करने से शिव गति की प्राप्ति मानते हैं। इसी उद्देश्य से मनाते हैं। जैन लोगों ने हिन्दू बनने से, इसे भी उस धर्म में मिला दिया है। मोक्ष को शिवगति भी कहते हैं। आदिनाथ भगवान को शिवगति नायक, शिव आदि नामों से जैन ग्रन्थों में स्मरण किया गया है। शैव ग्रन्थ तेवारं में शिवगति शब्द पाया जाता है। इससे कहना यह है कि यह भी जैनियों से लिया: हुआ हैं। शैवोंका त्योहार मानने में, खास कारण मालूम नहीं होता।

कैलाशगिरी : जैन लोगों का विश्वास एवं शास्त्राधार है कि भगवान ऋषभदेव कैलाश पर्वत से मोक्ष प्राप्त किये थे। हिन्दू लोग कहते हैं कि उनके शिवजी कैलाश पर्वत पर रहते हैं। यह भी दोनों में समानता है।

बैल : जैन लोग भगवान ऋषभदेव का चिन्ह वृषभ मानते हैं। हिन्दू लोग भी शिवजी का वाहन बैल मानते हैं। इसके अलावा धर्म का स्वरूप बैल, जैन लोगों से लिया गया है। इस बात को "जीवक चिन्तामणि" का ३४ वाँ पद्य बतलाता है कि धर्म का चिन्ह बैल है।

त्रिषष्ठिशलाकापुरुष : जैन धर्म के अन्दर त्रिषष्ठि शलाका पुरुष माने गये हैं– २४-तीर्थंकर, १२-चक्रवर्ती, ९-बलदेव, ९-वासुदेव व ९-प्रतिवासुदेव। इसकी देखा देखी शैव लोग भी ६३ शैव नायनमार (भक्त) मानते हैं। लेकिन उन के पेरियपुराणं में ऐसा नहीं कहा गया है।

सिद्धों को नमस्कार : प्राचीन काल में (जैनियों के जमाने में) छोटे बच्चों को

---

१. समणमुं तमिळुं पेज ८०

शास्त्राभ्यास शुरु करते समय "नमः सिद्धेभ्यः" मंगल के रूप में कहा जाता था। आजकल वह पद्धति हट गयी। तमिलनाडु के समान कर्नाटक में भी "सिद्धं नमः" कह कर अक्षराभ्यास शुरु किया जाता था। आन्ध्र में भी "ओम् नमः शिवाय सिद्धं नमः" कहा जाता था। इन लोगों ने शिवाय शब्द जोड़ लिया। इस तरह द्राविड़ के सारे प्रांत में यह पद्धति चलती थी। सभी जगह जैन साधुगण ही जैन-अजैन सभी बच्चों को विद्याध्ययन कराते थे। उस ज़माने में आजकल की तरह पाठशाला की व्यवस्था नहीं थी। यह कार्य केवल जैन साधुओं के हाथ में था। वे सिद्धों को नमस्कार किये बिना कैसे शुरु करते? कदापि नहीं।

साधु महात्माओं के निवासस्थान एवं विद्याभ्यास स्थान (दोनों एक हैं) पल्लि के नाम से प्रसिद्ध था। वहाँ पर अमीर-गरीब, जैन-अजैन, छोटा-बड़ा के भेद-भाव के बिना ही पढ़ाया जाता था। इस कारण सभी जाति के लोग साधु महात्माओं के भक्त रहा करते थे। साधुओं के विद्याभ्यास स्थानरूप "पल्लि" आजकल "पल्लिक्कूडं" के नाम से पुकारा जाता है। वह "पल्लि" नाम आज तक चालू है जो जैन साधु महात्माओं की सेवा की याद दिलाता रहता है।

जैनधर्म के भगवानों को हिन्दू धर्म में मिला लेने का साहस

हिन्दू धर्म के शैव-वैष्णव लोग जैन धर्म को खतम करने के लिये कई तरीकों को अख्तियार करते थे। उनमें यह भी एक है। उसके लिये कई कल्पित कथायें तैयार कर ली गई थीं।

विष्णुजी ने जैनधर्म का उपदेश दिया है। इस तरह की एक कथा कहकर जैनधर्म स्वतन्त्र धर्म नहीं है, हिन्दू धर्म का एक अंग है। इस रूप में जैनधर्म को मिटाने का प्रयत्न किया गया था। इसके बारे में "विष्णुपुराण" के अन्दर एक कथा है। वह यह है कि जैन-बौद्धों को असुर और हिन्दुओं को देव बताया गया है। मत्स्यपुराण में भी इस कथा का संबन्ध जोड़ा गया है।

विष्णुपुराण की कथा यह है कि असुर और देवों का युद्ध हुआ। उस युद्ध में देव हार गये। देव लोग विष्णु के पास जाकर सहायता माँगने लगे। विष्णु ने अपने शरीर से "माया मोह" नाम के एक व्यक्ति को तैयार कर भेजा। उसने जाकर असुरों को नग्न श्रमण धर्म का उपदेश देकर आर्हत बनाया। उसी आर्हत धर्म को कहते हैं जैनधर्म। इसका मतलब यह है कि जैनधर्म विष्णु से उत्पन्न धर्म है।

अग्निपुराण और कांजी माहात्म्यं मे भी यह कथा है। परन्तु नाम वगैरह कुछ बदला गया है। भागवतपुराण में बतलाया गया है कि विष्णु महाराज ने बुद्ध और वृषभदेव का अवतार लेकर बौद्ध और श्रमण (जैन) धर्मों का उपदेश दिया था।

"विष्णुपुराण" में भी यही कथा है। परमात्मतन्त्र नामक वैष्णव आगम ग्रन्थ में बताया गया है कि विष्णु जी ने योग, सांख्य, बौद्ध, आर्हत (जैन) आदि धर्मों की सृष्टि की थी।

नम्मालवार नामक वैष्णव भक्त का कथन है कि – विष्णु जी ने श्रमण, बौद्ध मतों की सृष्टि की है।

वैष्णव ग्रन्थ के समान शैव ग्रन्थ तेवारं भी यह बतलाता है कि विष्णु, बुद्ध मुनि बने और नारद, श्रमण मुनि बने। इन दोनों ने जाकर असुर लोगों को वश में करने के लिये बौद्ध, श्रमण (जैन) धर्म का उपदेश दिया।

तिरुक्कूवप्पुराण बतलाता है कि विष्णु ने बुद्ध, अर्हत्, जिनन् तीन रूप धारण कर असुरों को बौद्ध-जैन धर्म का उपदेश दिया है। यहाँ पर अवुण शब्द का प्रयोग है। अवुण का मतलब है– "असुर"।

जैन-बौद्धों को असुर बनाकर एक तरफ किया गया और हिन्दुओं को देव बनाकर एक तरफ किया गया। दोनों का युद्ध हुआ। इसमें असुर जो जैन-बौद्ध थे वे जीते और वैदिक देव हारे। इसका मतलब यह रहा कि तर्क (वाद-विवाद) में वैदिक लोग, जैन-बौद्धों को जीत नहीं सके। परन्तु विष्णु, शिव और इन्द्र की सहायतासे जीते। अर्थात् साम, भेद दाम रूपी सरल उपाय से नहीं जीते। परन्तु दण्डरूपी बलात्कार से जीते। यही अर्थ ध्वनित होता है।

अब तक वैष्णवपुराण देखा। अब "शैवपुराण" को देखिये। उसका कथन क्या है?

शैव पुराण के आधार से शिवजी ने तीन पुरों को जीता। इसलिये उनका नाम है "त्रिपुरारि"— तीन पुरों को जीतने वाला। तीन पुर (नगर) की कल्पना बराबर नहीं है। परन्तु वास्तविक बात यह है कि जैनियों के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र तीन थे। वैसे ही बौद्धों के बुद्ध, धम्म, संघ ये तीन थे। उन लोगों ने इन तीनों को तीन नगर की कल्पना कर ली। जैसे-तैसे इन दोनों मतों (धर्मो) को जीतने से शिवजी ने तीनों नगरों को जीत लिया। इस तरह की कथा कल्पित कर जोड़ ली गई है। और भी कई कथायें है। ग्रन्थ विस्तार के भय से नहीं दिया जा रहा है।

इस तरह जैन-बौद्धों को दबाने एवं खत्म करने के वास्ते कल्पित कथाओं का सहारा भी लिया गया था।

□ □

(५) जैन आचार्यों की साहित्य-सेवा

तमिलनाडु के अन्दर जैन धर्म के बारे में विचार करते हैं तो मुख्यतया साधुओं को ही ग्रहण किया जाता है। जब तमिलनाडु के अन्दर जैन धर्म महोन्नत स्थिति में था, तबकी जैन साधु महात्माओं की साहित्य सेवा व सृष्टि के बारे में यहाँ विचार करेंगे।

संघ काल

कुछ विद्वानों का कहना यह है कि पहला, दूसरा और तीसरा इस तरह यहाँ तीन संघ थे। पहला संघ दक्षिण मथुरा में था। इस संघ में हजारों विद्वान थे। यह संघ हजारों साल चलता रहा। दक्षिण मथुरा नष्ट होने के बाद पहला संघ भी खत्म हो गया। फिर दूसरा संघ पाटलिपुत्र में स्थापित किया गया था। वह संघ भी हजारों साल चला। उसमें भी हजारों विद्वद्‌गण सदस्य थे। कालवश वह भी नष्ट हो गया। उसके बाद तीसरा संघ दक्षिण मथुरा में स्थापित किया गया था। उसमें भी हजारों विद्वान सदस्य थे। इस तरह के संघों की कल्पना अजैनों की है। इनके संस्थापक कौन थे? काल कौनसा है? इनका निर्णय नहीं हो पा रहा है। अपनी इच्छानुसार मनमाना बोलते हैं।

इन संघों के बारे में पी. टी. श्रीनिवास अय्यर आदि कुछ निष्पक्ष विद्वानों का कहना यह है कि ये तीनों संघ बिलकुल काल्पनिक हैं। वास्तविक नहीं हैं। सचमुच में जैन और बौद्ध विद्वान साधुओं के संघ थे। उन महापुरुषों के द्वारा साहित्य-सृष्टि की भरमार होने लगी। इसे देखकर शैव लोगों को सहन नहीं हुआ। उन लोगों (शैव) ने अपने मत का प्रचार करने के वास्ते इन तीनों संघों की कल्पना कर डाली। उनके तीनों संघों की बात बिलकुल गप्प है। वे शिव और उनका लड़का षण्मुख का नाम जोड़ कर, सिर्फ अपना मत प्रचार करना चाहते थे। यही उनका मुख्य उद्देश्य था। जो साहित्य, संघकाल का माना जाता है, उसमें संघ का नाम तक नहीं है। संघकाल, साहित्य में शैवों का ही है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस तरह कारण बताकर शैवों के तीनों संघों का अय्यंगार आदि बहुत से इतिहासवेत्ता लोग खण्डन करते हैं। अतः निष्पक्ष अजैन विद्वानों के विचारों को स्वीकार

कर शैवों के कल्पित (निराधार) संघों को छोड़ देना ही उचित है। क्योंकि उनका काल आदि निर्णय नहीं होने से विश्वास करने लायक नहीं है। उसके बारे में और भी विचार किया जा सकता है। परन्तु समय को बेकार करना है। अस्तु।

कुछ विद्वानोंका कहना यह है कि उक्त तीनों संघ जैनों के थे। न कि शैवों के। अपने मत के प्रचार के कारण शैव लोग जैन संघों को अपना संघ कह डालते हैं। वास्तव में संघ उनके नहीं हैं। जैनों के ही हैं।

और कुछ विद्वानोंका कहना यह है कि जैनाचार्य वज्रनन्दी नामक महामुनि के प्रयत्न से द्रामिल (द्रविड) संघ की स्थापना हुई थी। उसमें बहुत से जैन विद्वान मुनि थे। वे मुनिगण पाण्डित्य में अगाध एवं अलौकिक थे। आज कल जो अमूल्य जैन साहित्य मिलता है, वह सब उन महात्माओं की देन है। कुछ भी हो, उन विद्वानों का कहना यह है कि जैन साधु-महात्माओं की साहित्य सेवा अमूल्य है।

पहले के जो दो संघ थे उनके काल का जो साहित्य है, उनकी गिनती "मेल पदिणेन कणक्कुनूल" (पहले के अठारह ग्रन्थों) में आती है। आखिर का जो संघ है, उसके साहित्य और उनकी गिनती "कील पदिणेन कणक्कुनूल" (बाद के अठारह ग्रन्थों) के रूप में आती है।

पहले के दो संघकाल के साहित्य में राजा लोगों के झगड़े आदि का वर्णन है। उसमें धर्म और नीति आदि जनोपयोगी विषयों का अभाव होने के कारण, उस पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। आखिर के (तीसरे) संघ का काल ई. पूर्व तीसरी सदी से माना जाता है। आजकल मिलने वाले उत्तमोत्तम जैन साहित्य-रत्न इसी में पाये जाते हैं। कुछ लोगों का कहना यह है कि मतद्वेष के कारण पहले जो दो संघ थे, उस काल के जैन साहित्य को जलाने, पानी में फेंकने आदि दुराचार के द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया है। पहले के दो संघ-काल के साहित्य में जैनत्व का अंश तो अवश्य था परन्तु आखिर के संघ काल के साहित्य के समान विशेष नहीं पाया जाता। उसके बारे में काल (समय) ही उत्तर दे सकता है। काश! मतद्वेष इतना भयंकर है? इसी ने सारे अमूल्य रत्नों का नाश किया।

अब हम जैन साहित्य के बारे में विचार करेंगे।

साहित्य, काल (समय) का दर्पण है। इतिहास बतलाता है कि हर एक भाषा का साहित्य अपने स्वत्व रक्षा के निमित्त करण्डक (सुरक्षा पेटी) है। इतिहास और साहित्य को विभाजित कर देखना असंभव है। इसके पुरातनत्व का निर्णय भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। फिर भी हम इस महत्वपूर्ण ग्रंथ में उसके महत्त्व को बताना आवश्यक समझते हैं। कुछ इतिहासकारों का भ्रमपूर्ण प्रतिपादन है कि जैनधर्म का जन्म उत्तर भारत में हुआ और वह दक्षिण में ई. पूर्व तीसरी सदी में आया। इसके बारे में हम पहले ही काफी प्रकाश डाल चुके हैं। वास्तव में यहाँ दक्षिण तमिलनाडु में जैनत्व का अस्तित्व उक्त काल के पहले भी रहा, इसके कई आधार मिलते हैं।

जैन साहित्य को क्रमबद्ध करते हुए हम यहाँ विचार करेंगे। जैनत्व के महत्त्व को हम दूसरे मार्ग से नहीं जान सकते। उसके लिये अपना साहित्य ही एकमात्र सहारा है। अन्य मतवाले इस साहित्य के कालनिर्णय में भी गड़बडी करते हैं। फिर भी हमें अन्य साधन न होने के कारण इसी रास्ते पर चलना पड़ता है। अतः इसी के सहारे आगे बढ़ेंगे।

तोलकाप्पियं : भाषाविज्ञ लोग जानते हैं कि साहित्य के आधार से ही व्याकरण की सृष्टि होती है। जब हम इस तोलकाप्पियं को तमिल भाषा का पहला व्याकरण मानते है, तो इसके पहले अनगिनत साहित्य अवश्य होना चाहिये। इसमें कोई शक नहीं है। अब हमें जो सीढ़ी मिली है, उसी से ऊपर चढ़ना है। आज हमें पूर्ण रूप में मिलने वाला व्याकरण ग्रन्थ तोलकाप्पियं ही है। यह काल की अपेक्षा से प्राचीन माना जाता है। तोलकाप्पियं के बाद के अर्वाचीन व्याकरण कई हैं। उन सब के बारे में पीछे विवरण दिया जायेगा। उक्त तोलकाप्यं के रचयिता "तोलकाप्पियर" हैं। इस ग्रन्थ की व्याख्या कई लोगों ने लिखी है। इसमें अक्षर, वचन और अर्थ इस तरह के तीन अधिकार हैं। उसमे १६०२–पद्य हैं। इस ग्रन्थ के काल के बारे में यद्यपि मतभेद हैं फिर भी अविरोध रूप से इसका काल ई. पूर्व तीसरी सदी का माना जाता है। इसके महत्व के बारे में बहुत से लोगों ने खूब तारीफ की है। श्री वैयापुरि पिल्लै, मयिलै-सीनु-वेंकट स्वामी, वेंकट राजुलु रेड्डियार, वेणु-गोपाल पिल्लै आदि कई विद्वान लोग इसे जैन ग्रन्थ ही मानते हैं। उसमें जैनत्व की भरमार है। अतः इसे हर तरह से स्वीकार करना पड़ेगा कि यह जैन ग्रन्थ ही है और यह जैनाचार्य द्वारा ही विरचित है।

मैं इस ग्रन्थ के जैनत्व के बारे में सिर्फ एक उदाहरण देना पर्याप्त समझता हूँ। वह यह है कि– "विनैयिन्नींगिय विलंगिय अरिवन् मुनैवन् कण्डदु मुदल-नूलागुं" यह तोलकाप्यं का पद्य है। इसका अर्थ यह है कि कर्मों से विनिर्मुक्त जो भगवान सर्वज्ञ देव हैं, उनसे कहा गया (देखा गया) जो शास्त्र है, वही पहला है। हर कोई इस पद्य के आधार से समझ सकता है कि यह ग्रन्थ जैनत्व के साथ कहाँ तक सम्बन्ध रखता है? इसका निर्णय पाठकों के ऊपर ही छोड़ देते हैं।

पेरगत्तियं : यह भी एक प्राचीन व्याकरण है। परन्तु यह ग्रन्थ अप्राप्य है। इस ग्रन्थ के कुछ पद्य मिलते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि ये पद्य पेरगत्तियं के नहीं है। इस पर खोज करना है। यह भी एक जैन व्याकरण ग्रन्थ माना जाता है।

मापुराण : यह भी एक जैन व्याकरण है। इसके नाम के सिवाय बाकी कुछ भी मालूम नहीं पड़ता। जैन व्याकरण की गणना में यह भी एक है।

संघकाल के पद्य ग्रन्थों में जैनत्व का प्रभाव

संघकाल से लेकर चंपू काव्य के काल तक, चाहे जैन हो या अजैन, सारी रचनायें पद्यरूप में ही हुआ करती थीं। चंपूकाव्य की रचनायें जब शुरु होने लगीं, तभी से गद्य-पद्यात्मक रचनायें शुरु हुईं। उसके पहले सारे ग्रन्थ सिर्फ पद्यरूप में ही लिखने की प्रथा थी। संघकाल के पद्यग्रन्थों में "एट्टुतोगै" (आठ गिनती) नाम की आठ रचनायें

हुई। उनके अन्दर जैनाचार्यों का प्रभाव अच्छी तरह दीखता है। "उलोचनार" नाम के कवि ने पैंतीस पद्यों की रचनायें की थीं। "नट्रिणै" नामक ग्रन्थ के रचयिता ने ३८३ पद्यों की रचनायें की थीं। कुछ निष्पक्ष विद्वानों का कहना यह है कि इन पद्यों में जैनत्व का प्रभाव ज्यादातर दीख पड़ता है।

महाकाव्य

काव्यों में महाकाव्य और लघुकाव्य इस तरह दो भेद होते है। महाकाव्य पाँच हैं। उनमें तीन काव्य जैनों के हैं। वे हैं : जीवकचिन्तामणि, सिलप्पधिकारं और वलैयापति। इनमें "सिलप्पधिकारं" ई. दूसरी सदी का माना जाता है। जीवकचिन्तामणि के बारे में इतिहासकारों में मतभेद है। कोई कहते हैं कि वह ई. दूसरी सदी का है। दूसरे कहते है कि ई. सातवीं सदी का है। तीसरे कहते है कि नौवीं सदी का है। परन्तु विचारशील टी. एस्. श्रीपाल आदि विशेषज्ञों का कहना यह है कि वह ई. सातवीं सदी का ही होना चाहिये। उसके पीछे का नहीं हो सकता।

जीवकचिन्तामणि : यह ग्रन्थ बडे महत्त्व का माना जाता है। इस ग्रन्थ के कथानायक जीवन्धर स्वामी हैं। इस महान ग्रन्थ के रचयिता तमिल भाषा में चतुर एवं उच्च कोटि के विद्वान "तिरुत्तक्कदेवर" हैं। जीवन्धर स्वामी की जीवनी का उन्होंने अत्यन्त रोचक ढंग से वर्णन किया है। जीवन्धर प्रभु आठ कन्या रत्नों के साथ बड़े वैभव से विवाह करते हैं। इस ग्रन्थ में बार-बार शादी होने से इसे (मणनूल) वैवाहिक ग्रन्थ के नाम से भी पुकारते हैं। इसका मूलाधार गद्यचिन्तामणि कहा जाता है। लोगों का कहना यह है कि इसकी कथा गद्यचिन्तामणि से ली गई है। कुछ लोग इसे गद्यचिन्तामणि से पहले का मानते हैं। शायद दोनों समकालीन हों। इसे चौपाई (वेण्बा) पद्य का आदि ग्रन्थ माना जाता है। इसका मतलब यह है कि इसके पहले तमिल भाषा में चौपाई पद्य की प्रथा नहीं थी। इस ग्रन्थ में कुल ३१४५ पद्य हैं। तेरह अध्याय हैं। अध्याय को तमिल में "लम्ब" कहते है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का विशद वर्णन है। धर्म को भूलने से और काम के अतिरेक से मानव को क्या क्या विपत्तियाँ होती हैं, इसके उदाहरण में जीवंधर स्वामी के पिता सत्यंधर महाराजा को दिखाकर अच्छे ढंग से समझाया गया है।

नीतिमान एवं तद्भव मोक्षगामी जीवंधर स्वामी के भोग वैभव का इसमें विशद् वर्णन है। आखिर उनके (जीवंधर स्वामी) वैराग्य का स्वरूप, संसार, शरीर और भोग त्याग द्वारा समझाया गया है कि हे मानव, जीवन्धर स्वामी के अपरिमित भोग-वैभव को देखो। अन्त में उन्होंने नश्वर भोग-लालसा को तिलांजलि दी और अविनश्वर लक्ष्मी के शाश्वत भोग पर कैसे आरूढ हुए, इस पर ध्यान दो, तथा अपने कर्तव्य पालन में जाग्रत हो जाओ। इस तरह अमृतमय शिक्षा अनवरत मिलती है। इस ग्रन्थ में धर्म, नीति, दर्शन, कवित्व और अलंकार आदि सभी विषय ओतप्रोत हैं। महाकाव्य के योग्य सभी विषय इसमें प्रतिपादित होने के कारण जीवकचिन्तामणि को महाकाव्य की कोटी में गिना जाता है।

इस काव्य की महत्ता के बारे में एक कवि का कहना यह है कि एक व्यक्ति नाव पर बैठा है, वह नाव नदी में डूबती जा रही है। ऐसी हालत में कोई रक्षक आकर कहता है कि अब तुम्हारी नाव डूबती जा रही है। साथ में तुम सभी डूब जाओगे। यदि कोई अमूल्य चीज तुम्हारे पास हो तो साथ लेकर मेरे साथ आ जाओ। मैं तुम्हें बचा लूंगा। तब वह कहता है कि मेरी सारी संपत्तियाँ डूब जाय तो परवाह नहीं। परन्तु मैं एक मात्र अमूल्य चिन्तामणि को लेकर आपके साथ चलूंगा। इससे आप समझ सकते हैं कि इस महाकाव्य का महत्त्व कितना है? इस तरह तमिलनाडु की जैन, अजैन सारी जनता जीवकचिन्तामणि महाकाव्य को सर्वश्रेष्ठ मानती है।

सिलप्पधिकारं : इलंगोअडिगल (अडिगल माने त्यागी सूचक गौरवपूर्ण शब्द है) नामक जैन साधु से रचा गया अद्‌भुत ऐतिहासिक ग्रन्थ है। ग्रन्थकर्ता जैन धर्मानुयायी चेर (केरल) राजा के द्वितीय पुत्र युवराज थे। वे बाल ब्रह्मचारी थे। वे कैसे तपस्वी बने? वह कथा अत्यन्त रोचक है। चेर राजा के दो पुत्र थे। वे दोनों राजसभा में बैठे हुए थे। सभा में एक ज्योतिषी आया और दोनों राजकुमारों को देख कर बोला, महाराज, (राजा से) लड़कों के अंग लक्षणों से पता चलता है कि आपका द्वितीय पुत्र ही आप के राज्य का अधिकारी होगा। इस बात को सुनते ही बड़े लड़के का मुख मुरझा गया। छोटे ने अपने भाई के मुखारविन्द को देखा और करुणाभाव के साथ, भरी सभा में कहा कि मैं ज्योतिषी के वचन को झूठा सिद्ध करूँगा। झट, अपने कपड़े निकाल फेंके और त्यागी याने क्षुल्लक बन गया। वही द्वितीय पुत्र इलंगो, इलंगो अडिगल के नाम से गौरव के साथ पुकारा जाने लगा। वही त्यागी महाशय इलंगो अडिगल ने आगे जाकर अपनी विद्वत्ता से उक्त "सिलप्पधिकारं" की रचना की थी। वह ग्रन्थ तत्कालीन चरित्रात्मक है। लोग इसे तीसरे संघकाल की रचना मानते हैं। उक्त ग्रन्थ से पता चलता है कि कवि के जीवन काल में मतद्वेष का अतिरेक ज्यादा नहीं था। समन्वय का जमाना था।

ग्रन्थ में जैनत्वके साथ-साथ शैव, वैष्णव मतों के देवताओं का आदर के साथ जिक्र किया गया है। तो भी जैनधर्म के तात्विक विषयों का वर्णन प्रचुर मात्रा में है। नाटक के ढंग से लिखा गया पहला गद्यात्मक ग्रन्थ है। ५०० पंक्तियां है। तीन राजाओं (चेर, चोल, पाण्ड्य) के बारे में विस्तृत विवेचन है। तीन खण्ड (काण्ड) हैं। तीसरे संघकाल के तमिल प्रान्तवासियों के जीवन का परिचय खूब मिलता है।

कोवलन और कण्णगी इस ग्रन्थ के कथा पात्र हैं। पुराने जमाने में राजा-महाराजाओं को ही कथापात्र बनाने की प्रथा थी। मानों उस रिवाज के प्रतिपक्ष में यह ग्रन्थ खड़ा किया गया हो। इसका मतलब यह है कि सिलप्पधिकारं का कथापात्र जो कोवलन है, वह वणिक्कुल का पुत्र है। इस ग्रन्थ में रोचकता के साथ तीन बातों का विवेचन किया गया है। धर्म मार्ग से च्युत राजा को धर्म हीयमान (गिरा हुआ) बना देता है। सती माता को महन्त लोग भी पूजते हैं। प्रारब्ध कर्म आगे जाकर फल अवश्य देता है। अलावा इसके इस ग्रन्थ में "गवुन्दि अडिगाल" नामक आर्यिका को पात्र बनाकर, उनके द्वारा जैन धर्म का गूढ रहस्य प्रतिपादित किया गया है। इस तरह ग्रन्थ का महत्त्व वर्णनातीत है।

वलयापति : इस ग्रन्थ के रचयिता का नाम, स्थान, मातृ-पितृ आदि का विवरण मालूम नहीं पड़ता। शायद ख्याति से निरपेक्ष आचार्य महाराज ने अपने नाम आदि का विवरण नहीं दिया हो। परन्तु यह जैन ग्रन्थ है। इसका आधार, मिले हुए कुछ पद्य है। इन पद्यों से पता चलता है कि ग्रन्थकर्ता आचार्य भाषा के उद्‌भट विद्वान थे। ग्रंथ पूर्णरूप से नहीं मिलता। सिर्फ ६२ पद्य ही मिल सके हैं। रचना की दृष्टि से सभी पद्य महत्त्व के हैं। दिगंबर जैन साधु सन्तों की रचना हर तरह से साधु ही होती है।

लघुकाव्य

लघु काव्य : ये काव्य भी पाँच है। वे हैं :

(१) उदयन कुमार काव्य, (२) नागकुमार काव्य, (३) यशोधर काव्य, (४) चूलामणि काव्य, एवं (५) नील केशी। ये पाँचों जैन काव्य है। अर्थात् जैनाचार्यों द्वारा रचे गये उत्तम काव्य ग्रन्थ हैं।

उदयन कुमार काव्य : "कन्दियार" नामक जैन मुनि द्वारा रचा गया अद्‌भुत काव्य है। इसे पेरूंगदै नाम के ग्रन्थ का सार अथवा संक्षेप कहते है। इसमें ३६ विरुत्तं नामक पद्य हैं, सभी महत्त्वपूर्ण हैं। हर एक पद्य कवित्व की गंभीरता के कारण, लोकप्रसिद्ध है। इसका काल ई. १५ वीं सदी का माना जाता है।

नागकुमार काव्य : ग्रन्थ कर्ता का नाम पता नहीं है। संस्कृत के नागपंचमी कथा के आधार पर इसकी रचना हुई है। इसमें पाँच अध्याय है। १८० विरुत्तं नामक पद्य है। यह बड़ा रोचक काव्य है। इसे हाल ही में मद्रास विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया है। यह ग्रन्थ ई. १२ वीं सदी का माना जाता है।

यशोधर काव्य : ग्रन्थ कर्ता का नाम मालूम नहीं है। इस ग्रन्थ में पाँच अध्याय है। ३२० पद्य है। यशोधर महाराजा की कथा सुन्दर ढंग से वर्णित है। जीव हिंसा से होने वाली हानि और उससे होने वाले पाप का भयंकर ढंग से वर्णन है। अपनी छाया के समान पाप कई भव तक पीछा करता है और कठिन-से-कठिन दण्ड देता है। पापभीरु, भव्यजीवों को चेतावनी देता है कि देखो यशोधर को, उसने आटे से नकली मुर्गा बनाकर देवी को बलि दी। उस का फल उसे कई भवों तक भोगना पड़ा। यदि कोई वास्तव में जीव-हिंसा करता है, तो उस की क्या दशा होगी? सोचने, समझने और सुधारने की बात है। इसकी कई व्याख्यायें हुई हैं। यह ग्रन्थ १२ वीं सदी का माना जाता हैं।

चूलामणि : यह "तोलामोलिदेवर" नामक महान आचार्य द्वारा रचा गया अद्‌भुत ग्रन्थराज है। महाकाव्य के योग्य सभी लक्षण इसमें पाये जाते हैं। न जाने क्यों फिर भी लघुकाव्य के अन्दर इस की गणना की गई है। इसमें १२ अध्याय हैं। २१३१ पद्य हैं। हर एक पद्य आचार्य के महत्त्व को प्रकट करता है। अत्यन्त मनोहारी ग्रन्थ है। सभी धर्म वाले इसे बड़े चाव से पढ़ते हैं। यह ग्रन्थ ई. १० वीं सदी का माना जाता है।

नील केशी : ग्रन्थकर्ता का नाम मालूम नहीं है। यह तर्क ग्रन्थ है। १० सर्ग हैं। ८९४ पद्य हैं। ग्रन्थ की नायिका नीली नाम की देवी है। इसमें अन्य धर्मों का खण्डन

एवं जैनधर्म का मण्डन है। "वामनमुनि" नामक मुनिराज ने इसकी "समय दिवाकर विरुत्ति" नामक अतिसुन्दर व्याख्या लिखी है। इसे प्रो.चक्रवर्ती ने कुछ साल पहले विशद अंग्रेजी भूमिका के साथ छपवाया है। अन्य लोगों का प्रकाशन भी है। इस ग्रन्थ के आधार से ग्रन्थ कर्ता की तार्किक शक्ति और विद्वत्ता प्रकट होती है। यह ग्रन्थ १० वीं सदी का माना जाता है।

पदिणेन कील कणक्कुनूल : (अठारह उपग्रन्थ)

इन ग्रन्थों में कई जैन ग्रन्थ हैं। जैसे : तिरुक्कुरल, नालडियार, पलमोलि, तिरुकडुकं, एलादि, सिरुपंचमूलं, तिणैमालैनूर्ट्रंबद, आचारक्कोवै, नानमणिक्कडिकै, इन्नानार्पदु, इनियवैनार्पदु आदि हैं। इन ग्रन्थों के बारे में आगे विचार किया जायेगा।

तिरुक्कुरल : यह अत्यन्त प्रशंसनीय नीति ग्रन्थ है। दूसरी सदी का है। महान आचार्य कुन्दकुन्द का है। इसके महत्त्व से प्रभावित होकर, अन्य मतवालों ने अपनी जाति के तिरुवल्लुवर से यह ग्रन्थ रचा गया है, इस तरह कहते हुए झूठी काल्पनिक कथा भी जोड़ दी है। "पायिर" नामक पहले अध्याय के मंगलाचरण रूप दस पद्य जैनत्व के साक्षी हैं। उसमे प्रयुक्त आशा-निराशा मुक्त, उपमातीत, धर्मचक्र के नायक, अष्टगुणविशिष्ट, कमलफूल के ऊपर संचार करने वाले आदि-आदि उपमायें जैनत्व की सूचक हैं। ये सब गुण जिनेन्द्र भगवान के सिवाय अन्यत्र असंभव हैं। फिर भी अर्थ का अनर्थ करनेवाले झूठे प्रचारकों की कमी नहीं है। जिनमें से कुछ लोगों का कहना यह है कि यह ग्रन्थ नीति प्रधान होने के कारण सर्व धर्मग्रन्थ माना जाय। स्वार्थी लोग मनमानी बोलते हैं। यह तमिलवेद के नाम से प्रसिद्ध हैं। दोहा के रूप में रचा गया अत्युत्तम ग्रन्थ है। दो पंक्तिवाले पद्य को तमिल में "कुरल" कहते है। इस ग्रन्थ में १३३ अधिकार हैं। हर एक अधिकार में दस-दस पद्य हैं। कुल १३३० पद्य हैं। इस ग्रन्थ के महत्त्व के कारण करीब ४० देशी-विदेशी भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। संस्कृत और हिन्दी में भी इसका अनुवाद हुआ।

नालडियार : यह श्रमण याने जैन मुनियों की कृति है। इस ग्रन्थ के बारे में एक कथा है। वह यह है कि पाण्ड्य राजा जैन था। हजारों मुनिराजों को आश्रय देता था। बडा मुनिभक्त था। उनके राज्य में आठ हजार मुनिराज विराजमान थे। राजा सेवाभावी होने के कारण मुनियों पर बड़ा प्रेम करता था। इसलिये उन मुनिराजों को कहीं पर जाने नहीं देता था। मुनि महाराजों का विचार यह था कि मुनियों को एक ही जगह पर ज्यादा दिन नहीं रहना चाहिए। अतः मुनिगण राजा से बिना कहे, एक-एक पद्य लिख कर अपनी-अपनी चटाई के नीचे रख दिये और प्रातःकाल रवाना हो गये। राजा सुबह आकर देखता है कि वहाँ कोई मुनिवर नहीं है। राजा को गुस्सा आ गया। गुस्से के कारण मुनिवरों से लिखे गये सारे पद्यों को नदी में फिंकवाया। कुल आठ हजार पद्य थे। उन आठ हजार पद्यों में से चार सौ पद्य पानी के प्रवाह से उलटे तैर कर सामने आये। उन चार सौ पद्यों का संग्रह ही "नालडियार" है। यही उन अजैनों की गढ़ी हुई कथा है। परन्तु कथा वास्तविक नहीं है। क्योंकि कोई भी ताडपत्र पानी के प्रवाह से उलटा नहीं

आ सकता। अतः यह कथा काल्पनिक है। कुछ भी हो जैन मुनियों के द्वारा रचा गया नालडियार साधारण ग्रन्थ नहीं है। बल्कि नीति से भरा ग्रन्थरत्न है। जैन और अजैन सभी इस ग्रन्थराज के महत्त्व पर मुग्ध हैं। सभी पद्य नीति से भरे हुए हैं। एक भी पद्य छोड़ने लायक नहीं है। यदि कोई व्यक्ति इस ग्रन्थ की नीति को अपने जीवन में उतारेगा, तो उसका जीवन आनन्दमय होगा। यह उत्तमोत्तम ग्रन्थ, पढ़कर, अनुभव करने एवं जीवन में उतारने लायक है। इसे एक चिन्तामणि रत्न कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इसका काल पाँचवीं सदी का है। इसमें चार सौ चौपाई पद्य हैं।

पलमोलि : यह ग्रन्थ पलमोलिनानूर के नाम से प्रसिद्ध है। पलमोलि का मतलब है– लोकोक्ति। हर एक पद्य के आखिर में एक-एक लोकोक्ति है। इस ग्रन्थ में चार सौ पद्य हैं। इसके रचयिता का नाम "मून्टुरै अरैयनार" है। इसके पद्यों को देखने से पता चलता है कि ये महात्मा तमिल भाषा के ओजस्वी विद्वान रहे होंगे। इनके अन्य ग्रन्थों का पता नहीं चलता।

तिरिक्कडुकं : यह ग्रन्थ का नाम है और साथ-ही-साथ एक दवाई का नाम भी है। जैसे सोंठ, काली मिर्च और पिप्पिलि इन तीनों से शरीर का रोग मिट जाता है वैसे ही इस ग्रन्थ के हर एक पद्य से तीन तरह के अर्थ निकलते है। उनसे शरीर के, मन के और कर्म (रूपी) रोग मिटते हैं। इसमें एक सौ पद्य हैं। ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी एवं सारगर्भित है। इसके रचयिता का नाम "नल्लादनार" है। इनकी बाकी जीवनी मालूम नहीं पड़ती।

एलादि : इस ग्रन्थ का नाम एलादि है। एल इलायची को कहते हैं। जिसप्रकार इलायची, लवंग, सोंठ, कालीमिर्च आदि दवाई से शरीर का रोग मिटता है। वैसे ही इस ग्रन्थ के अध्ययन से संसार, शरीर, भोगरूपी रोग मिट जायेगा। कितनी अच्छी बात है कि आचार्य ने दवाई के नाम से ग्रन्थ की रचना की है। ग्रन्थ अत्यन्त सरस एवं भावपूर्ण है। ग्रन्थ के रचयिता का नाम "गणिमेदवियार" है। इसमें अस्सी पद्य हैं। सब-के-सब चितामणी रत्न हैं। वेण्बा नामक चौपाई पद्य से रचा गया है। इसके लेखनकाल के बारे में पता नहीं चलता।

सिरुपंचमूलं : जैसे धनियाँ आदि दवाइयों से शरीर की बीमारी नष्ट हो जाती है, वैसे ही इसमें पाँच नीति कथायें हैं। इनसे मानव जाति को अच्छी सीख मिलती हैं। ग्रन्थ कर्ता का एक मात्र उद्देश्य यह है कि मनुष्य के जीवन को सुधारना। उसके लिये हर तरह से शिक्षायें दी जाती हैं। ग्रन्थ कर्ता का नाम "कारियासान" है। इस ग्रन्थ का लेखनकाल मालूम नही पड़ता।

तिणैमालैनूट्रैबदु : एक तिणै (भेद) के तीस पद्य हैं। ये सभी पद्य आत्मा या मन संबन्धी है। इस तरह पाँच तिणै (पाँच भेद) के डेढ़ सौ पद्य हैं। पद्य हृदयग्राही हैं। पढ़ने लायक हैं। इसके रचयिता एलादि ग्रन्थ के कर्ता "गणिमेदवियार" ही हैं। ये दोनों ग्रन्थ उक्त मेधावी से रचे हुए अनमोल जवाहरात हैं। इनके काल, जन्मस्थान, पिता, माता आदि अज्ञात हैं।

अचारक्कोवै : यह ग्रन्थ आचार की प्रधानता को लेकर रचा गया उत्तम शास्त्र है। इसमें गृहस्थों का आचार विस्तृत रूप में वर्णित है। ग्रन्थ कर्ता का नाम आदि का पता नहीं चलता।

नानमणिक्कडिगै : इसके प्रत्येक पद्य में चार चार नीतियाँ भरी पड़ी हैं। इस ग्रन्थ को नीति का भंडार कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इस ग्रन्थ के कर्ता "विलंबिनायनार" हैं। ये संघकाल के कपिल से भिन्न हैं। इसका काल आदि का पता नहीं चलता।

"इनियवै नार्पदु" : इस ग्रन्थ में कुल चालीस पद्य हैं। सांसारिक जीवों को कौन-कौनसी चीजें प्रिय लगती हैं, उनका इस रचनामें खुलासा है। यह ई. ५ वीं सदी का ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रन्थ के कर्ता "पूतंचेदनार" हैं। यह ग्रन्थ व्यावहारिक विषयों को बतलाने के कारण जैन-अजैन सभी लोगों को प्रिय है।

"इन्नानार्पदु" : इस ग्रन्थ में कुल चालीस पद्य हैं। संसार दुखों का कारण और उसका निवारण विस्तृत रूप में बतलाया गया हैं। एक सौ चौसठ दुखों का वर्णन है। इसके रचयिता "कपिलदेवनायनार" हैं। ये संघकाल के कपिल से भिन्न हैं।

□ □

नीति ग्रंथ

पदिणेव कील कणक्कुनूल :- (अठारह गिनती वाले ग्रन्थ) जैन ग्रन्थ सारे के सारे नीति से भरे अद्भुत चिन्तामणि हैं। उन के अलावा अर्थात (ऊपर कहे गये नीति ग्रन्थ के अलावा) जो नीतिग्रन्थ हैं, उनका खुलासा नीचे दिया जा रहा है।

अरुंगलचेप्पु :- यह श्रावकाचार ग्रन्थ हैं। दोहा सरीखा दो चरणों का है। स्वामी समन्तभद्राचार्य के रत्नकरण्डकश्रावकाचार का अनुवाद कहें, तो अत्युक्ति नहीं होगी। तमिल भाषा-भाषियों को रत्नकरण्डकश्रावकाचार ग्रन्थ पढ़ने की जरूरत नहीं है। इसीसे अपने आचार का परिज्ञान श्रावकों को अच्छी तरह हो जाता है। दोनों में कोई फर्क नहीं है। यह ग्रन्थ बारहवीं सदी का है। इस अद्भुत ग्रन्थ के रचयिता तमिल भाषा के प्रख्यात विद्वान आचार्य शिरोमणी "अरुंगलान्वयत्तार" हैं। इस ग्रन्थ के अध्ययन से आचार्य श्री की विद्वत्ता का परिचय मिल जाता है। ग्रन्थ की भाषा सरल है। विषय उत्तम है। आचार्य ने इसमें श्रावकों के आचारों का वर्णन करने के साथ-साथ, नीतियों को भी जमा दिया है। इसमें कुल १०० पद्य हैं। जैनत्व के रहस्य को बतलाने वाला यह अत्यद्भुत ग्रन्थ है।

इसकी कई व्याख्यायें हुई हैं। कई संस्करण निकल चुके हैं। कई हजार किताबें बिकी हैं। यह एक बड़ा ही लोकप्रिय ग्रन्थ है।

जीवसंबोधनै :- यह भी नीति का ग्रन्थ है। इसमें ५५० पद्य हैं। कथा के द्वारा नीति को बतलाने वाला यह एक महनीय ग्रन्थ है। इसमें बारह अधिकार हैं। जैन सिद्धान्त के रहस्य को प्रकट करनेवाला महान ग्रन्थ है। इसके रचयिता देवेन्द्रमहामुनि हैं। इनकी जीवनी और काल के बारे में हम सभी अनभिज्ञ है ।

औवैअगत्तिलचूडि :- जैन नीतितत्वों को प्रतिपादन करने वाला यह एक श्रेष्ठ ग्रन्थ है। औवै का नाम तमिलनाडु भर में प्रसिद्ध है। एक अर्जिका महिला थी, जिस का नाम "औवै" था। इनके कारण समस्त जैन समुदाय का गौरव है। अजैन लोग भी इनका आदर करते हैं। परन्तु उनका सारा कथन जैनत्व के आश्रित है।

पुराण

पुराण, चरित्र, इतिहास सब एक हैं। पुराणों में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव इन त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों की जीवनी है। इससे पुण्य-पाप का स्वरूप जाना जाता है। पुण्य से कैसी ऊँची पदवी मिलती है और सुख मिलता है तथा पाप से कैसा दारुण दुख भोगना पड़ता है? इत्यादि बातों को समझने का पुराण साक्षात दर्पण है। इसे प्रथमानुयोग शास्त्र भी कहते हैं। प्रारंभिक अवस्था में रहनेवाले श्रावक-श्राविकाओंके लिये अत्यन्त आवश्यक शास्त्र है। वास्तव में संसारी जीवों को इससे जो लाभ मिलता है, वह अन्यत्र नहीं है। कथारूप होने के कारण श्रावकों को इसे पढ़नें में दिल भी लग जाता है। इसका अध्ययन पुण्याश्रव का कारण है। इससे पापाश्रव का निरोध होता है। तमिल भाषा-भाषियों के लाभार्थ तमिल में भी कई पुराण लिख गए हैं।

श्रीपुराण :- यह मणिप्रवाल ग्रन्थ है। मणिप्रवाल याने तमिल और संस्कृत भाषा का संमिश्रण है। इसे महापुराण का संक्षिप्त सार कहें, तो अत्युक्ति नहीं होंगी। इसमें वर्णन निकाल दिया गया है। बाकी सब ज्यों-का-त्यों है। इसमें त्रिषष्ठि महापुरुषों (शलाका) की जीवनी विस्तार से वर्णित है। तमिलनाडु के जैनियों के घर में इसकी महिमा गाई जाती है। प्रत्येक श्रद्धालु श्रावक के घर में इसकी प्रति अवश्य रहेगी। जो इसको पढ़ना नहीं जानते हैं, वे भी अपने घर में विराजमान कर, भक्तिभाव के साथ इसकी पूजा करते हैं। इसके कई संस्करण निकल चुके हैं। इसका न तो काल ठीक तरह से मालूम है और न ग्रन्थ कर्ता का विवरण आदि ही। इस तरह इस ग्रन्थ का महत्त्व ज्यादा है। और जैन लोग इसकी महिमा गाते रहते हैं।

मेरुमन्दर पुराणं :- यह बहुत बड़ा पुराण ग्रन्थ है। इस महान ग्रन्थ में तेरह अध्याय हैं। १४०५ चौपाई–पद्य हैं। "मेरु और मन्दर" इन दो महापुरुषों के कई भवों की जीवनी व्यावर्णित है। ये दोनों महापुरुष बलदेव और वासुदेव थे। यह कथा बहुत रोचक है। इसमें नीतियाँ भरी हुई हैं। जैनधर्म के नवपदार्थ के स्वरूप आदि रहस्यों से ओत-प्रोत है। सभी लोग इसे बड़े चाव से पढ़ते हैं। जैन लोग इसे पूज्य ग्रन्थ मानकर अपने घर

में विराजमान करते हैं। और भक्ति के साथ स्वाध्याय करते-कराते हैं। अन्य लोग भी बड़े चाव से पढ़ते हैं। इसके रचयिता का नाम वामनाचार्य है। इनका अपर नाम मल्लिषेणाचार्य भी है। ये महान आचार्य प्राकृत, संस्कृत और तमिल इन तीनों भाषाओं में निपुण थे। इनको उभयभाषा-- कविचक्रवर्ती नाम की उपाधि भी थी। इन्होंने कई सैद्धान्तिक ग्रन्थों की व्याख्यायें भी लिखी हैं। इनके दिव्य चरण जिनकांची (कांजीपुर) के मन्दिर में विराजमान है। अध्यात्मवेत्ता ये महान आचार्य वहाँ रहकर आत्म साधना के साथ-साथ ग्रन्थ रचनायें भी करते रहे होंगे। इनका काल चौदहवीं सदी का माना जाता है। इस ग्रन्थ के कई संस्करण निकल चुके है तथा हजारों प्रतियाँ बिक गयी हैं। प्रो. चक्रवर्ती ने भी एक संस्करण निकाला था और अंग्रेजी तथा तमिल में विस्तृत भूमिकायें लिखी थीं। इस आचार्य के माता-पिता आदि का विवरण नहीं मिलता।

मल्लिनाथ पुराण :- इस ग्रन्थ में भगवान मल्लिनाथ का जीवन-चरित्र वर्णित है। यह पूर्ण रूप से नहीं मिलता। इसके दो-तीन पद्य श्रीपुराण के अन्दर उदाहरण के रूप में दिये गये हैं। इसीसे पता चलता है कि मल्लिनाथपुराण नाम का एक विशिष्ट ग्रन्थ था। परन्तु मतद्वेष के कारण अनुपम हजारों ग्रन्थराज अग्नि में स्वाहा कर दिये गये और नदी में फेंक दिये गये। उनमें यह भी चला गया होगा। मतद्वेष भयंकर अत्याचार करवाता है। मतद्वेष के कारण ही हजारों अनमोल ग्रन्थ रत्न हाथ से खोने पड़े।

शान्तिनाथपुराण :- यह ग्रन्थ भी पूर्ण रूप में नहीं मिलता। "पुरत्तिरट्टु" नामक ग्रन्थ से इस का पता चलता है। इसके केवल ९ पद्य मिलते हैं। ग्रन्थ कर्ता का काल आदि का भी पता नहीं चलता।

चरित्र

नारदचरितै :- "पुरत्तिरट्टु" नामक ग्रन्थ से ही इसका भी पता चलता है कि "नारद चरितै" नाम का ग्रन्थ लिखा गया था। यह पूर्ण रूप से नहीं मिलता। उपर्युक्त ग्रन्थ से यह भी मालूम पड़ता है कि इसमें नारद-पर्वत का वर्णन था। इसके सिर्फ आठ पद्य मिलते हैं। आठों महत्त्वपूर्ण हैं। यदि पूरा ग्रन्थ मिल जाता तो उस का महत्त्व अलग ही होता। काल और रचयिता आदि का पता नहीं है।

पिंगलचरितै और वामनचरितै :- इन ग्रन्थों के सिर्फ नाम ही मिलते हैं न कि ग्रन्थ। "याप्पेरुंगलं" नामक जैन व्याकरण उपलब्ध है। उसकी व्याख्या में उदाहरण देते समय उक्त दोनों ग्रन्थों के नाम लिखे गये हैं। उनका पूर्ण विषय अज्ञात है।

वृत्तान्त ग्रन्थ

नरिविरुत्तं : तमिल भाषा में किसी वस्तु या जीव जन्तु को प्रधान बना कर जो लिखे जाते हैं, उसे विरुत्तं याने "वृत्तान्त" कहते हैं। इस तरह जैनाचार्यों ने कई ग्रन्थ रचे हैं। उनमें नरिविरुत्तं भी एक है। यह ग्रन्थ जीवक चिन्तामणि के रचयिता तिरुत्तक्कदेवर द्वारा लिखा गया छोटा सा उत्तम ग्रन्थ है। इसके कुल पद्य ५२ हैं। आचार्य ने इसमें संसार की असारता का व्यावर्णन करने के लिये दो सियारों की कथा लिखी है। १२ पद्य तक

गीदडों की कथा है। आगे बतलाया गया है कि बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था अनित्य हैं। धन सपत्ति भी नष्ट होने वाली है। शरीर नाशवान् है। इस तरह संसार की असारता का सुन्दर वर्णन है। लोकोक्ति से तथा कथाओं के व्यापक वर्णन से जैनत्व की सच्चाई प्रकट होती है। इस ग्रन्थ की रचना क्यों हुई ? यह लबी कथा है। उसे बताने लगे तो ग्रन्थ बढ़ जाने का भय लगता है। इसका काल आदि जीवकचिन्तामणि में जो बताया गया है, वही समझना चाहिये क्योंकि जीवकचिन्तामणि की रचना के समय में ही इसकी रचना हुई थी।

कोंब्रिविरुत्त :- इतिहासज्ञों का विचार यह है कि कोंबिविरुत्त के कर्ता भी तिरुत्तक्कदेवर ही हैं। इस ग्रन्थ के बारे मे बाकी विषय मालूम नहीं पडता। बेल्लक्काल सुब्रमण्य मुदलियार द्वारा रचे गये अतिनवीन "कोंब्रिविरुत्त" से यह बहुत प्राचीन है।

इसके अलावा याने तिरुत्तक्कदेवर के नरिविरुत्त से एक अलग नरिविरुत्त भी है। उसका महत्त्व नही है। अन्धकारमय तीसरी और चौथी शताब्दी के साहित्य काल मे इस की उत्पत्ति बतलाई जा सकती है। "वीरसोलिय" नामक व्याकरण ग्रन्थ से पता चलता है कि इसी जमाने मे "किलिविरुत्त" और "एलिविरुत्त" जैसे ग्रन्थों की रचना हुई थी। किलि, एलि का अर्थ है– तोता, चूहा। ऐसे जीवों के नामों से ग्रन्थ रचना करना आचार्यो के चमत्कार का प्रदर्शन है।

केशि-ग्रन्थ

तर्कशास्त्र के विषयों को बतलानेवाले ग्रन्थों को केशिग्रन्थ के नाम से पुकारते हैं। अर्थात् सारे केशिग्रन्थ तर्कशास्त्र के है। "नीलकेशी" जैन तर्कशास्त्र है। प्रो चक्रवर्ती ने इसे प्रकाशित किया है। अन्य प्रकाशन भी हैं। स्व प्रो चक्रवर्ती के प्रकाशन मे विशेषता यह है कि उसमे बहुत विस्तृत अग्रेजी भूमिका है। उक्त भूमिका में प्रो साहेब ने ग्रन्थ के तथा आचार्य के अतरतम रहस्य का अच्छे ढग से प्रतिपादन किया है। जिससे ग्रन्थ का और आचार्य का आशय आसानी से जाना जाता है। आचार्य किस ढग से अभिप्राय प्रकट करते हैं ? इसे देखिये। तर्कशास्त्र के पारगत आचार्य ने "केशि" नामक एक देवी को आधार शिला बनाकर षण्मतों का खण्डन एव स्वमत मडन बड़ी गभीरता के साथ किया है। अत्यद्भुत ग्रन्थ है यह। इसका काफी प्रचार है। अजैन मत के शैवसिद्धान्त समूह वालों ने भी इसे दूसरी बार प्रकाशित किया है। ऊपर लिखा जा चुका है कि केशि का अर्थ है तर्क, अत सभी केशि ग्रन्थ तर्क-ग्रन्थ हैं। जैसे पिगलेकेशि, अजनकेशि, कालकेशि आदि। नीलकेशि के सिवाय बाकी के ग्रन्थ अप्राप्त हैं। काल और आचार्य के नाम आदि का भी पता नही चलता। शायद प्रशसा से दूर होने के कारण ही इन आचार्योंने अपने नाम आदि नहीं दिए हों ? इन त्यागियों की त्यागवृत्ति हमे सचमुच ही रोमांचित कर देती है।

अन्य साहित्य

पेरुंगदै :- यह एक महान साहित्य ग्रन्थ माना जाता है। इसके पद्य, चौपाई-पद्य के

समान हैं। इस ग्रन्थ का नायक (कथानायक) उदयन राजा है। इस ग्रन्थ के रचयिता "कोंगुवेलिर" नाम के प्रसिद्ध जैनाचार्य हैं। कुछ लोग इस ग्रन्थ को दूसरी शताब्दी का बताते हैं, और कुछ लोगों का कहना यह है कि वह सातवीं सदी का होना चाहिये। इसका पहला भाग और अन्तिम भाग नही मिलता। काव्य, नय और उपमा-अलंकार आदि के कारण इस ग्रन्थ का महत्त्व बहुत ऊँचा है। उदयन, माननीका और वासवदत्ता आदि पात्रों के कारण भी ग्रन्थ का माहात्म्य बढ़ा है। कथा वास्तविक होने के कारण, काव्य तदनुरूप ओज गुण से भरपूर है।

जैनरामायण : जैन रामायण की कथा श्रीपुराणं में है। जैन रामायण के पद्य, उदाहरण के रूप में, कहीं-कहीं अन्य ग्रन्थों में दिये गये हैं। इसीसे इस ग्रन्थ का पता चलता है। हो सकता है मतद्वेष के कारण, इसे भी जला दिया गया हो अथवा उसे पानी में फेंक दिया गया हो। मिले हुए पद्यों से अच्छी तरह पता चलता है कि एक जमाने में यह रामायण पूर्ण रूप में था। इसके पद्य विरुत्त, अगवल से परिपूर्ण थे। इसके रचयिता का नाम, काल आदि पता नहीं चलता। ग्रन्थ ही नहीं मिलता तब अन्य बातों के बारे में तो सोचना ही बेकार है। इस तरह बहुत से जैन ग्रन्थ जान बूझकर नष्ट कर दिये गये हैं। उन मूढ़ लोगों को इसका महत्त्व क्या मालूम ?

इस ग्रन्थ के नाम से पता चलता है कि यह कोई अत्युत्तम ग्रन्थ अवश्य रहा होगा।

□ □

व्याकरण ग्रन्थ

आजकल जितने भी व्याकरण मिलते हैं, उनमें जैनों के व्याकरण ही ज्यादा हैं। अन्य लोगों के व्याकरण नहीं के बराबर हैं। व्याकरण का इतिहास उनसे समृद्ध बना है। तमिल भाषा के आदि व्याकरण के रूप में माने गये "पेरगत्तियं", "तोलकाप्पियं" आदि जैन व्याकरण ही हैं। तोलकाप्पियं के बारे में पूर्व में विवरण दिया ही गया है। बाकी के बारे में विचार करेंगे।

नन्नूल : यह अक्षर और वचनों को बतलानेवाला अत्युत्तम प्रसिद्ध व्याकरण है। एक जमाने में इसके विषय में पाँच व्याकरण ग्रन्थ थे। यह नन्नूल तोलकाप्यं की परंपरा का है। इसके रचयिता का नाम "भवणन्दी" है। ये महामुनि थे। ये तमिल भाषाके अद्वितीय

वैयाकरणी थे। इनका काल तेरहवीं सदी का माना जाता है। इस ग्रन्थ की व्याख्या अनेक लोगों ने लिखी है। आजकल यही व्याकरण सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है। इसके बराबर और कोई व्याकरण नहीं है। इसका जैन और अजैन सभी लोग आदर के साथ उपयोग करते हैं। तमिल भाषा वाले सारे लोग इसके जानकार हैं। बच्चों से लेकर बड़े तक इसका अध्ययन करते हैं।

याप्पेरुंगलं : यह व्याकरण ग्रन्थ दीपगुंडी के निवासी अमृदसागर नाम के मुनिवर द्वारा रचा गया है। यह दसवीं सदी का है। इसमें याप्पु (पद्य रचना) के बारे में बतलाया गया है। यह सूत्र के रूप में रचा गया है। व्याकरण ग्रन्थों में इसका महत्त्व ज्यादा है।

याप्पेरुंगलक्कारिगै : इस व्याकरण के अन्दर याप्पु (छन्द) के बारे में विशेष रूप से बतलाया गया है। यह ग्रन्थ ४४-कट्टलै कलित्तुरै नाम के पद्यों में रचा गया है। यह भी "अमृदसागर" मुनिमहाराज की अद्भुत कृति है। इसका काल दसवीं सदी का है। इसके आगे-पीछे के जितने भी व्याकरण हैं, उन सब को जीतकर यह काल-प्रवाह में निश्चल मेरु के समान खड़ा है। इस ग्रन्थ के ऊपर लिखी हुई गुणसागर मुनि महाराज की व्याख्या सर्व श्रेष्ठ मानी जाती है।

अमुदसागर : अमुदसागरं आचार्य ने अपने नाम (अमुदसागर) से ही इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है। इस महान आचार्य का समाधिस्थान (चित्तामूर-जिनंकाचिमठ) के पास विळ्ळुक्कं में है। हर साल चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का दिन युगादि करके जाना जाता है। युगादि के समय में इनके चरणों की पूजा की जाती है। हजारों लोग शामिल होकर शोभा बढ़ाने के साथ-साथ पुण्य लाभ प्राप्त करते हैं। यह ग्रन्थ भी दसवीं सदी का है। इसके कुछ ही पद्य मिलते हैं। पूरे नहीं मिलते।

नंबियगप्पोरूल : "नंबी" नामक मुनिवर इसके रचयिता हैं। इसके कर्ता तोण्डेनाडु (तंजारूर) के रहने वाले थे। अगप्पोरूल (आत्मिक विषय) नामक विषयों को लेकर उनका पाँच अध्यायों में विवेचन किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ पढ़ने एवं मनन करने लायक है।

नेमिनाथ : इस व्याकरण ग्रन्थ के कर्ता का नाम गुणवीर पण्डित है। बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान के नाम पर लिखा गया यह अत्यन्त सुन्दर ग्रन्थ है। (इसी कारण ग्रन्थ-रचयिता का नाम भी वही पड़ गया।) कांजीपुरं के समीपवर्ती कलत्तूर इन का जन्मस्थान माना जाता है। यह ग्रन्थ तेरहवीं सदी का माना गया है। यह अक्षर और वचन के भेदों को बताता है। इसमें नौ हिस्से (भाग) हैं। ९६-सूत्र हैं। चौपाई-रचना की विधि को बतलानेवाला यह एक सुन्दर ग्रन्थ हैं।

अविनयं : यह अविनय नाम के आचार्य से रचा गया नूतन ग्रन्थ है। इस महान व्याकरण का कर्ता अगस्तियर का छात्र बतलाया जाता है। अगस्तियर आदि- व्याकरण के कर्ता थे। उन्हें इन्द्रादि संस्कृत-व्याकरण का पूर्ववर्ती माना जाता है। अगवल, वेण्बा आदि पद्यों से इसका निर्माण हुआ है। इसमें अक्षर, वचन, पद्य-रचना याप्पु आदि विषयों

पर प्रकाश डाला गया है। इसकी व्याख्या "राजपवित्रपल्लव नरैयार" ने लिखी है। कुछ लोग इसे पाँचवीं सदी का मानते हैं। और कुछ लोगों का कहना यह है कि यह ग्रन्थ तोलकाप्पियं के जमाने का है। इसके नब्बे से ज्यादा पद्य मिलते हैं।

उला ग्रन्थ

उला का अर्थ है भक्ति। इसमें प्रातः काल गाये जाने वाले चौबीस तीर्थंकरों की भक्ति के पद्य मिलते हैं।

आदिनाथ उला : यह श्री आदिनाथ भगवान के भक्ति रस से भरा हुआ अत्यद्भुत एवं सरस ग्रन्थ है। इसमें भक्ति रस उमड़ पड़ा है। प्रातः काल में लोग इसे भक्ति से पढ़ते हैं तथा स्तोत्र के रूप में गाते हैं। पढने में/ गाने में मन आत्मविभोर हो जाता है।

अप्पाण्डैनादर उला : इसे अनन्त विजय ने लिखा है। इसे सोलहवीं सदी का माना गया है। इसमें छःसौ बीस पद्य हैं। तिरुनरूंगुण्ट्रं (यह एक गाँव का नाम है) के भगवान पार्श्वनाथ को अप्पाण्डैनादर कहते हैं। यह स्थान तमिलनाडु का एक अतिशय पावन क्षेत्र है। यहाँ महावीर जी के समान ही भक्त लोग अपनी मनौती मनाने जाते हैं। उक्त भगवान के नाम से बहुत से ग्रन्थ रचे गये हैं। उनमें यह उला भी एक है। उला (भक्ति) गाथा भरी अद्भुत शैली की रचना है। उला ग्रन्थों में यह सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है।

अरहन्त भगवान के भक्ति भरे पद्य : यह आधुनिक ग्रन्थ है। पोन्नुरंगं के द्वारा लिखा हुआ है। इस में कुल सोलह पद्य हैं। सभी गाने लायक हैं। वे सभी भक्ति से भरे हुए हैं।

अरहन्त देव के सिन्धु : ये गाने (भजन) हैं। इसमें सिर्फ पचास पद्य मिलते हैं जो अप्पाण्डैनादर (भगवान पार्श्वनाथ) के ऊपर गाये गये हैं। सभी महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें माधुर्य गुण है। श्रोताओं को तन्मय करनें की उनमें चमत्कारपूर्ण शक्ति है।

पावैपाट्टु : (भक्ति के गाने अर्थात भजन) यह ग्रन्थ आठवीं शताब्दी का है। "अविनयनार" नामक कवि ने इसे रचा है। कलि नामक पद्यों में रचा गया है। यह कारिकै और कलम आदि व्याख्याओं में (उदाहरण के रूप में) प्रस्तुत है। इन पद्यों को देखने से उक्त ग्रन्थ के महत्त्व का पता चलता है।

तिरुवैंपावै : अविरोधि नायर नामक आचार्य ने इसे रचा है। इसमें बीस पद्य हैं। "एवावाय" इस वचन से पद्य के अंतिम चरण की पूर्ति होती है। मयिलै नाथर (मद्रास के मैलापुर नेमिनाथ भगवान के ऊपर) इसे गाया गया है।

तिरुप्पुगल : प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राचीन जैन स्थलों के ऊपर गाये गये भक्ति-गीत हैं। इसके कर्ता "देवराज मुनिराज" हैं। इस ग्रन्थ का अपर नाम "जिनेन्द्रतिरुप्पुगल" है। चन्दस आदि के कारण यह एक उत्तम श्रेणी का ग्रन्थ माना जाता है।

पार्श्वनाथर अम्मानै : तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के पूर्वभव का, याने कमठ-मरुभूति के भव से लेकर आगे का इसमें वर्णन है। आगे चलकर वे ही मरुभूति

पार्श्वनाथ तीर्थंकर बने और तप के द्वारा कर्म विजेता हुए तथा मोक्ष के नायक बनकर सिद्धालय पर विराजमान हुए।

सोभनमाले : यह ग्रंथ तंजाऊर सरस्वति-भण्डार से प्रकाशित है। इसे एक उत्तम कोटी का ग्रन्थ माना जाता है।

तिरुनाथर कुण्ट्र्तु पदिकम् : दीपडु, डी पत्तु आदि कई प्रबन्ध ग्रन्थ भी लिखे गए हैं।

कोश

चूडामणि निगण्डु : कोश को तमिल भाषा में "निगण्डु" कहते हैं। यह चूडामणि-निगण्डु "मण्डलपुरूडर" के द्वारा रचा गया है। उक्त ग्रन्थ-कर्ता का जन्मस्थान तोण्डैमण्डल "पेरमण्डूर" है। यह ग्रन्थराज कोशों में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण इसका नाम चूडामणि (चूडामणि-मणियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है) रखा गया है। इसमें कुल बारह अध्याय हैं। इसमें कुल ११९७– वृत्त याने पद्य हैं। इसमें ग्यारह हजार वचनों का संग्रह है। इसका काल सोलहवीं सदी माना जाता है। तमिल भाषा का यह अत्युत्तम कोश है।

दिवाकरं : दिवाकर का अर्थ है सूर्य। यह सबसे पहला कोश ग्रन्थ माना जाता है। इसे आदि-कोश भी कहा जाता है। इस ग्रन्थ के कर्ता का नाम "सेन्दन" है और इसका काल ९ वीं शताब्दी का है। इसमें कुल बारह अध्याय हैं। जिनमें ११६८० वचनों का अर्थ है। इस ग्रन्थ का महत्त्व विद्वानों की दृष्टि से अवर्णनीय है।

पिंगलन्दै : यह भी एक कोश ग्रन्थ है। "पिंगल" नामक मुनिवर के द्वारा यह रचित है। "पिंगलर" का अर्थ है— सोने के समान शरीर वाला। प्रतीत होता है कि ये महाशय दैदीप्यमान काया वाले रहे होंगे। इसका काल दसवीं शताब्दी का है। इसमें दस अध्याय हैं। तथा कुल मिलाकर ४१८१ पद्य और १५७९१ वचन हैं। इन सब के अर्थ इसमें बतलाये गये हैं।

उरिच्चोल : यह ग्रन्थ "गांगय" नामक आचार्य द्वारा रचा गया है। इसमें "वेण्बा" याने चौपाई पद्य हैं। इसका समय बारहवी सदी का हो सकता है। इसमें २८७ पद्य हैं। बारह अध्याय हैं और ३२०० वचन हैं।

ज्योतिष

जिनेन्द्रमालै : जिनेन्द्रमालै ग्रन्थ के कर्ता, काल आदि का पता नहीं चलता। परन्तु यह ग्रन्थ प्राप्त है। इसके अलावा "उल्लमुडैयान" "ज्योतिड नीति" आदि बहुत से ज्योतिष ग्रन्थ जैनाचार्यों द्वारा विरचित हैं। जिनेन्द्रमालै के सिवाय बाकी अप्राप्य हैं।

गणित

केट्टिएण्चुवडि, कणक्कधिकारं, नेल्लिलक्क वायपाडु, सिरुकुलिवायपाडु, कीलवाय इलक्कं, पेरुक्कलवायपाडु, आदि गणित ग्रन्थ जैनाचार्यों के ही हैं।

मन्त्र शास्त्र

स्वरोगमन्त्र : स्वरोग नाम का एक मन्त्र ग्रन्थ है। यह अप्रकाशित है। "पुष्पकरनार" नामक एक अन्य मन्त्र ग्रन्थ भी है।

संगीत शास्त्र

पेरुंगुरूगू, पेरुनारै, सैयिट्रियं, भरतसेनापतियं, जयन्तं आदि सुन्दर संगीत ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं।

वान शास्त्र

जैनाचार्य द्वारा रचा गया एक वान-शास्त्र भी है। उसका नाम ठीक तरह से पता नहीं चल रहा है।

गद्य ग्रन्थ

श्रीपुराण : यह मणिप्रवाल (गद्य-पद्य मिश्रित) पद्धति से लिखा गया है। पुराण का विवरण देते समय, इसके बारे में कहा गया है।

इसके अलावा महापुराण, उत्तर पुराण, रामायण, महाभारत, गद्यचिन्तामणि आदि ग्रन्थ गद्य के रूप में तमिल में थे। परन्तु वर्तमान में ये सारे ग्रन्थ अप्राप्य हैं।

पदार्थसार : यह ग्रन्थ भी मणिप्रवाल रूप में है। इसमें द्रव्यानुयोग के विषय अच्छे ढंग से संग्रहीत हैं। जैसे समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, गोमटसार, लब्धिसार, अष्टपाहुड आदि तात्त्विक ग्रन्थों मे जो-जो विषय पाये जाते हैं, वे सब इसमें अच्छे और समझने लायक रूप में बताये गये हैं। इसको समझना साधारण लोगों के लिये जरा कठिन है। तजाउर सरस्वती महालवालोने इसे छाप दिया है। इसका कर्ता, काल आदि ठीक मालूम नही पड़ता।

इससे तमिल भाषा के अन्दर जैनाचार्यो की अनमोल कृतियों का परिज्ञान तो पाठकों को थोड़ा-बहुत हुआ ही होगा। जैनाचार्यो का विशिष्ट ज्ञान सभी पहलुओं में था। किसी भी विषय को छोड़ दिया हो अथवा जानकारी न हो ऐसा नही कहा जा सकता। उन लोगों का कार्यक्रम यह रहा करता था कि नगर में आकर आहार ग्रहण करना और गुफा में जाकर ग्रन्थ रचना, स्वाध्याय, आत्मध्यान, जप-तप आदि धर्मध्यान के कार्यों में समय लगाना। इसके सिवाय दूसरा काम बिलकुल था ही नही। फिर ग्रन्थों की सृष्टि में कमी क्यों रहेगी ? वे स्वतः अद्वितीय एवं अनुपम विद्वान तो थे ही। फिर उन महात्माओं की रचनायें अमूल्य एवं अनुपम नही रहेंगी तो और किसकी रहेंगी ? ज्ञान की गरिमा, वैराग्यभाव, तन्मयता, भविष्योज्ज्वल की दृष्टि का सदुपयोग, धार्मिक भावना आदि भरपूर होने के कारण, वे आचार्य महान सन्त अपनी अनमोल कृतियों को देश और धार्मिक जनोद्धार के निमित्त छोड़ गये हैं। उनकी उदार गरिमा का वर्णन करना हमारी शक्ति से बाहर है।

टीकाकार

इलंपूरणर : जैन व्याख्या कर्ताओं में सबसे पहला नम्बर (नाम) "इलंपूरणर" का

है। "तोलकाप्यं" नामक प्राचीन महान व्याकरण की व्याख्या इन्हीं की है। इनकी व्याख्या नहीं होती तो तोलकाप्यं का आशय समझना असंभव हो जाता। बाकी व्याख्यायें इनकी व्याख्या को देखकर पीछे रची गई हैं। इलंपूरणर ने अपनी व्याख्या में करीब ४० ग्रन्थों से उद्धरण प्रस्तुत कर उनके सटीक उदाहरण दिये हैं। अद्‌भुत व्याख्या की है। इनकी विद्वत्ता के बारे में कहना शक्ति के बाहर है।

अडियार्कुनल्लार : ये महाशय शिलप्पधिकारं नामक महाकाव्य के व्याख्याता हैं। वे तेरहवीं सदी के हैं। पोप्पण्ण कांगेय नामक कन्नड नरेश इनका परम भक्त था। इनका आदर सत्कार खूब करता था। इन्होंने अपनी व्याख्या में करीब ६० ग्रन्थों से उद्धरण लेकर उदाहरण दिये हैं। ये महाशय तमिल भाषा के सागर थे। इनकी व्याख्या नहीं होती तो सिलप्पधिकारं में आया हुआ संगीत का विषय समझना असंभव हो जाता। इन्होंने संगीत के बारे में काफी खुलासा किया है। इनकी व्याख्या से पता चलता है कि ये संगीत के भी प्रकाण्ड पण्डित थे।

नच्चिनार्किनियर : ये महाविद्वान् दक्षिण मथुरा के निवासी थे। लोगों का कहना यह है कि ये महाशय पहले शैव थे। बाद में जैन बने। प्राचीन जमाने में धर्म परिवर्तन होना स्वाभाविक था। पुरातन व्याकरण तोलकाप्यं और तमिल भाषा में प्रसिद्ध पंच महाकाव्य आदि महान ग्रन्थों के ये व्याख्याता थे। इनका काल चौदहवीं सदी का माना जाता है। ये तमिल भाषा के महान विद्वान थे। उस जमाने के विद्वानों में इनको सर्वश्रेष्ठ विद्वान माना जाता था।

मयिलैनाथर : ये नन्नूल नामक सर्वश्रेष्ठ तमिल व्याकरण के व्याख्याता थे। इनकी व्याख्या अत्युत्तम मानी जाती है। इनका काल चौदहवीं सदी का माना गया है।

गुणसागर : ये तमिल भाषा के सुप्रसिद्ध व्याकरण याप्पेरूंगल और याप्पेरूंगलक्कारिकै इन दोनों के व्याख्याता थे। व्याकरण शास्त्र में इनकी गहरी पैठ थी। इनकी चरणपादुका जिनकांचीमठ चित्तामूर के पास विळ्ळुक्कं गाँव में है। इनके दिव्य चरणों की पूजा हर साल युगादि के दिनों में हुआ करती है। उस समय उसमें काफी लोग शामिल होते हैं।

कालिंगर : ये महाशय तिरुक्कुरल महाकाव्य के व्याख्याता थे। इनकी व्याख्या उत्तम मानी जाती है। तिरुक्कुरल की कई व्याख्यायें की गई हैं। उनमें इसका महत्त्व ज्यादा है।इन का समय मालूम नहीं हो सका।

वामनमुनिवर : नीलकेशी नामक जो तर्कशास्त्र है, उसके ये जगतप्रसिद्ध व्याख्याता थे। इनकी व्याख्या के कारण ही ग्रन्थकार का आशय और महत्त्व जाना जाता है। तमिल भाषा के अन्दर "मेरुमन्दर पुराण" नाम का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसका हिन्दी अनुवाद आचार्य देशभूषण महाराज द्वारा होकर प्रकाशित किया गया है। उक्त मेरुमन्दर पुराण के रचयिता का नाम वामन मुनिवर है। परन्तु ये दोनों एक ही हैं या अलग हैं, इसका पता नही चलता। इनकी व्याख्या से पता चलता है कि इनको तर्कशास्त्र में अच्छी जानकारी

एवं निपुणता थी।

पदुमनार : तमिल भाषा का सर्वश्रेष्ठ, जो नीति ग्रन्थ "नालडियार" है, उसके ये सुप्रसिद्ध व्याख्याता थे। इनकी व्याख्या की शैली सराहनीय एवं लोकप्रिय है। उक्त लोगों के अलावा और भी बहुत से व्याख्याता हुए हैं। उन सबके बारे में लिखें तो बहुत बड़ा ग्रन्थ हो जायेगा। इसी डर के कारण यहाँ विराम लेता हूँ। परन्तु समझने की बात यह है कि तमिल भाषारूपी जगन्माता जो सरस्वती है उसके सर्वांगों को जैन महाकवि मुनिवरों ने अपने ग्रन्थ रूपी आभूषणों से सालंकृत किया है। इस कारण से वह देवी जिनवाणी सर्वांग सुन्दरी होकर जाज्वल्यमान दिखाई दे रही है।

तमिल भाषा के निष्पक्षपाती सारे विद्वानों का कहना यह है कि यदि तमिल भाषा में जैन महाविद्वान मुनिराजों की कृतियाँ न होतीं तो तमिल भाषा निर्जीव हो जाती। इन त्यागी मुनि सन्तों के बारे में जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। वे प्रशंसा के पक्षपाती नहीं थे। बल्कि वे सर्वथा अनिच्छुक थे। इसी कारण इनके कई ग्रन्थों में नाम, काल आदि का पता नहीं चलता। इन महात्माओं की एक मात्र दृष्टि यही रहा करती थी कि सारे जन समुदाय के उद्धार एवं हित हेतु धार्मिक और नीति से ओत-प्रोत ग्रन्थों की रचना होती जाये और जिनवाणी का प्रचार बराबर चलता रहे।

(६) पवित्र जैन तीर्थस्थल

मद्रास : यह बहुत बडा शहर है। यह तमिलनाडु की (Capital city) राजधानी का शहर है। यहाँ सब तरह का वाणिज्य चलता है। करीब साठ लाख जनता निवास करती है। सभी जाति वाले एवं सभी धर्म वाले रहते हैं। इसमें तीन दि. जैन मन्दिर हैं। पहला कलकत्ता के निवासी सेठ बैजनाथ जी सरावगी द्वारा बनवाया गया पुरातन शिखरबद्ध चन्द्रप्रभु भगवान का मन्दिर है। एक नया बन रहा है। नीचे धर्म शाला भी है। इसका पता यह है कि ३४, सुब्रमण्य मुदली स्ट्रीट, मद्रास-१ (Near Nattupaliar St.), मद्रास सेन्ट्रल रेलवे स्टेशन से करीब तीन किलो मीटर है। दूसरा उत्तर हिन्दुस्तान से व्यापार के लिये आये हुए जैन लोगों द्वारा बनवाया गया खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मदिर है। उसके नीचे धर्मशाला भी है। इसका पता यह है कि ११, कोण्डलैयर स्ट्रीट, कोण्डितोप्पु, मद्रास-६०० ०७९ है। तीसरा चन्द्रप्पमुदली स्ट्रीट मे है। यह कानजी भक्तों द्वारा बनवाया गया है।

मद्रास में स्थायी दिगम्बर जैनों के घर करीब ५०० से ज्यादा हैं। सर्विसवाले होने के कारण वे सारे शहर में फैले हुए हैं। उत्तर हिन्दुस्तान से व्यापर के लिये आये हुए दिगम्बर जैनों के घर करीब एक सौ हैं। सभी व्यापारी लोग हैं। इनमें खण्डेलवाल लोग ज्यादा हैं। कानजी भक्तों के घर करीब पचास है। श्वेताम्बर जैन लोग बहुत ज्यादा रहते है। स्थानकवासी जैन समाज के द्वारा, प्राथमिक स्कूल, हाई स्कूल, कोलेज, पॉलिटेक्निक आदि कई सस्थायें भी संचलित है।

चेंगलपट्टु सर्किल : (चेंगलपट्टू जिला)

उत्तर मेरूर : यह छोटा सा शहर है। इसके सुन्दर वरद पेरुमाल (अजैन) मन्दिर मे भगवान ऋषभदेव की मूर्ति है। पुराने जमाने में यहाँ जैन लोग निवास करते होंगे [१] यह मद्रास से वन्दवासी जाने के रास्ते पर है।

१) S.I.E.P. Rep. 1922-23.

अनन्द मंगलं : यह ओलक्कूर रेलवे स्टेशन से पाँच मील दूरी पर है। इस गाँव की चट्टान में जैन मूर्तियाँ खोदी हुई हैं। वे भगवान अनन्तनाथ आदि की हैं। आश्चर्य की बात यह है कि भगवान के नाम से यह गाँव प्रसिद्ध है। परान्तक १९३८-वर्ष (ई.९४५) का लिखा गया शासन लेख है उससे मालूम होता है कि यहाँ "जिनगिरि" नाम की पाठशाला थी। विनयभासुर गुरु महाराज के शिष्य वर्द्धमान महाराज के नेतृत्व में साधु संतों की आहार व्यवस्था होती थी। अब यहाँ जैन नहीं है। आसपास के गाँव से जैन लोग यहाँ आकर पौष माह में पूजा करते हैं।[१]

सिरुवाक्कूं : यहाँ का जिन मन्दिर गिरा पड़ा है। यहाँ के शासन में लिखा हुआ है कि जिन मन्दिर का नाम "श्रीकरणप्पेरुपल्लि" था। इसके लिये जमीन दान में दी गई थी।[२]

कांजीपुरं : कांजीपुरं छोटा-बड़ा दो तरह का तीर्थ है। बड़े कांजीपुर के बगीचे में एक जिन मूर्ति है[३]। कहा जाता है कि कामाक्षि (अजैन) मन्दिर के दूसरे प्राकार में भी एक जैन मूर्ति है।[४] यथोत्कारि पेरुमाल मन्दिर (अजैन) के पास एक जैन मूर्ति है[५]। शहर के बीच चैत्यालय और धर्मशाला है।

पहले के जमाने में यह एक पल्लव राजा की राजधानी थी। उस समय यहाँ हजारों जैन लोग निवास करते थे। यह बात मालूम होती है कि जब चीनयात्री "युवाचुवा" कांजीपुरं आया था, उस समय यहाँ अस्सी जैन मन्दिर थे। यह बात उसकी टिप्पणी से मालूम होती है।

तिरुप्परित्तिक्कुन्टं : यह काजीपुरं से पश्चिम की ओर दो किलोमीटर दूरी पर है। पहले जमाने में यही जिनकांजी था। यहाँ बहुत बड़ा मन्दिर है। यहाँ पर विराजमान भगवान का नाम त्रैलोक्यनाथ है। यह शासन के द्वारा जाना जाता है कि मल्लिषेण वामनाचार्य के शिष्य परवादिमल्ल पुष्पसेन वामनाचार्य नाम के मुनिराज के प्रयत्न से इस मन्दिर का गोपुर बनवाया गया है। दूसरा शासन (**तमिलनाडुमे शिलालेखोको शासन कहनेकी परिपाटी है।**) वामनाचार्य और मल्लिषेणाचार्य के विषय में बताता है।[६] इस मन्दिर के "कुरा" नाम के पेड के नीचे, इन महान आचार्यों के चरण विराजमान हैं। मल्लिषेण वामनाचार्य की तारीफ यह है कि इनके द्वारा "मेरुमन्दर पुराण" और नीलकेशी तर्कग्रन्थ की "समय दिवाकरं" नाम की व्याख्या लिखी गई हैं। (इन दोनों को राव साहिब प्रो.ए.चक्रवर्ती नैनार एम्.ए., आइ.ई.एस्. ने अंग्रेजी भूमिका के साथ छपवाया है।) और एक शासन बतलाता है कि २००० कुलि जमीन इस मन्दिर के लिये दान में दी है।[७] एक शासन से यह बात भी मानी जाती है कि इस मन्दिर के लिये कैतडुप्पर ग्रामवासियों ने ऋषभ समुदाय के वास्ते कुँआ खोदने के लिए जमीन दी है।[८] यह पवित्र क्षेत्र है। पहले यहाँ एक विद्यापीठ थी। भट्टारक मठ भी था। इस मन्दिर में चोल, पल्लव और

---

१. 430 of 1922. Mad, E.P. Rep, 1926-27, 1923. २. 64 of 1923. ३. S.I.E.P Rep. 1923 Page 04 ४. M.A.R. 1898 Page 4 ५. Top List P-178 ६. 100 of 1923. ७. 99 of 1923. ८. 381 of 1928-29.

विजयनगर राजाओं की चित्रकारी अंकित है। पहले चार मठ थे। दिल्ली, कोल्हापुर, जिनकांजी और पेनुगोडा। इनमें से जिनकांजी मठ यहीं पर था। न जाने वह जिंजी के पास चित्तामूर में कैसे पहुँच गया? यहाँ चन्द्रप्रभु भगवान का पुरातन जैन मंदिर है। इसके चारों ओर कपास की खेती है। कपास को तमिल में "परुत्ति" कहते हैं। तिरु गौरवका शब्द है। शायद इसी कारण इस गाँव का नाम तिरुपरुत्ति कुन्द्रं अर्थात्, तिरु + परुत्ति = तिरुपरुत्ति, कुन्द्रं गाँव को कहते हैं। तिरुप्परुत्ति कुन्द्रं हुआ हो। इस पुरातन मन्दिर का शिखर टूटा पड़ा है। यह मठ सरकार के अधीन है।

अब इस गाँव में एक श्रावक का घर है। और एक पुजारी का है। इस मन्दिर की चार सौ एकड़ की जमीन थी। सब नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई है। सारे गाँव की जमीन मन्दिर की है। परन्तु अजैन लोगों ने उस पर कब्जा कर लिया है।

यहाँ तीन मन्दिर हैं। जो भगवान आदिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के हैं। एक ही परकोटे के अन्दर ये तीनों मन्दिर हैं। यहींपर धर्मदेवी (कूष्माण्डिनी) का पीठ भी है। कई धातु की प्रतिमायें हैं। कुआं है। "कोरा" नाम के पेड़ के पास दो पीठ हैं। ये दोनों श्री मल्लिषेण वामन और पुष्पसेन वामन के बताये जाते हैं। यह एक पवित्र, शान्त और मनोहर स्थान है। वर्तमान मे वह सरकार के कब्जे में है।

प्रारंभ में गोपुर द्वार है, तथा संगीत मंडप है। इसमें हजारों लोग बैठ सकते हैं। यहाँ से करीब २ फर्लांग पर ५ समाधि स्थान हैं, जो कि भग्नावशेष के रूप मे विद्यमान हैं।

मागरल : यहाँ आदिनाथ भगवान का मन्दिर है। यहाँ के अजैन मन्दिर में दो जैन प्रतिमायें हैं।[१] शैव भक्त तिरुज्ञान के द्वारा एक जमाने में यहाँ से जैनी लोग भगा दिये गये थे।[२] यहाँ का जैन मन्दिर भग्नावशेष है। यह आरपाक्कं से करीब दो किलोमीटर पर है। वर्तमान मे यहाँ पर कोई जैन परिवार नहीं है।

आरपाक्कं : यहाँ आदिनाथ भगवान का जैन मन्दिर है। यहाँ भगवान को आदि भट्टारक भी बोलते हैं।[३] यह बहुत प्राचीन है। यहाँ सिर्फ पुजारी का घर है। यह जैनमन्दिर केशरियाजी के समान अतिशययुक्त है। लोग बच्चों का (बाल उतरवाना) चौल-कर्म, कर्ण-छेदन आदि यहीं कराते हैं। उनकी मनोकामनायें भी पूर्ण होती हैं। अजैन लोग भी उन्हें पूजते हैं। रोज लोग आते रहते हैं। धातु की प्रतिमायें काफी संख्या में हैं। उसमे धर्मदेवी, ब्रम्हदेव आदि भी है। सामने मानस्तंभ है। बगल में धर्मशाला है। जलवायु अच्छा है। सुना जाता है कि तमिल भाषा के "तिरुक्कलंबकं" की रचना यहीं हुई थी। साधुओं के लिये यह योग्य स्थान है। शान्ति से जप-तप अनुष्ठान कर सकते हैं। ध्यानावस्थित भगवान की मुद्रा चित्ताकर्षक है। यहाँ शिवरात्रि के समय (आदि प्रभु का मोक्ष दिन) बहुत बड़ा मेला लगता है। यह कांजीवरं से करीब १२ किलो मीटर की दूरी पर है। बस का साधन है। दर्शन करने योग्य है।

---

१ : M.A.R. 1897 P-4, M.E.R. 1923, P-4. २ : E.P Rep 1923, P-129. ३: S.I. EPI Rep 1923-P-4.

विषार : यह मागरल के पास है। यहाँ अनेक खण्डित जिन प्रतिमायें हैं। पहले यहाँ भी जैन लोग रहते होंगे।

कुन्नत्तूर : (श्रीपेरुंपुत्तूर तहसील) यहाँ के शैव मन्दिर के शासन में "पेरियनाट्टु पेरुंपल्लि" के विषय में लिखा गया है। यहाँ जैन पाठशाला थी। वर्तमान मे यहाँ कोई जैन नहीं है। पहले जमाने में अवश्य रहे होंगे।

कीरैप्पाक्कं : (चेंगलपट तालुका) यहाँ के तालाब की चट्टान में ई. नौवीं शताब्दी का शासन है।[१] उसमें देशवल्लभ जिनालय का नाम सूचित किया गया है। पूर्वकाल मे यहाँ श्रमण साधुओं का निवास स्थान भी था।

पुल् : मद्रास से १५ किलोमीटर दूरी पर उत्तर-पश्चिम में पुल् नामक गाँव है। वहाँ आदिनाथ भगवान का पुरातन मन्दिर है। पहले के जमाने में यहाँ जैनियों का निवास खूब रहा होगा। इस मन्दिर का गोपुर शिथिल हो गया था। उत्तर भारत के श्वेतांबर लोगों ने इसे अपने अधीन बना लिया है। काफी जीर्णोद्धार किया गया है। स्थानीय दिगंबर जैनों के यहाँ साठ घर हैं। मन्दिर का निर्वाह श्वेताम्बरों के हाथ में होने पर भी श्वेताम्बरों का यहाँ एक भी घर नहीं है। यहाँ सुन्दर वातावरण है तथा आबोहवा अच्छी है। दर्शन करने योग्य है।

विल्लिवाक्कम : यह चेंगलपट्टु जिला मद्रास के पास रेलवे स्थान पर है। इस गाँव की बीथी में जैन मूर्ति है जो[२] अनाथ पड़ी है।

पेरुनगर : यह चेंगलप्ट्टु जिला मदरांतकं तालुका मदरांतकं से उत्तर पश्चिम में २५ किलोमीटर की दूरी पर है। इस गाँव के पूर्व में एक जिन मन्दिर शिथिल होकर गिरा हुआ है। इस मन्दिर के पत्थरों को ले जाकर जैनेतरोंद्वारा कृष्ण मन्दिर बनवा लिया गया है। इस तरह का लोगों का कथन है।[३]

नार्थआर्काड सर्कल : (जिला)

कच्चूर : कालास्ति जमीन तिरुवल्लूर के उत्तर में २० कि मी. दूरी पर कच्चूर मादर पाक्कं है। यहाँ पर एक जैन मन्दिर है।[४]

नंबाक्कं : कालास्ति जमीन तिरुवल्लूर रेलवे स्टेशन से १५ कि. मी. दूरी पर यह गाँव है। पहले यहाँ एक जैन मन्दिर था। बाद में वह शैव मन्दिर के रूप में बदल दिया गया।[५]

कावनूर : गुडियात्तं तालुका के अन्दर, गुडियात्तं शहर से १२ कि. मी. दूरी पर यह गाँव है। यहाँ पर अनेक जैन प्रतिमायें हैं।[६]

कुट्टैनल्लूर : गुडियात्तं तालुका। तिरुवल्लूर रेलवे स्टेशन से ५ कि. मी. दूरी पर यह गाँव है। यहाँ पर अनेक जैन मूर्तियां हैं।[७]

---

१ : 22 of 1934-35. २. Arch, Sur of circle Medras. 1912-13 P—7. ३ : Top list, page 191. ४ : Top list page 149. ५ : Top list, page 151. ६ : Top list page 160. ७ : Top list, 160.

कोलमूर : गुडियात्तं तालुके के शहर से पूर्व दिशा में, विरिंजिपुरं रेलवे स्टेशन से ५ कि. मी. दूरी पर, यह गाँव है। यहाँ जैनियों के चिन्ह दिखाई देते हैं।[१]

तेन्नंबट्टू : गुडियात्तं तालुका। आंबूर रेलवे स्टेशन से दक्षिण-पश्चिम में यह गॉव स्थित है। यहाँ एक चट्टान में एक शिला है। उसके नीचे यह लिखा हुआ है कि पहले यहाँ एक जिन मन्दिर था।[२]

तिरुमणि : विरिंजिपुरं रेलवे स्टेशन से पूर्व दिशा में, ६ कि. मी. दूरी पर, यह गाँव है। यहाँ अनेक जैन मूर्तियाँ है।[३]

पेरुंकंगि : वालाजापेट्टै तालुका के शहर से उत्तर में १५ कि. मी. दूरी पर यह गाँव है। यह पहले जैनियों का मुख्य गॉव था। यहाँ के तालाब के किनारे और पेड के नीचे अनेक जैन मूर्तियाँ बिखरी पडी हैं।[४]

सेवूर : आरणि शहर से उत्तर-पश्चिम में एक गाँव है। यहाँ एक पुराना जैन मन्दिर है।[५] मूलनायक वृषभनाथ भगवान हैं। यह नई प्रतिमा श्री निर्मलकुमार जी सेठी-महासभा के अध्यक्ष द्वारा विराजमान कराई गई है। यहाँ जैनियों के ६० घर हैं। लोगों में जिन भक्ति एवं मुनि भक्ति है।

अनन्तपुरं : यह आरणी से २ कि. मी. पर है। यहाँ एक छोटा सा जिन मन्दिर है। मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं। यहाँपर जैनियों के २० घर हैं।

आरणि : यह नार्थआर्काड जिले में एक छोटा सा शहर है। यहाँ एक विशाल आदिनाथ भगवान का जिन मन्दिर है। दाहिनी ओर ५०० आदमियों के बैठने योग्य सभामण्डप है और सामने उत्तुंग मानस्तंभ तथा ध्वजस्तंभ भी है। मन्दिर शिखर बद्ध है और सुव्यवस्थित है। मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं। करीब तीस धातु की मूर्तियां हैं। शासन देवताओं की मूर्तियाँ भी हैं। यह मंन्दिर आरणि नगर के एक कोने में कोशप्पालयं नामक वीथी में है। यहाँ करीब ५० दिगंबर जैनों के घर हैं। मन्दिर की व्यवस्था अच्छी है।

तिरुमलै : पोलूर तालुका। यहाँ से उत्तर-पूर्व में, १२ कि. मी. दूरी पर, "वडमादि मंगल" है। वहाँ से ५ कि. मी. पर यह गाँव है। यहाँ एक छोटे से पहाड़ पर १८ फुट ऊँची नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा दृष्टिगोचर हो रही है। यहाँ के शासन में "कुन्दवै जिनालयं" का नाम अंकित है।[६] कुन्दवै चोलराजा की बहन थी। तमिलनाडु की प्रतिमाओं में यही सबसे ज्यादा ऊँची मानी जाती है। इस पहाड़ के नीचे दो मन्दिर हैं। यहाँ की गुफा में चोलराज्य की चित्रकारी है, परंतु घिसी हुई है। इसमें समवशरण भी है। चट्टान पर कुछ सुन्दर मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं।

दूसरा शासन यह बतलाता है कि तिरुमलै परवादि मल्ल के शिष्य अरिष्टनेमि आचार्य महाराज ने एक जिन प्रतिमा बनवाकर रखी है। और एक शासन बतलाता है कि

---

१ : Top list, page 161. २ : Top list page 161. ३ : Top list p–162. ४ : Top list page 162. ५ : Top list page 168. ६ : S.I.I. Vol . No. 98.

पल्लवराजा की रानी "इलैय मणिमगै" नामक देवी ने इस मन्दिर के लिये नन्दा दीप (अखण्ड दीप) के वास्ते साठ सोने टका (Coin) और जमीन दी थी।[१]

नेमिनाथ भगवान को शिखामणिनाथ भी बोलते हैं। इन मन्दिरों में कई धातु की मूर्तियाँ हैं साथ ही शासनदेवताओं की मूर्तियाँ भी। एक छोटा सा झरना है जिसका पानी भगवान की पूजा आदि के काम में आता भी। सबसे ऊपर छोटा सा पार्श्वनाथ जिनालय है। उसके ऊपर एक चट्टान पर तीन पादुकायें हैं। वे (१) श्री वृषभाचार्य, (२) श्री समन्तभद्राचार्य, एवं (३) श्री वरदत्त गणधर की बताई जाती हैं। यह हजारों साधुसंतों की तपोभूमि रही है। अत्यन्त पवित्र स्थल है। कहा जाता है कि यहाँ पाण्डव लोग आये थे। उनके दर्शनार्थ नेमिनाथ भगवान की मूर्ति बनवाई गई थी। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि यह चतुर्थकालीन अतिशय क्षेत्र है।

यह केंद्र सरकार के अधीन है। सारी व्यवस्था "आरकोलॉजिकल डेपार्टमेण्ट" ही करता है। यहाँ पुजारियों के ५ घर हैं। श्रावकों के घर नही हैं। अवश्य दर्शन करने योग्य पवित्र स्थल है। एक-एक कण मुनिराजों के चरण स्पर्श से पवित्र है। जलवायु अनुकूल है। यहाँ हर साल सक्रान्ति के तीसरे दिन भगवान नेमिनाथ का अभिषेक होता है। उस समय हजारों जैन लोग शामिल होकर धार्मिक कार्यक्रम की शोभा बढ़ाते हैं।

विडाल : यह वडआर्काड जिले में है। यहाँ दो छोटे से पहाड़ पर स्वाभाविक दो गुफायें हैं। गुफा के सामने दो मण्डप हैं। यहाँ के शासन से पता चलता है कि एक मण्डप पल्लव राजा के द्वारा और दूसरा मण्डप चोलराजा शरीवर्म के द्वारा बनवाया गया था। मालूम होता है कि इन गुफाओं में पुराने जमाने में मुनि लोग निवास करते थे। और एक बात यह भी है कि गुणकीर्ति भट्टारक की शिष्या कनकवीरक्कुरत्ति नाम की अर्जिका ने अपनी शिष्याओं के यहाँ रहने की व्यवस्था की थी। एक जमाने में यह मुनि और साध्वियों का निवास स्थान होने के कारण अत्यन्त पवित्र तथा स्वाध्याय एवं साधना का केंद्र माना जाता था।[२]

पुनताकै : नार्थआर्काड (वडआर्काड) जिला, चेयार तालुका के अन्तर्गत आनक्कावूरु से १ कि. मी. दूरी पर है। पुराने जमाने में यह गाँव जैनों का था। यहाँ एक जैन मन्दिर था। साम्प्रदायिक विद्वेषियों द्वारा यह जिनमन्दिर तोड़ दिया गया था। इसकी एक काल्पनिक कथा भी जोड़ दी गयी थी। इस मन्दिर के पत्थरों को ले जाकर तिरुवोत्तूर का शैव मन्दिर बनवा लिया गया था।[३] मन्दिर तोड़ डालने से दो जिनमूर्तियाँ बाहर डाल दी गयी थीं। इस गाँव के पास तालाब सरीखा एक गड्ढा है उसमें इस मन्दिर का ताम्बे का किबाड़ आदि गाड़ कर पड़ा हुआ है। यह बात शासन से पता लगती है।[४] और एक शासन यह भी बतलाता है कि प्राचीन काल में जैनों का यह प्रमुख स्थान था।[५]

तिरुवोत्तूर : यह छोटा सा शहर है। प्राचीन काल में जैनों के प्रधान शहरों में यह

१: S.I.I. Vol. -1- No. 94. २ : S.I.I. Vol. III part III No. 92. ३ : Mr. Swells list of Antiq. Vol. I page 167. ४ : N. A. Dt. Manual–201, 202 & 168. ५ : South Indian Epigraphy report 1923–24, p–6.

भी एक था। उस जमाने में यहाँ जैन लोग अधिक संख्या में निवास करते थे। यहाँ का तलपुराण नाम का पेरियपुराण बतलाता है कि शैव भक्त तिरुज्ञानसबन्ध यहाँ आया था। उसके कारण शैव और जैनों में जोरदार मुठभेड़ हुई। सारे जैन लोग भगा दिये गये थे। यहाँ के शिव मन्दिर में इस बात का शासन है।[१] इसके पास पुनताकै नाम का जो गाँव है, उसमें भी जैन मन्दिर था। उसे भी तोड़कर उसके पत्थर लाये गये थे और उससे तिरुवत्तूर का शैव मन्दिर बनवाया गया था। पुनताकै के बाहर दो जैन मूर्तियाँ पड़ी हैं। इनके पास की जगह पर इस मन्दिर के ताम्बे के किबाड़ आदि गाड़ कर पड़े हैं। इस बात को यहाँ का शासन बतलाता है।[२]

तिरुप्पनमूर : यह कांजीवरं से १५ कि. मी. पर है। यहाँ पुष्पदन्त भगवान का जिन मन्दिर है। सामने विशाल मानस्तंभ है। धातु की भी सैकड़ों मूर्तियाँ हैं। पाषाण की तीन मूर्तियाँ हैं। श्री पुष्पदन्त भगवान की मूर्ति, चूने से निर्मित, विशाल काय है। यह शिखरबद्ध मन्दिर है। शासनदेवताओं की मूर्तियाँ भी हैं। इसके आगे एक मण्डप है। बायीं ओर एक पुस्तकालय है। इसमें तमिल आदि कई भाषाओं के ग्रन्थ हैं। बायीं ओर एक छत्री है जिसमें मुनिराजों की चरण पादुकायें हैं। यह मन्दिर करीब ६०० वर्ष पुराना है। इसकी व्यवस्था ठीक है। मन्दिर भी सुव्यवस्थित है। इस गाँव में जैनों के ५० घर हैं। यहाँ तीन मुनिराज हुए हैं।

करन्दै : (मुनिगिरी– अकलंकबस्ति) यह तिरुप्पणमूर से एक फर्लांग पर है। बीच में एक तालाब है। पहले जमाने में यहाँ अधिकतर संख्या में मुनिलोग निवास करते थे। इसलिये इसका नाम मुनिगिरी पड़ा। यह जगत्प्रसिद्ध अकलंक महाराज की तपोभूमि होने के नाते "अकलंक बस्ति" कही जाती है। यह गाँव छोटा है, मगर मन्दिर बड़ा है। इस गाँव में जैनियों के लगभग बीस घर हैं। एक बड़े भारी परकोटे के अन्दर तीन मन्दिर हैं। मूलनायक कुन्थुनाथ भगवान हैं। इस मन्दिर का निर्माण पल्लव नरेश नन्दीवर्म के द्वारा ई ८०६-८६९ में हुआ है।

इसके दक्षिण भाग में २५ – सीढ़ियाँ चढने पर महावीर भगवान का मन्दिर है। यह १२ वीं सदी का है। उत्तर में आदिनाथ भगवान का मन्दिर है। यह १५ वीं सदी का है। उसके बगल में कूष्माण्डी यक्षी का मन्दिर है। यह भी १५ वीं सदी का है। दक्षिण के आखिर में ब्रम्हदेव मन्दिर है। पार्श्वनाथ भगवान का भी एक जिनालय है तथा देवीजी के मन्दिर के बगल में मण्डप है। सामने दीवाल पर श्री १०८ अकलंकदेव की प्रतिमा, पीछी, कमण्डल, पुस्तक आदि मौजूद हैं। करन्दै-तिरुप्पनमूर के बीच में एक छत्री है। वह अकलंकदेव की समाधि है।

इन मन्दिरों के बारे में कहना यह है कि अत्यन्त प्राचीन होने के कारण पहले से ही ये मन्दिर निर्मित थे। परन्तु राजा लोगों ने बाद में सिर्फ जीर्णोद्धार किया है। यहाँ १८ शिला शासन है। कुन्थुनाथ भगवान के जो मन्दिर हैं उसके गोपुर के अन्दर का शासन (पल्लव नरेश नन्दिवर्मन) प्रसिद्ध है।[३] वर्धमान भगवान के मन्दिर में[४] भी शासन है।

---

१ : EP. Rep. 1923, P–3,4. २ : North Arco Dist. Manual. P 308. ३ : ई- ८४६-८६९. ४ : ई - ११९५.

विस्तार के भय से सबको यहाँ नहीं दिया गया है।

महान आचार्य अकलंकदेव के बारे में यह बात प्रसिद्ध है कि ये, "अलिपडैतांगि" नाम के स्थल में जो बुद्धसाधु गण रहते थे उनके साथ हिमशीतल महाराजा (कांजीपुरम) की सभा में शास्त्रार्थ कर जीते थे।[१] इस जीत में करन्दै कूष्माण्डिनी देवी की सहायता रही। यह बात सुनी हुई है। परन्तु एक तमिल पद्य में ये सारी बातें लिखी मिलती हैं।

करीब ५-६ लाख रुपये के खर्च से इन मन्दिरों का जीर्णोद्धार हो चुका है। मन्दिर सुरक्षित हो गये हैं।जीर्णोद्धार कार्य में महासभा का सहयोग काफी रहा है। उदार जैन समाज की सहायता भी मिली है।

इसकी पंचकल्याण प्रतिष्ठा, पूज्य अर्जिका श्री १०५ सुभूषणमति माता जी एवं श्री १०५ सुप्रकाशमती माताजी के सत्प्रयत्न से, (२८.२.९१ से ४.३.९१ के मध्य) बडी धूम-धाम के साथ संपूर्ण हुई है।

यहाँ हर साल माघ मास में दस दिन का ब्रह्मोत्सव चलता है। यह दर्शन करने योग्य पवित्र स्थल है।

पूण्डि : नार्थ आर्काड जिले में, आर्काड से आरणि जाने के रास्ते पर यह गाँव है। यहाँ पोन्निवननाथ नाम का जिन मन्दिर है। इस मन्दिर के अन्दर पद्य के रूप में एक शासन मिला है। वह इस मन्दिर के बारे में बतलाता है कि यहाँपर पोन्निनाथ नाम के एक महात्मा थे जिन्होंने "पेरियारवीरवीरन्" नाम के राजा को सहायता दी थी। उससे खुश होकर उस राजा ने पूछा कि आपको क्या चाहिये ? उस महात्मा की इच्छानुसार राजा द्वारा यह मन्दिर बनवाया गया था[२]। उक्त मन्दिर का नाम अपने नाम पर रखा और कुछ गाँवों को भी दान में दिया था। मगर अब वे गाँव उजाड़ हो गये है। जैन-अजैन वहाँ कोई भी नही रहते। सिर्फ मन्दिर है। चारों ओर खेती है। मन्दिर विशाल है। एक धर्मशाला भी है। एकान्त स्थान है। शान्तमय वातावरण है। साधुओं के योग्य स्थल है। नित्य अभिषेक होता है। संक्रांति के चौथे दिन मेले में जैन लोग शामिल होकर शोभा बढाते हैं।

वल्लिमलै . यह स्थल नार्थ आर्काड जिला, गुडियात्तं तालुका मेलपीडि नाम के गाँव के पास है। इस गाँव का छोटा सा पहाड़ पत्थर से भरा है। इसकी पूर्व दिशा में स्वाभाविक एक गुफा है। उसके बगल में, दो पंक्ति में जैन मूर्तियाँ खोदी हुई हैं। इसके नीचे कन्नड़ लिपि में कुछ लिखा हुआ हैं। इससे पता चलता है कि इस गुफा को राजमल्ल नाम के गंगकुल नरेश ने बनवाया था। तथा अज्जनन्दी भट्टारक द्वारा ये मूर्तियाँ बनवायी गयी थीं। श्रीबाणराय के गुरु भवणन्दि भट्टारक थे। उनके शिष्य देवसेन भट्टारक थे। उन्हीं की मूर्ति बतलायी गई है।

यहाँ की जैन मूर्तियाँ और शिलाशासन से पता चलता है कि यह स्थान जैनियों का था और आसपास के गाँवों में अनेक जैन लोग निवास करते थे। किन्तु आजकल कोई भी जैन नहीं है। वर्तमान में इस स्थल पर अजैन लोगोंने अधिकार कर लिया है[३]।

१: ए. आर. ई. १३२-१९३९-४० २: Top List Vol. I.P. 56, 168

३: A JAIN Rok Incriptions at Vallimalai by H. Hulzsc Ph. D. Epigraphica Indica vol IX P-140-42

पंचपाण्डवमलै : आर्काड शहर से दक्षिण-पश्चिम में, छः कि.मी. दूरी पर पंचपाण्डवमलै नाम का छोटा सा पहाड़ है। तमिल में मलै पहाड़ को बोलते हैं। पंचपाण्डवों के साथ इसका कोई संबन्ध नहीं दिखता। इसका दूसरा नाम तिरुप्पामलै है। इस पहाड़ के पूर्व भाग में बारह खम्बों से युक्त छः कमरे हैं। इस गुफा के ऊपर एक चट्टान पर ध्यान में लीन जैन मूर्तियाँ हैं। दक्षिण भाग में स्वाभाविक एक गुफा है। पास में पानी का एक कुंड भी है।

इस पहाड़ पर जो मूर्तियाँ दिखती हैं, उनमें साधु की और यक्षी की सामने दिखायी देती हैं। साधु का नाम नागनन्दी मालूम होता है। इन सभी आधारों से पता चलता है कि एक जमाने में यह पहाड श्रमण साधुओं का निवासस्थान था। इसमें कोई शक नहीं है। यहाँ पर श्रमण साधुगण तप किया करते थे। इस बात को यहाँ का शासन निःसन्देह बतला देता है। यह निर्जन प्रदेश है। साधु-संतों के अनुकूल एकान्त स्थान है। सैकडों मुनिराजों ने यहाँ तप किया होगा। किन्तु आज वह सूना पड़ा है[१]।

पोन्नूर : यह वन्दवासी से ६ कि.मी. पर है। पहले के जमाने में इसका नाम "अलगिय सोल नल्लूर" था। वर्तमान में जैनों के मुख्य गाँवों में से एक है। यहाँ पर जैनियों के ६० घर हैं। यहाँ भगवान आदिनाथ प्रभु का जिन मन्दिर है। पोन्नूर को स्वर्णपुरी भी कहते हैं। कुन्द-कुन्द महाराज की यह तपोभूमि कही जाती है। मन्दिर सुव्यवस्थित है। मन्दिर के सामने मानस्तम्भ है। शासन देवता का मन्दिर भी है। मन्दिर में पचासों धातु की मूर्तियाँ हैं। पास में सभा मण्डप है। परिक्रमा के दाहिनी ओर नवीन चरणपादुका स्थापित हैं। श्रावक-श्राविकाओं की भक्ति जाग्रत है। पोन्नूरमलै यहाँ से २ कि मी. पर है।

पोन्नूर मलै : (अतिशय क्षेत्र) यह वन्दवासी से पश्चिम की ओर ६ कि. मी. दूर है। बस-सुविधा है। इसके चारों ओर सुरक्षित वनस्थली है। नीचे अच्छी धर्मशाला है और कुन्दकुन्द विद्यापीठ है। इसमें गरीब १५ लड़के अध्ययन करते हैं। कुन्दकुन्दाश्रम भी है। इसमें एक मन्दिर है और पाँच वेदियाँ हैं। वेदियों में पाषाण एवं धातु की मूर्तियाँ हैं किन्तु यहाँ जैनियों के घर नहीं है। मन्दिर के अन्दर एक ओर सुन्दर नन्दीश्वर द्वीप की रचना है।

आश्रम के सामने पहाड़ है। सामने धर्मचक्र है। पहाड़ पर चढने की ३०० सीढियाँ है। ऊपर जाने पर विशाल मण्डप दिखाई देता है। जिसमें करीब ६०० आदमी बैठ सकते हैं। मण्डप के दक्षिणी ओर कुन्दकुन्द-एलाचार्य महाराज की विशाल चरण पादुकायें हैं। (तमिल कुरल काव्य के रचयिता कुन्दकुन्द माने जाते हैं। उनके प्राकृत के तो समयसार आदि २४ ग्रन्थ हैं।) यह एक शिला पर उत्कीर्ण हैं। इस शिला को मणिशिला कहते हैं। पर्वत "नीलगिरी" के नाम से प्रसिद्ध है। इसके चारों ओर "खिड" लगा हुआ है। यह कुन्दकुन्द महाराज की तपोभूमि है। एकान्त स्थान है। निर्जन प्रदेश है। मुनिराजों के अनुकूल स्थान है। इस स्थान को देखने से ऐसा भाव होता है कि हम भी मुनि बनकर इस परम पवित्र स्थान में ध्यान करने लग जायें। सुरभित ठंडी-ठंडी हवा आती है। यहाँ

1. Jaina Rock-Inscriptions at panch pandav Valamai By V. Venkayya M.A. Page-- 136-140 Epigraphica Indica Vol. IV

एक गुफा भी है। आस-पास में ४-५ मील पर श्रावकों के गाँव हैं। चित्ताकर्षक स्थान होने से मुमुक्षुओं को अवश्य दर्शन करने चाहिए। करीब दस साल के पहले आचार्य "निर्मलसागर" जी महाराज का यहाँ चातुर्मास हुआ था। उस समय अच्छी प्रभावना हुई थी। करीब ४-५ साल के पहले गणिनी १०५ श्री विजयामती माता जी का भी चातुर्मास हुआ था। अपूर्व धर्म प्रभावना हुई थी। त्यागियों के प्रभाव से ही धर्म प्रभावना होती है। किन्तु वर्तमान में तमिलनाडु में उसकी कमी है।

अरुंगुलं · यह स्थल मद्रास से तिरुत्तणि जाने के रास्ते पर उत्तर में तिरुत्तणि से १० कि. मी. पर है। यहाँ एक सुन्दर जिनमन्दिर है। जो विशाल एवं सुरक्षित है। मूलनायक धर्मनाथ भगवान है। उसमे परिक्रमा है। सुना जाता है कि पल्लव नरेशों के द्वारा उसे बनवाया गया था। मन्दिर बहुत पुराना है। पहले जीर्ण था। जीर्णोद्धार होकर ठीक कर दिया गया है। यहाँ जैन लोग नही है। सिर्फ पुजारी का घर है। बराबर अभिषेक होता है। वह आचार्य "अच्चणन्दि" महाराज की तपोभूमि है।

तमिल भाषा का "चूडामणि" नाम का अद्भुत साहित्य-ग्रन्थ है। उसके रचयिता "तोलामोलिदेव" धर्मनाथ भगवान के भक्त थे और उन्होंने भगवान के सन्निधान में ही अपनी ग्रन्थ-रचना प्रारभ की थी। इस बात को तमिल का एक पद्य भी प्रकट करता है। चाहे कुछ भी हो, यह तपोधनों का निवास-स्थान था। पूर्व में आसपास के गाँवों में भी जैन लोग रहा करते थे। किन्तु आजकल सर्व शून्य है, सिर्फ मन्दिर मात्र है। साल में एक बार माघ मास में मेला लगता है। जैन समाज इकट्ठा होता है। उस समय अभिषेक, प्रचार आदि कार्यक्रम होते है।

मयिलापुर : यह मद्रास शहर का एक हिस्सा है। पुराने जमाने में यहाँ नेमिनाथ भगवान का एक जिनमन्दिर था। अविरोधि आलवार पहले ब्राह्मण थे। बाद में वे जैन बने। उन्होंने भगवान की भक्ति में परवश होकर, उनके गुणों का वर्णन करते हुए "तिरुनूट्रन्दादि" नाम के ग्रन्थ की रचना की थी। वह ग्रन्थ उपलब्ध है। भक्ति से ओतप्रोत अत्यद्भुत ग्रन्थ है। जैन लोग उसका पारायण करते हैं। इसके अलावा "मयिलापूर पत्तुपदिक" "मयिलापूर नेमिनाथ स्वामी पदिकं" आदि ग्रन्थ भी हैं। ये सभी नेमिनाथ भगवान के गुणगान पर आधारित हैं।

पहले नेमिनाथ भगवान का मन्दिर वहाँ था, जहाँ आजकल मयिलापुर के समुद्र के किनारे ईसाई सान्तोम चर्च है। एक जमाने में समुद्र की बाढ़ से यह मन्दिर डूब जायगा, इस डर के कारण उसे मेल चित्तामूर में ले आकर विराजमान कर दिया गया था। यह अतिशयमूर्ति चित्तामूर में विराजमान है। इस बात को एक शासन के द्वारा जाना जाता है[१]। इससे नेमिनाथ भगवान और मन्दिर की बात निश्चित हो जाती है। उक्त स्थान पर याने चर्च के आसपास जैन मूर्तियां थीं। उन्हें उठा कर यत्र-तत्र गाड़ दिया गया है[२]।

मयिलापुर के नेमिनाथ भगवान के ऊपर "नेमिनाथ" नाम के ग्रन्थ की रचना हुई

---

1. P-74 Antiquities of st. Thome of Mylapore 2. P-175 Antiquities of st. Thome of Mylapore

थी। नन्नूल नाम के व्याकरण ग्रन्थ के व्याख्याता "मयिलैनाथर" का निवास स्थान भी यही था। कुछ जैन मूर्तियाँ "बिशप" के घर में हैं और कुछ अन्य लोगों के घरों में हैं। इस तरह एक जमाने में वहाँ ख्यातिप्राप्त विशाल जिनमन्दिर था। किन्तु आजकल उसका नामोनिशान तक भी नहीं है।

देसूर : यह छोटा सा शहर है। पोन्नूरमलै से २० कि मी. दूर है। यहाँ आदिनाथ भगवान का जिनमन्दिर है।

यहाँ पर जैनों के घर हैं। धातु की प्रतिमायें भी हैं। धर्मचक्र है। शासन देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। किन्तु मन्दिर की व्यवस्था साधारण है[१]।

तेल्लार : देसूर से १२६ कि.मी. पर है। यह एक प्राचीन गाँव है। यहाँ एक जैन मन्दिर है। मूलनायक महावीर भगवान हैं। धातु की मूर्तियाँ भी हैं। मन्दिर शिथिल हो गया था। अब जीर्णोद्धार हो रहा है। यहाँ १० जैन परिवार हैं। प्रचार न होने के कारण श्रद्धा-भक्ति कम है[२]।

तिरक्कोयिल : (अतिशय क्षेत्र) यह पोन्नूरमलै से ५ कि.मी. पर है। यहाँ एक छोटा सा पहाड़ है। पहाड़ के ऊपर एक मन्दिर था, जो पूरा ढह चुका है। अत मन्दिर की मूर्तियों को एक कोठरी मे विराजमान किया गया है। रमारानी जैन की ओर से पच्चीस हजार रुपये दिये गये हैं, जिससे एक छोटा सा मन्दिर तैय्यार हुआ है। मूलनायक आदिनाथ भगवान है। धातु की प्रतिमायें भी हैं। पूजा की व्यवस्था ठीक नही है। ४ जैन परिवार है। स्थान अत्यन्त सुरम्य है। मन्दिर के पीछे जो चट्टान है, उसमें बाहुबली स्वामी की मूर्ति खुदी है। तलहटी में एक चट्टान के चारों ओर महावीरजी, आदिनाथजी, पार्श्वनाथजी, तथा चन्द्रप्रभुजी इन चारों की पद्मासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। यह बहुत वर्ष पुराना है। महासभा की तरफ से मूलनायक आदिनाथ भगवान की मूर्ति-प्रतिष्ठा करा दी गयी है। वह विराजमान की गई है। तीर्थक्षेत्र कमेटी ने भी इस क्षेत्र के जीर्णोद्धार में सहायता की है[३]।

वेण्कुन्ट्रू . वन्दवासि के उत्तर में ३ कि. मी. पर है। यहाँ एक जैन मन्दिर है। यहाँ ३५ दिगबर जैनों के घर है। यहाँ के मन्दिर के मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ है। अन्य कई धातु की मूर्तियाँ भी है। दायी ओर धर्मदेवी का मन्दिर है। मन्दिर के सामने टीन के नीचे वृषभनाथ भगवान की मूर्ति है, जिसे "मलैबिम्ब" कहकर वर्षा काल में पूजते हैं। मुख्य द्वार के सामने एक वेदी है। उसमें मूलनायक चंद्रप्रभु भगवान है। धातु की मूर्तियाँ भी हैं। एक सभा मण्डप भी है। यह विशाल मन्दिर दर्शनीय है। व्यवस्थित है। लोग धर्म प्रेमी हैं। वह चोल राज्य के समय का निर्मित है[४]।

साऊथ आर्काड जिला

कीलकुप्पं : कूडलूर-नेल्लिक्कुप्पं रास्ते पर यह गाँव है। ग्राम देवता के मन्दिर के पश्चिम में एक जैन मूर्ति है। यह जमीन से मिली थी। यह मूर्ति छत्रत्रय एवं चामरधारी है[५]।

---

१. List P-170 N.A Dt. manual P-215 २. Top List Page 170 ३. Top List Page 170 ४. Top List Page– 171 ५. South Arcot Dis. Gazetteer, Vol. I, P-311

तिरुवदिकै : कूडलूर से पणरुट्टी जाने के रास्ते से करीब २० कि. मी. पर यह गाँव है। जो व्यक्ति जैनधर्म में धर्मसेन नामका साधु था, वह अपने पेट के रोग के कारण शैव बन गया था जिसका नाम तिरुनावुक्करसु कहा जाता था। शैव पेरिपुराणं के आधार से पता चलता है कि इसके (तिरुनावुक्करसु) प्रयत्न से, राजा महेन्द्रवर्म ने पाटलीपुर में जो जैन मन्दिर था, उसे तोड़कर, उसके पत्थर से यहाँ "गुणधरवीच्चुरं" नाम का शैव मन्दिर बनवाया था। इससे पता चलता है कि एक जमाने में यह जैनियों का केन्द्र था। वहाँ जैन लोग थे, तथा जैन मन्दिर एवं मठ था।

इस गाँव के खेतों में दो जैन मूर्तियाँ मिली थी। जिनकी ऊँचाई ५ फुट थी और वे पद्मासन थी। वे यहाँ के शिव मन्दिर में रखी हुई है और एक ३ फुटवाली मूर्ति धर्मशाला में रखी हुई है। यहाँ के शासन से पता चलता है कि जैन और शैव मन्दिर की जमीन को लेकर कभी झगड़ा हुआ था[१]। इससे पता चलता है कि यहाँ जैन मन्दिर था। उसकी जमीन थी। "नान्मुखनायनार" कोयिल याने चतुर्मुख भगवान का मन्दिर है। चतुर्मुख भगवान जिनेन्द्र देव को कहते हैं। अत: उस जमाने में यह गाँव जैनियों का मुख्य स्थल था।

तिरुप्पापुलियूर : (पाटलीपुरं) यह साउथ आर्काट जिले में है। इसे कडलूर भी कहते हैं। यह पहले के जमाने मे "पाटलीपुर" के नाम से प्रसिद्ध था। यह जैन लोगों का मुख्य स्थान था। प्राचीन काल में यहाँ जैन मठ एव मन्दिर थे। यहाँ का जैन मठ अतिप्राचीन था। यहाँ के सर्वनन्दी नाम के श्रमण साधुमहात्मा ने "लोकविपाकं" नाम के शास्त्र को अर्धमागधी भाषा से संस्कृत भाषा में अनुवादित किया था। उस शास्त्र से पता चलता है कि यह कार्य शक वर्ष ३८० मे (ई ४५८) कांचीपुर के नरेश नरसिहवर्म के २२ वें वर्षमें हुआ था[२]। इस पाटलीपुर मठ के अन्दर शास्त्राध्ययन कर इस पीठ के प्रधान साधु के रूप में जो धर्मसेन थे, उन्होंने शैव बनकर बाद में जैनधर्म के प्रति बड़ा अनर्थ किया था। वह प्रधान शैव भक्तों में से एक हो गया था। इसे "अप्पर" के नाम से पुकारा जाता था[३]।

इसी व्यक्ति ने शैव होने के बाद जैन मठ को तुड़वाकर उसके पत्थरों से "गुणधर" के द्वारा तिरुवदिकै में शैव मन्दिर बनवाया था[४]। इस स्थान में जैन मन्दिर था, इसका आधार यह है कि मजकुप्प यात्री लोगों के बंगले के पास एक जैन मूर्ति मौजूद है। इसकी ऊँचाई चार फुट है।

तिण्डिवनं : यह एक शहर है। यहाँ एक जैन मन्दिर है। विशाल चन्द्रप्रभु भगवान की मनोज्ञ मूर्ति है। शासन देवताओं की मूर्तियाँ हैं। धर्मशाला है। यहाँ का मन्दिर नवीन है। इसकी प्रतिष्ठा भी हो चुकी है। इस शहर में लगभग दिगंबर जैनों के २०० घर हैं। किन्तु धार्मिक वातावरण कम है।

सिरुकडंबूर (तिरुनाथर्कुन्द्रं) . यह जिंजी से २ कि मी. पर है। यहाँ के तालाब की

---

1. South Arcot District Gazetteer P-318, EP Rep-1923-24, EP, Rep-1921-22 P-99. 2. Mysore Archialogical Report 1909-10, P.45-46 3. पेरिय पुराण और तिरुनावुक्करसु पुराण ४. पेरिय पुराण और तिरुनावुक्करसु पुराण

चट्टान पर ४५ फीट की जिन प्रतिमा उत्कीर्ण है। इसके पास एक बड़ी चट्टान पर २४ तीर्थंकरों की पद्मासन प्रतिमायें दो पंक्ति में उत्कीर्ण हैं। यह जमीन से दस फुट ऊँचाई पर है। इसलिये दुष्ट लोग इसे तोड़ नहीं पायें। वे सौम्य एव मनोज्ञ हैं। इसे देखने से ऐसा लगता है कि वे अभी-अभी बनवायी गयी हैं[१]। इस स्थान पर चन्द्रकीर्ति उपाध्याय एवं इलैय भट्टारक इन दो साधु महात्माओं ने ५७ व ३० दिन उपवास किया था। यह तपोभूमि है। इस बात को यहाँ का शासन बतलाता है[२]।

यहाँ एक गुफा है। एकान्त स्थान है। साधुओं के लिए अनुकूल स्थल है। यहाँ का शासन बहुत ही प्राचीन है। इसे ई तीसरी सदी का बतलाते हैं।

जिंजी : यह भी एक छोटा सा शहर है। इसके एक कोने में जैनों का निवासस्थान है। जैनों के करीब १५ घर हैं। एक छोटा सा चैत्यालय है। पूजा आदि की व्यवस्था है। यहाँ धर्म के प्रति अभिरुचि एवं जाग्रति कराने की बड़ी आवश्यकता है।

मेलचित्तामूर इस गाँव में भगवान मल्लिनाथजी का पुरातन मन्दिर है। उसमें एक ही चट्टान पर मल्लिनाथजी, पार्श्वनाथजी, महावीर स्वामी और बाहुबली की प्रतिमाये उत्कीर्ण हैं। बगल में कूष्माण्डिनी देवी है। एक जैन मठ भी है। यही तमिलनाडु के जैनों का एक मात्र मठ है। पहले यह काजीवरं में था। न जाने वहाँ से यहाँ कैसे आ गया? मैलापुर के नेमिनाथ भगवान को यहाँ लाकर विराजमान किया गया है[३]। यहाँ के मन्दिरों में कुछ शासन उपलब्ध हैं[४]।

यहाँ के मठ में मठाधीश होते हैं। धार्मिक संस्कार डालना, धर्म का प्रचार-प्रसार करना इनके हाथ में है। मठ का बहुत बड़ा भवन है। समाज का सुधार, देखरेख आदि ये ही करते हैं। इनका नाम लक्ष्मीसेन भट्टारक पट्टाचार्य है। चार मठ मुख्य माने जाते हैं। जैसे दिल्ली, कोल्हापुर, जिनकांजी और पेनुकोण्डा। किन्तु पेनुकोण्डा का पता नहीं चलता। सम्भवत· वह कर्नाटक में था।

मठ के पास दो मंदिर हैं। एक पार्श्वनाथ भगवान का, दूसरा नेमिनाथ भगवान का है। पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर नया और कलात्मक है। मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति देखते ही बनती हैं। इतनी कलापूर्ण सुन्दर आकृति है की उसका वर्णन करना अशक्य है। नेमिनाथ भगवान की मूर्ति भी पुरानी कला की दृष्टि से उत्तम है। प्रवेश गोपुर द्वार सात मंजिल का है। मन्दिर के सामने विशाल मैदान है। चैत्र मास में दस दिन का ब्रह्मोत्सव हर साल होता है। सातवें दिन भगवान पार्श्वनाथ का रथोत्सव होता है। यह सब दक्षिण परंपरा के अनुसार चलता है।

पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर बड़ा मन्दिर कहलाता है। मन्दिर कठिन पत्थर से बनवाया गया है। दक्षिण की कला से परिपूर्ण है। कूष्माण्डिनी देवी का भी मन्दिर है। नेमिनाथ भगवान का मन्दिर छोटा मन्दिर कहलाता है। बड़े-छोटे दोनों मन्दिरों में धातु की मूर्तियाँ बहुत हैं। छोटे मन्दिर के पश्चिम में सरस्वती, गणधर, परमेष्ठी, ब्रह्मयक्ष,

---

१. Top Antiq P-208 2. S. A. Dist. Gazatteer P-369 ३. S.I. EP Rep 1937-38 Page 109 ४. S.I. EP Rep 1902, Page 201, 202, 203.

ज्वालामालिनी यक्षी और पद्मावती, इन सबके अलग-अलग मन्दिर हैं यहाँ एक बहुत बड़ा सभा मण्डप है, जिसके सामने मानस्तंभ और ध्वजस्तंभ हैं। उसी मण्डप में बाहुबली भगवान की मूर्ति विराजमान है।

मठ के अन्दर ताडपत्र का शास्त्र भण्डार है। देख-रेख की कमी के कारण ग्रन्थ जीर्ण शीर्ण होते जा रहे हैं। मठ की काफी जमीन है। चारपाँच साल से वर्षा का अभाव होने के कारण आमदनी नहीं के बराबर है। बड़े मन्दिर के गोपुर का जीर्णोद्धार करना आवश्यक है क्योंकि वह शिथिल होता जा रहा है। पाण्डुक शिला भी है। ब्रह्मोत्सव के अन्तिम दिन १००८ कलशों से इसी पाण्डुक शिला पर अभिषेक होता है। मठ के अन्दर प्राचीन चाँदी, स्फटिक, पन्ना आदि की मूर्तियाँ हैं। धर्मशाला है। यात्री लोग ठहर सकते हैं। आने-जाने के लिए बस की सुविधा है। दर्शन करने योग्य स्थान है।

तोण्डूर : यह तिण्डिवनं से २० कि. मी. और जिजी से १५ कि. मी. पर है। इस गाँव के दक्षिण में २ कि. मी. पर एक छोटासा पहाड़ है। इसे पंचपाण्डवमलै भी कहते है। इसमें दो गुफायें और कई शय्यायें हैं। गुफा में २ फुट ऊँची तीर्थंकर प्रतिमा है[१]।

इस गाँव में "बलुवामोलि पेरुंपल्लि" नाम का मन्दिर था। शासन से पता चलता है कि इस मन्दिर के लिए एक राजा ने "आरान्द मंगलं" नाम का गाँव, बगीचा और कुँआ आदि दान मे दिया था। इसका निर्वाह बज्रसिह साधु और उनके शिष्य करते रहें, ऐसा शासन किया गया था[२]।

मेल उलक्कूर के पास एक तोण्डूर है। यहाँ एक विशाल जिन मन्दिर है। मूलनायक महावीर भगवान हैं। मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ है। धातु की मूर्तियाँ भी हैं। यह जिनमन्दिर प्राचीन है। गाँव से एक फर्लांग पर छोटी सी पहाड़ी है। उसमें एक गुफा है। गुफा की चट्टान पर पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति उत्कीर्ण है, यह अत्यंत चमत्कारी मानी जाती है। अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिये अजैन-जैन सभी आते हैं और भक्ति से पूजा करते हैं। कहा जाता हैं कि अनेकों आचार्यो ने यहाँ तपश्चरण किया था। गुफा के ऊपर अनेकों शय्यायें है, जिससे पता चलता है कि कई मुनिराजों ने यहाँ तप किया होगा और आत्मसाधना के द्वारा उन्होने निजानन्द प्राप्त किया होगा। यहाँ अत्यन्त शान्त वातावरण है। यहाँ श्रावकों के २५ घर हैं जो धर्म प्रेमी और भक्त हैं।

कल्लपुलियूर : यह जिंजी से १५ कि. मी. पर है। यहाँ दिगंबर जैनों के ६० घर हैं। एक जिनमन्दिर है। मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ हैं। मन्दिर की व्यवस्था ठीक है। यह साधु-सन्तों का जन्मस्थान रहा है। श्री १०८ वर्द्धमानसागरजी महाराज यहीं के हैं। यहाँ का मन्दिर प्राचीन है। धातु की मूर्तियाँ भी हैं। ताड़पत्र के शास्त्र भण्डार में करीब १५० ग्रन्थ हैं। श्रावक-श्राविकाओं मे धर्म की ओर अभिरुचि है। पूजा-पाठ आदि बराबर चलता है।

वलत्ति : यहाँ एक जिन मन्दिर है। जैनियों के करीब ३० परिवार है। मन्दिर के

---

१. South Arcot Dist. Gazetteer. P-370, Antiq P-209

२. S. I. E. P. Rep 1934-35, P-58, 83 of 1934-35

सामने मानस्तम्भ है। मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं। अन्य पाषाण की मूर्तियाँ भी हैं। शासन देवताओं की मूर्तियाँ हैं। शास्त्र भण्डार भी हैं। एक सभा मण्डप है। नर-नारियों में धर्म के प्रति अभिरुचि है। गाँव से एक कि. मी. पर पहाड़ी जंगल में एक गुफा है। उसमें भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा उत्कीर्ण है। इससे पता चलता है कि यहाँ साधु-सन्त निवास करते होंगे। विविध सुधारों की बड़ी आवश्यकता है।

मेलमलयनूर : यहाँ एक जिनमन्दिर है। वह प्राचीन है। वह जीर्ण अवस्था में था। किन्तु अब पूर्ण रूप से जीर्णोद्धार हो गया है। महासभा की सहायता काफी रही। तीर्थक्षेत्र कमेटी की तरफ से भी सहायता मिली है। भव्य जैन समूह ने भी यथाशक्ति सहायता दी। मानस्तंभ की स्थापना की तैय्यारी है। वेदी प्रतिष्ठा होने वाली है। यहाँ १० श्रावकों के घर हैं। मन्दिर के जीर्णोद्धार में करीब तीन लाख रुपये लगे हैं। कठिन परिश्रम के कारण काम पूरा हुआ है। मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं। अन्य धातु की प्रतिमायें हैं। शासन देवताओं की भी प्रतिमायें हैं। ब्रह्मदेव और धर्मदेवी अलग-अलग कमरे में स्थापित हैं। धार्मिक रुचि साधारण है।

तायनूर : यहाँ एक जिन मन्दिर है। जैनों के २५ घर है। यह मलयनूर से २ कि. मी दूरी पर है। मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं। यह प्राचीन स्थल है। अन्य धातु की प्रतिमायें काफी हैं। इसका जीर्णोद्धार हो गया है। जिंजी के दुबाल कृष्णप्पनायक्क के अत्याचार से (इसका विवरण पहले दिया जा चुका है) डर कर जो लोग शैव बन गये थे, उन्हें फिर से जैन बनाने का श्रेय जैन ओडेयार नामक श्रावक को जाता है। वे महाशय इसी गाँव के थे। उनकी परपरा अब भी यहाँ पर है। जो कोई जैन तमिलनाडु में नजर आ रहे हैं, वे सब-के-सब फिर से जैन धर्म में पुनर्दीक्षित किये गये थे। इनकी कृपा नही होती तो आज एक भी जैन नजर नहीं आता। यहाँ के जैन ओडेयार श्रावक महानुभाव की सेवा प्रशसनीय ही नही अपितु अनुकरणीय भी है।

तोरप्पाडी : यहाँ पुष्पदन्त भगवान का जिनमन्दिर है। यह प्राचीन है। यह जीर्ण अवस्था में है। महासभा की सहायता से इसका जीर्णोद्धार हुआ था। किन्तु पूरा नहीं हो सका। अन्य धातु की प्रतिमायें है। यह जिंजी से ९ कि. मी. पर है। यहाँ १५ दिगंबर जैनों के घर हैं। यहाँपर जीर्णोद्धार की बड़ी आवश्यकता हैं।

पेरुम्बुगै : यह जिंजी से ४ कि मी. पर है। यहाँ एक जिनमन्दिर है। मूलनायक मल्लिनाथ भगवान हैं। शासन देवताओं की मूर्तियाँ हैं। यहाँ अक्षय तृतिया के दिन आहारदान विधि अच्छे ढग से करायी जाती है। गाँव से डेढ कि. मी. पर एक गुफा हैं। उसमें करीब बीस शय्यायें है। इसमें आचार्य वर्द्धमानसागर जी महाराज के चरण स्थापित किये गये हैं। यह पहाड़ की तलहटी में है। इससे पता चलता हैं कि इस पर्वत की गुफा में मुनिराजों ने तप किया होगा और वे आहार के लिये नीचे गाँव में जाते रहे होंगे। सुन्दर वातावरण है।

वीरणामूर : यह मेलचित्तामूर से ५ कि. मी. पर है। यहाँ श्री आदिनाथ भगवान का जिनमन्दिर है। हर गाँव मे जैन लोग अलग ही रहते है। इन लोगों की वीथी अजैनों की

वीथी मे अलग रहती है। यहाँ करीब ४० जैन परिवार हैं। अन्य धातु की प्रतिमायें हैं। इस मन्दिर की बायीं ओर तीन कोठियाँ हैं, जिसमें पद्मावती, कूष्माण्डिनी और ज्वालामालिनी देवी विराजमान है। हर एक मन्दिर मे भगवान की सेवा करनेवाले शासनदेवता तथा देवियाँ अवश्य विराजमान की जाती हैं। इनका आदरसत्कार भी बराबर होता रहता है। इस प्रान्त में आगम परंपरा के अनुसार सब काम चलता है। पंचामृताभिषेक की परंपरा चालू है। लोगों की भक्ति-भावना भी सराहनीय है। सुधार की बात कहें, तो कोई सुनेगा नही। आगम पर इतनी श्रद्धा है।

ओदलवाडी · यह तिरुमलै से ५ कि मी. पर है। यहाँ जैनियों के करीब ६० घर है। यहाँ एक जिनमन्दिर है। मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं। अन्य धातु की मूर्तियाँ भी हैं। धर्मदेवी आदि शासन देवताओं की मूर्तियाँ हैं। ब्रह्मदेव मन्दिर है। श्रावक-श्राविकाओं में धर्म के प्रति अभिरुचि कम है। अतः यहाँ प्रचार की बड़ी जरूरत है।

तच्वांबाडी : यहाँ एक जैन मन्दिर है। जैनों के २० घर हैं। यहाँ कई पढ़े-लिखे विद्वान लोग हैं। मन्दिर के मूलनायक भगवान महावीर स्वामी हैं। अन्य धातु की प्रतिमायें हैं। शासन देवताओं की भी प्रतिमायें हैं। मन्दिर के सामने मानस्तंभ और ध्वजस्तम्भ है। पीछे की ओर एक मुनिराज की चरण पादुका विराजमान है। विशाल सभा मण्डप है। मन्दिर सुन्दर एवं सुरक्षित है।

पेरणमलूर : यहाँ आदिनाथ भगवान का जिनमन्दिर है। अन्य २० धातु की प्रतिमायें हैं। शासन देवताओं की मूर्तियाँ हैं। मन्दिर सुरक्षित हैं। करीब ४० जैन परिवार हैं। धर्म के प्रति अभिरुचि साधारण है। धर्म प्रचार की बड़ी आवश्यकता है।

बालपन्दल : यह आरनी के पास है। यहाँ एक जिनमन्दिर है। मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं। १० धातु की प्रतिमायें हैं। मन्दिर के जीर्णोद्धार की बड़ी आवश्यकता है। यहाँ जैनों के २० परिवार हैं। धर्म की अभिरुचि कम हैं।

मेलपन्दल . यह छोटा सा गाँव है। यहाँ एक जिन मन्दिर है। मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं। अन्य धातु की प्रतिमायें हैं। शासन देवताओं की प्रतिमायें हैं। इस गाँव में करीब २० श्रावकों के घर हैं। मन्दिर का सुधार आवश्यक है। प्रचार भी आवश्यक है।

कोईलांपुण्डी : यह मेलपन्दल से १ कि. मी. पर है। यहाँ जैनों के घर नहीं हैं। पहले रहे होंगे। प्राचीन जिनमन्दिर है। पुरातन मूर्तियाँ हैं। चतुर्थकाल की बतलाते हैं। मूलनायक भगवान महावीरस्वामी हैं। इसे करीब डेढ़ हजार साल पुराना बतलाते हैं। मन्दिर की अवस्था ठीक है। परन्तु शिखर की हालत शोचनीय है। जीर्णोद्धार की आवश्यकता हैं।

नगरम्-नेत्रपाक्कं . मेलपन्दल से ९ कि. मी. पर हैं। यह छोटा सा गाँव है। यहाँ ४ जैनों के घर हैं। यहाँ से एक कि. मी. पर जंगल में छोटा सा जैन मन्दिर है। बहुत सुन्दर है। इसके चारों ओर खण्डहर पड़ा है। इससे जान पड़ता है कि एक जमाने में यहाँ

पर विशाल मन्दिर रहा होगा। इसका जीर्णोद्धार साहू रमा रानी के कोष से हुआ है। मूलनायक नेमिनाथ भगवान हैं। यह एक तरह से अतिशय महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। यह क्षेत्र नेत्रपाक्कं भी कहा जाता है। यहाँ की धातुओं की मूर्तियों को नेत्रपाक्कं में (नगर) ले जाकर रखा गया है। यहाँ चोरी का भय है। आसपास में कोई घर नहीं है। खोज करने से नयी चीजें मिल सकती हैं।

मोट्टूर : यह एक छोटा सा गाँव हैं। यहाँ मन्दिर नहीं है। यह नेत्रपाक्कं से २ कि. मी. पर है। यहाँ जैन परिवार करीब बीस हैं। धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। प्रचार की कमी है।

तच्चूर : यह एक प्राचीन स्थल है। यह आरनी से १० कि मी. पर है। यहाँ आदिनाथ भगवान का जिनमन्दिर हैं। अन्य धातु की प्रतिमायें हैं। शासनदेवताओं की मूर्तियाँ भी हैं। कहते हैं कि एक मार्च के दिन सूर्य की किरणें प्रात काल वृषभस्वामी के चरण स्पर्श करती हैं। धीर-धीरे मारे भगवान के दर्शन करती हैं। यह एक अतिशय है। यहाँ जैनों के करीब २५ घर हैं। इसका जीर्णोद्धार हुआ है। प्रतिष्ठा भी हुई है। मन्दिर सुरक्षित है। दर्शन करने लायक हैं।

सदपेरिपालय : यह तच्चूर से २ कि. मी. पर हैं। यहाँ करीब १० श्रावकों के घर है। परन्तु मन्दिर प्राचीन है। मन्दिर की अवस्था दयनीय है। इसका जीर्णोद्धार होना आवश्यक है। महासभा की तरफ से सहायता दी गयी है। पूर्णरूप में जीर्णोद्धार नही हुआ है। रोज अभिषेक होता है। मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं। अन्य धातु की प्रतिमायें है। शासनदेवताओं की प्रतिमायें भी हैं। मन्दिर कलापूर्ण है।

नावल : यह एक छोटा सा गाँव है। एक जिनमन्दिर है। यहाँ कई-विद्वान हुए हैं। इस मन्दिर के मूलनायक श्री वासुपूज्य भगवान हैं। धातु की मूर्तियाँ भी हैं। ताड़पत्र की भी कुछ पाण्डुलिपियाँ हैं। शासन देवी देवतायें हैं। मन्दिर की परिस्थिति साधारण हैं। यह चेय्यार से ८ कि. मी पर है। यहाँ २५ परिवार हैं।

वेल्लै : यह चैय्यार से ६ कि. मी. पर है। यहाँ १२ जैन परिवार हैं। जिनालय छोटा सा है। नूतन बना रहे हैं। महासभा की सहायता मिली है। मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान है। धातु की मूर्तियाँ हैं। शासन देवता की मूर्ति है। यहाँ के लोगों मे धर्म की अभिरुचि है। फिर भी धर्म प्रचार की आवश्यकता है।

वेल्लियनल्लूर : यह करन्दै से करीब ६ कि. मी. पर हैं। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है। मूलनायक महावीरस्वामी हैं। धातु की प्रतिमायें हैं। शासन देवताओं की भी प्रतिमायें हैं। यहाँ करीब ३० दिगंबर जैन परिवार हैं। मन्दिर पर शिखर नही है। मन्दिर की हालत ठीक नहीं है। पूजा-पाठ भी ठीक नहीं चलता।

कलवै : यह छोटा सा शहर है। यहाँ मन्दिर नहीं है। करीब दिगंबर जैनों के १० परिवार हैं। धर्म के प्रति अभिरुचि साधारण है। धर्म प्रचार की जरूरत है।

वेण्बाक्क : यह बडा गाँव है। तिरुप्पणमूर से २ कि. मी. पर है। यहाँ एक जिन मन्दिर है। अति प्राचीन है। मूलनायक चन्द्रप्रभु भगवान हैं। अन्य धातु की प्रतिमायें हैं।

शासनदेवताओं की प्रतिमायें भी हैं। देवी कूष्माण्डिनी का अलग मन्दिर है। मन्दिर की व्यवस्था अच्छी है। इसको महासभा की सहायता मिली है। साफ सुथरा है। यहाँ ३० जैन परिवार हैं। संपन्न भी हैं। धर्म के प्रति अभिरुचि है।

वन्दवासी : यह एक शहर है। यहाँ एक चैत्यालय है। मूलनायक महावीर भगवान हैं। अन्य प्रतिमायें हैं। धर्म देवी की अलग वेदी है। नीचे धर्मशाला है। यह धर्मशाला नेल्यांगुल जयपाल नैनार ने बनायी है। चैत्यालय का निर्माण बिरुदूर चिन्नतंबि नैनार के द्वारा हुआ है। यह व्यक्ति बड़े धर्मात्मा थे। कांजीवरं चैत्यालय का निर्माण भी इन्हीं के द्वारा हुआ है।यहाँ करीब १०० दिगबर जैन परिवार हैं। शहर होने से दूर पर रहते हैं। धार्मिक रुचि साधारण है।

सलुक्के : यह एक गाँव है। वन्दवासी से करीब ३ कि. मी. पर है। यहाँ प्राचीन खण्डहर में छोटा सा मन्दिर है। मूलनायक महावीर भगवान हैं। इसके पास ४ साल पूर्व जमीन खोदते समय धातु की प्रतिमायें निकली हैं। परन्तु उन्हें सरकारने अपने अधिकार में कर लिया है। यहाँ कोई श्रावक नहीं है। पहले के जमाने में काफी जैन लोग रहे होंगे। नहीं तो जिनालय होना, जमीन से प्रतिमायें निकलना कैसे संभव है? शैव नैनार के कुछ घर हैं। वे पहले जैन थे। उनका आचार-विचार जैनों का सा है।

बिरुदूर : यह गाँव वन्दवासी से २ कि. मी. पर है। यहाँ जैनों के करीब ६० घर हैं। आदिनाथ भगवान का एक जिन मन्दिर हैं। यहा मन्दिर आरकाड के नवाब के जमाने का है। इस मन्दिर के लिये नबाब की दी हुई जमीन है। मूलनायक यक्ष-यक्षी सहित हैं। शासन देवी का मन्दिर है। अन्य धातु की मूर्तियाँ हैं। मानस्तंभ है। एक सभा मण्डप भी है।

नेल्लियांगुलम् : यह बिरुदूर से २० कि. मी. पर है। यहाँ एक जिनालय है, जिसके मूलनायक नेमिनाथ भगवान हैं। अन्य धातु की मूर्तियाँ है। शासन देवताओं की मूर्तियाँ भी हैं। एक सभा मण्डप है जिसमें नेमिनाथ भगवान का पूरा जीवन-चरित चित्रित है। मुख्य द्वार के दायीं ओर एक कमरे में वेदी है, जिस में चौबीस भगवान विराजमान हैं। कूष्माण्डिनी भी बगल में विराजमान है। यहाँ पर एक संपन्न, दानी एवं धर्मात्मा जयपाल नैनार नाम के व्यक्ति थे। उन्होंने अपने जीवन काल में लाखों रुपये दान में खर्च किये हैं। यहाँ के मन्दिर के खर्च का जिम्मा उन्हीं का है। जहाँ कहीं भी पंचकल्याण चलें, उसके जन्म कल्याण का सारा खर्च वे अपने सुपुर्द लिया करते थे। वे शास्त्र के अच्छे जानकार भी थे। सदाचारी थे। उनकी परंपरा के लोग यहीं रहते हैं। यहाँ के मन्दिर की परिस्थिति अच्छी है। लोग धर्मप्रिय हैं। जैनों के तीस घर हैं।

विल्लिवनम् : यहाँ पर महावीर भगवान का जिनालय है। साहू जैन की सहायता से कुछ जीर्णोद्धार हुआ है। परन्तु अधूरा है। धातु की कई प्रतिमायें हैं। शासनदेवताओं की प्रतिमायें भी हैं। शिखर निर्माण हुआ है। यहाँ जैनों के २०-२५ घर हैं। यह गाँव नेल्यागुलं से करीब ३ कि. मी. पर है। प्रचार की आवश्यकता है। लोगों में धर्म की अभिरुचि है।

नल्लूर : यहाँ वृषभनाथ भगवान का जिनालय है। धातु की कई प्रतिमायें हैं। शासन देवताओं की मूर्तियाँ हैं। यहाँ जैनों के करीब ५० घर हैं। विशाल मन्दिर है। मन्दिर के दाहिनी ओर समवशरण की रचना है। २४ तीर्थंकर सगमरमर के है। किन्तु इसमें सफाई नहीं है। मुख्यद्वार के बायीं ओर पाण्डुक शिला है। यह प्राचीन है। मानस्तंभ है। मन्दिर की दशा साधारण हैं। व्यवस्था ठीक नही है। यह गाँव वन्दवासी से १५ कि. मी. पर है। बस की सुविधा है। धर्म की जागृति कम है।

एरंबलूर : यह एक छोटा सा गाँव है। यहाँ का जिनालय नष्ट-भ्रष्ट हो गया है। केवल जमीन है। महावीर भगवान की एक मूर्ति हैं। इसे पत्थरों के ऊपर विराजमान कर रखा है। यहाँ सिर्फ ५ जैनों के घर हैं। इस मूर्ति की भक्ति पूजा कर लेते हैं। एक छोटा सा कमरा बनवाकर उसमें मूर्ति को विराजमान कर लें तो अच्छा है। उतना भी कर नहीं पाते। यह मूर्ति भी पुरानी है। गाँव के लोग इस पर ध्यान नहीं देते। महायता के द्वारा यह काम पूरा होता, तो मूर्ति की अविनति नही रहेगी। यह ध्यान देने की बात है।

मुदलूर : यह वंदवासी से ६ कि मी. पर है। यहाँ बहुत पुराना जिनमन्दिर है। यहाँ जैनों के सिवाय अन्य लोग नहीं रहते। यह पाँच गाँवों का एक मन्दिर था। अब लोगों ने अपने-अपने गाँव मे मन्दिर बनवा लिये है। यहीं से क्रमशः तीन मठाधीश हो चुके हैं। यहाँ पर जैनों के करीब ५० घर हैं। यहाँ भगवान आदिनाथ का जिनालय है। अन्य धातु की प्रतिमायें भी है। शासनदेवताओं की मूर्तियाँ हैं। महासभा की सहायता से इसका कुछ जीर्णोद्धार हुआ था। परन्तु काम पूरा नहीं हुआ है। मानस्तंभ है, जिसमें मूर्तियों बनी हुई हैं। जीर्णोद्धार की आवश्यकता है।

एलंगाडु : (अतिशय क्षेत्र) यहाँ एक जिनालय हैं। मूलनायक आदिनाथ प्रभु हैं। श्री नेमिनाथ भगवान का बिम्ब अतिशययुक्त है। यह चमत्कारी प्रतिमा है। इसकी ऊँचाई ८ फुट है और चौडाई ४ फुट है। यह धातु की है। अन्य मूर्तियाँ भी धातु की हैं। यहाँ २५ जैनों के घर हैं। श्रद्धा-भक्ति काफी है। जीर्णोद्धार की आवश्यकता है।

वंगारं : यहां एक जिनालय है। मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान हैं। यह वन्दवासी से ६ कि. मी. पर है। यहाँ करीब ४० श्रावकों के घर हैं। यह गाँव पोन्नूरमलै से ३ कि. मी पर है। यहाँ का मन्दिर प्राचीन है। गोपुर जीर्ण हो गया है। अन्य धातु की प्रतिमायें हैं। शासनदेवताओं की मूर्तियाँ भी हैं। श्रावक लोगों की भक्ति-भावना जागृत है। कुछ जीर्णोद्धार हुआ है। और भी होना अभी शेष है।

सातमंगलम् : यह वन्दवासी से ३ कि. मी. पर है। यहाँ श्रावकों के करीब ६० घर हैं। चन्द्रप्रभु भगवान का जिनालय है। यह बहुत प्राचीन है। ऊँचा मानस्तंभ है। एक ही पत्थर से निर्मित है। मन्दिर की दशा दयनीय है। कुछ जीर्णोद्धार हुआ है। किन्तु अभी आधा-अधुरा है। पूरा होना आवश्यक है। अन्य धातु की प्रतिमायें भी हैं। यहाँ के श्रावकों में श्रद्धा-भक्ति कम है। नवयुवकों में तो बिलकुल नहीं है। जीर्णोद्धार की बड़ी आवश्यकता है। धर्म प्रचार की भी अत्यन्त आवश्यकता है। नवयुवक धर्म से अलग होते जा रहे हैं। उन्हें सुधारने की जरूरत है। गाँव की परिस्थिति साधारण है।

गुडलूर : यह एक छोटा सा गाँव है। यहाँ श्री कुन्थुनाथ भगवान का जिनालय है। अत्यन्त विशाल मानस्तंभ है। सभामण्डप है। पद्मावती देवी की प्रतिमा चित्ताकर्षक है। अन्य धातु की प्रतिमायें हैं। यक्ष-यक्षियों की मूर्तियाँ हैं। कुन्दकुन्द महाराज की चरणपादुकाऐं हैं। मन्दिर का गोपुर कलापूर्ण है। परन्तु शिथिल है। जीर्णोद्धार की आवश्यकता है। मन्दिर की हालत ठीक नहीं है। यहाँ श्रावकों के ३० घर हैं। यहाँ के लोग जिनधर्म में अभिरुचि रखते हैं। कोल्हापुर के वर्तमान भट्टारक श्री लक्ष्मीसेन पट्टाचार्य की यह जन्मभूमि है।

अगरकोरक्कोट्टै : यह तेल्लार के पास है। यहाँ श्रावकों के लगभग १२ घर हैं। श्री भगवान पार्श्वनाथ स्वामी का छोटा सा जिनालय है। धातु की मूर्तियाँ भी हैं। जीर्णोद्धार किया जा रहा है। यहाँ पढ़े-लिखे लोग रहते हैं। धर्म प्रचार की आवश्यकता है।

पेरियकोरक्कोट्टै : यह अगरकोरक्कोट्टै के पास है। यहाँ आदिनाथ भगवान का सुन्दर जिनालय है। धातु की प्रतिमायें काफी हैं। मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ है। यहाँ जैनों के ६० घर हैं। पढ़े-लिखे लोग ज्यादा हैं। गाँव से दूर एक चट्टान पर चरणपादुकायें हैं। बगल में पिछी कमण्डल सहित मूर्ति उत्कीर्ण है। चट्टान पर चढ़ने की १०-१२ सीढ़ियाँ हैं। किसी मुनिराज श्री का यह समाधिस्थल मालूम पड़ता है।

अरुगाऊर : यह एक छोटा सा गाँव है जो जंगम्बूण्डी गाँव इसके पास है। पोन्नूरमलै कुन्द-कुन्दाश्रम के धर्मकर्ता श्रीधर नैनार का जन्मस्थान है। दोनों गाँवों में मिलकर करीब १५ श्रावकों के घर हैं। जंगम्बूण्डि में मन्दिर नहीं है। अरुगाऊर में आदिनाथ भगवान का जिनमन्दिर है। धातु की प्रतिमायें हैं। मन्दिर छोटा है, परन्तु जीर्ण अवस्था में है। जीर्णोद्धार की बड़ी आवश्यकता है।

मजपट्टु : यह देसूर से ५ कि. मी. पर एक गाँव है। यहाँ मल्लिनाथ भगवान का जिनालय है। इसका जीर्णोद्धार हो चुका है। पंचकल्याण प्रतिष्ठा होने वाली है। यहाँ करीब ३० श्रावकों के घर हैं। अन्य धातु की प्रतिमायें है। यक्ष-यक्षियाँ भी हैं। यहाँ ताड़पत्र के शास्त्र का भण्डार हैं।

सीयमंगलं : मंजपट्टु से डेढ कि. मी. पर सीयमंगलं नाम का गाँव है। वहाँ जैन नहीं हैं। एक जमाने में रहे होंगे। उस गाँव के पहाड़ पर एक छोटी सी गुफा है। गुफा के ऊपर चट्टान पर तीन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। भगवान महावीर, पार्श्वनाथ और बाहुबली हैं। मूर्तियाँ नयनाभिराम हैं। ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ हैं। सुना जाता है कि गुफा के अन्दर ५ फुट की मूर्ति थी। गुफा का द्वार बन्द न होने के कारण दुष्ट लोगोंने उन्हें खण्डित कर दीया है। अब वह मूर्ति मद्रास के म्यूजियम में है। पहाड़ आजकल आर्क्योलोजिकल डिपार्टमेन्ट के अधीन हैं। मूर्ति करीब डेढ़ हजार साल पहले की होनी चाहिये। शासन-देवताओं की मूर्तियाँ हैं, उन्हें गाँव के अजैन लोग पूजते हैं। यह स्थान देसूर से ३ कि. मी. पर है। गुफा आदि देखने से पता चलता है कि वह मुनिराजों का निवास स्थान रहा था। वे वहाँ तप करते हुए पास के गाँव में जाकर आहार लिया करते होंगे। जहाँ कहीं भी पहाड़ हो वहाँ गुफा होगी और जिन प्रतिमायें अवश्य होंगी। क्योंकि तमिलनाडु

भर में एक जमाने में आठ हजार मुनिराज विहार-संचार-प्रचार करते थे। वे ज्यादातर गुफा में ही रहा करते थे। तप के लिये वही अनुकूल एवं एकान्त स्थान होता था।

तेन्नत्तूर : यह गाँव मंजपट्टु से २ कि. मी. पर है। यहाँ एक मन्दिर है। मूलनायक भगवान महावीर स्वामी हैं। पाषाण एवं धातु की प्रतिमायें बहुत हैं। शासन देवताओं की प्रतिमायें भी हैं। दिगंबर जैन परिवार के ३० घर हैं। मन्दिर का जीर्णोद्धार होकर, वेदी प्रतिष्ठा भी होकर, भगवान को यथास्थान विराजमान कर दिया गया है। धर्म-कर्म पर लोगों की श्रद्धा है। यहाँ धर्म का प्रचार होना चाहिए।

इसा कुलत्तूर : तेन्नत्तूर से २ कि. मी. पर यह गाँव है। एक जिनमन्दिर है। मूलनायक भगवान महावीर स्वामी हैं। पाषाण की मूर्तियाँ हैं तथा धातु की मूर्तियाँ भी हैं। सभी मूर्तियाँ नयनाभिराम हैं। परिक्रमा पर ३ मूर्तियाँ दिवाल के अन्दर उकेरी हुई हैं। यहाँ कूष्माण्डिनी (धर्मदेवी) की अलग वेदी है। देवी की मूर्ति चार फुट ऊँची है। हर शुक्रवार के दिन लोग आते हैं और मनौती करते हैं। वर्षारंभ के दिन भीड़ बहुत ज्यादा होती है। जैनों के घर १० हैं। मन्दिर का जीर्णोद्धार कार्य चल रहा है। दानी महानुभावों की सहायता आवश्यक है। मल्लिनाथ जैन शास्त्री जो इस ग्रंथ के लेखक है उनका जन्मस्थान यही गाँव है।

सोलै अरुगावूर : यह कुलत्तूर से २ कि. मी. पर है। यहाँ आदिनाथ भगवान का जिनमन्दिर है। पाषाण की एवं धातु की मूर्तियाँ हैं। मन्दिर का जीर्णोद्धार हो रहा है। सहायता की आवश्यकता है। जैनों के ३५ घर हैं। लोगों की धर्म में अभिरुचि कम है। धर्म-प्रचार की बड़ी आवश्यकता है।

सेंदमंगलम् : यह वन्दवासी से पश्चिम में स्थित है। यहाँ का मन्दिर प्राचीन है। यह नबाब के सहयोग से निर्मित है। इसे फिर से नया बना रहे हैं। साहूजी की सहायता मिली है। लोग यथाशक्ति दान देकर जीर्णोद्धार कर रहे हैं। काम अधूरा पड़ा है। गोपुर का काम पूरा हो चुका है। बाकी काम होना है। धन का अभाव है। कई साल से इस प्रान्त में वर्षा की कमी है। प्रतिमाये कमरे में विराजमान हैं। यहाँ जमीन से चार प्रतिमायें निकली हैं। मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं। धातु की प्रतिमायें हैं। यक्ष-यक्षियाँ भी हैं। यहाँ करीब २५ जैन श्रावकों के घर हैं।

एरुंबूर : यह वन्दवासी से ५ कि. मी. पर है। यहाँ पर आदिनाथ भगवान मूलनायक हैं। मन्दिर का थोड़ा जीर्णोद्धार हुआ है। बाकी होना है। धातु की मूर्तियाँ हैं। शासनदेवताओं की मूर्तियाँ हैं। मेलचित्तामूर के वर्तमान भट्टारक यहीं के है। इनके पिताजी भी पूर्व में भट्टारक थे। ताड़पत्र के कुछ ग्रन्थ हैं। यहाँ श्रावकों के करीब ३५ घर हैं। धर्म की अभिरुचि अच्छी है। फिर भी धर्म प्रचार की आवश्यकता है।

आयलवाडी : यह एरुम्बूर से ६ कि. मी. पर है। छोटा सा गाँव है। एक जिनमन्दिर है। मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार होकर, ३ साल के पहले पंचकल्याण प्रतिष्ठा हुई है। मन्दिर सुन्दर है। पाषाण की एवं धातु की प्रतिमायें हैं।

शासन देवताओं की प्रतिमायें हैं। यहाँ करीब २० जैन श्रावकों के घर है। धर्म के प्रति श्रद्धा अच्छी है। धर्म का प्रचार करें तो और भी दृढ़ बन सकती है।

विलुक्कं : यह गाँव चित्तामूर के पास है। करीब ३ कि. मी. पर है। मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान हैं। पार्श्वनाथ की प्रतिमा चांदी-निर्मित है। अन्य धातु की प्रतिमायें हैं। यहाँ इस प्रान्त में सभी जगह अधिकांश मूर्तियाँ, समवशरण युक्त एवं प्रभामण्डल सहित हैं। विशाल मानस्तंभ है। मन्दिर की व्यवस्था अच्छी है। यहाँ पद्मावती देवी चमत्कारयुक्त है। लोग इसकी मनौती करते हैं। इसके नाम से शुक्रवार के दिन एकाशन करते हैं। आस-पास के लोग आकर पूजा आदि करते हैं। यहाँ के तालाब पर आचार्य गुणसागर के चरणद्वय विराजमान है। नूतन वर्षारंभ के दिन इसकी पूजा होती है।

एलमंगलं : यह विलुक्कं के पास है। यहाँ एक जिनमन्दिर है। जैनों के १२ घर हैं। धर्म का जागरण कम है। धर्म प्रचार की बड़ी आवश्यकता है।

अगलूर : यह चित्तामूर से ८ कि. मी. पर है। यहाँ आदिनाथ भगवान का जिनालय है। इसका जीर्णोद्धार हुआ है। व्यवस्था अच्छी है। मन्दिर के सामने मानस्तम्भ है। एक सभा मण्डप है। क्षेत्रपाल का मन्दिर है। धातु की सैकड़ों मूर्तियाँ हैं। यक्ष-यक्षियों की मूर्तियाँ भी है। शास्त्र भण्डार बहुत हैं। यहाँ ४० जैनों के घर हैं। यह गाँव विद्वानों का है। इस गाँव से दो भट्टारक हुए हैं।

अत्तिपाक्कं : यहाँ २ मन्दिर हैं। एक अनन्तनाथ भगवान का है, दूसरा महावीर भगवान का है। अनन्तनाथ के मन्दिर में कई धातु की मूर्तियाँ हैं। पाषाण की ५ मूर्तियाँ हैं। एक चांदी की मूर्ति भी है। शासन देवताओं की मूर्तियाँ भी हैं। यह प्राचीन हैं। श्रावकों में संगठन का अभाव है। जिसके कारण मन्दिर की व्यवस्था ठीक नहीं है। श्रावकों के ३० घर हैं। लोगों में धर्म की रुचि है, परन्तु धर्म प्रचार की आवश्यकता है।

नेमेली : यह अत्तिपाक्कं से १ कि. मी. पर है। यहाँ नूतन मन्दिर बन रहा है। मूलनायक नेमिनाथ भगवान हैं। कई धातु की प्रतिमायें हैं। शासन देव-देवियों की मूर्तियाँ हैं। यह प्राचीन मन्दिर है। यहाँ श्रावकों के करीब ३० परिवार हैं।

वेल्लिमेडु पेट्टै : यहाँ का जिनालय साफ सुथरा है। व्यवस्था अच्छी है। मूलनायक अनन्तनाथ स्वामी हैं। मानस्तम्भ है। पद्मावती देवी का मन्दिर है। यह देवी चमत्कार-युक्त हैं। धातु की प्रतिमायें काफी हैं। शासनदेवताओं की मूर्तियाँ हैं। इस गाँव में करीब ३० परिवार हैं। यह डिण्डीवनं और वन्दवासी रोड पर है।

वीडूर : यहाँ आदिनाथ स्वामी का जिनालय है। यह प्राचीन है। इस गाँव में श्रावकों के करीब ५० घर हैं। इस मन्दिर में १५० ताड़पत्र की प्रतियाँ है। ये सब संस्कृत और प्राकृत के हैं। यहाँ करीब १०० जिन प्रतिमायें हैं। यह गाँव डिण्डीवनं से २५ कि. मी. पर है। अक्षय तृतिया और दशहरे के समय उत्सव मनाये जाते हैं। अभिषेक पुजारी ही करता है। श्रावक-श्राविकायें भगवान के दर्शन करने आते हैं। खुद अभिषेक करने की आदत कम है।

पेरणी : यह वीडूर से ८ कि. मी. पर है। यहाँ प्राचीन जिनालय है। मूलनायक आदिनाथ भगवान है। अत्यन्त कलात्मक मूर्ति है। कृष्माडिनी., पद्मावती, धरणेन्द्र इन तीनों की अलग अलग वेदियाँ है। यहाँ धातु की प्रतिमायें २० है। सुना जाता है कि यहाँ पर १०० जिनमन्दिर थे। श्रावकों की आबादी कितनी रही होगी ? यह सोचने की बात है। वह एक स्वर्णिम जमाना था। आज की बात अलग है। करीब २५ घर जैनों के हैं। कहा जाता है कि जमीन से मन्दिर निकला था। उसमें पद्मासन पार्श्वनाथ, खड्गासन पार्श्वनाथ, पद्मासन महावीर स्वामी की मूर्तियाँ निकली। उन्हे सरकार ने अपने अधिकार में ले लिया है। मन्दिर की व्यवस्था ठीक नही है। महासभा की तरफ से कुछ सहायता दी गई थी। उससे पूरा काम नही हो सका। काम अधूरा है। प्रचार की आवश्यकता है।

पेराऊर : यह एक बड़ा गाँव है। यहाँ का मन्दिर प्राचीन है। प्रथम गोपुरद्वार ५ मजिल का है। तमिल के अन्दर प्राय जिनालयों का प्रवेश द्वारा इसी प्रकार का रहा करता है। विशाल मानस्तम्भ है। बायी ओर आदिनाथ भगवान का जिनालय है। मानस्तम्भ के आगे सभा मण्डप है। धातु के करीब ४० बिम्ब हैं। शासन देव-देवियो की मूर्तियाँ हैं। मन्दिर की हालत साधारण हैं। इस गाँव में ३० दिगंबर जैन परिवार हैं। पद्मावती देवी का अलग मन्दिर है। यहाँ के लोगों की स्थिति प्राय· अच्छी है। धार्मिक भावना कम दीखती है। लोग भद्रस्वभावी है। प्रचार करबे की बडी आवश्यकता है।

उप्पुवेलूर : यह बडा गाँव है। इसमें जैनों के ४० परिवार हैं। यहाँ सुन्दर जिनालय है। लोग धर्मप्रिय और सपत्र है। परपरा के भक्त हैं। मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ है। मन्दिर विशाल एव मनोहर है। मूलनायक भगवान आदिनाथ प्रभु हैं। धातु की प्रतिमायें बहुत हैं। शासनदेवताओ की मूर्तियाँ हैं। क्षेत्रपाल का अलग मन्दिर भी है। मानस्तम्भ है। सुन्दर गोपुर है। धर्म के प्रति श्रद्धा-भक्ति साधारण है।

आलग्रामम : यह गाँव तिण्डिवनं से २० कि मी. पर है। यहाँ ऋषभनाथ प्रभु का जिनालय है। भगवान महावीर निर्वाण के २५०० वें महोत्सव कें समय पर स्थापित धर्मचक्र स्तूप है। मन्दिर सुन्दर एवं मजबूत है। तमिलनाडु के हर एक मन्दिर में नैवेद्य बनाने का एक अलग कमरा रहता है। उसमें पुजारी भगवान के लिये नैवेद्य तैय्यार करता है। यहाँ एक प्रथा और है कि सभी भगवानो का अभिषेक नहीं किया जाता, किन्तु सिंहासन पर एक भगवान को विराजमान कर उसी का पंचामृतादि अभिषेक होता है। यहाँ धातु की अनेकों मूर्तियाँ हैं। गणधर परमेष्ठी की भव्य प्रतिमा जपमुद्रा के रूप में पीच्छी-कमण्डलु सहित है। पाण्डुकशिला भी है। यहाँ हर साल आषाढ़ माह में ८ दिन तक ब्रह्मोत्सव होता है। श्रावकों की भक्ति भावना अच्छी है। यहाँ श्रावकों के ४० घर है।

सेण्डियं पाक्कं : आलग्राम से चार कि. मी. पर है। छोटा-सा गाँव है। एक दिगंबर जैन मन्दिर है। मन्दिर का जीर्णोद्धार हो रहा है। अधूरा है। धातु की प्रतिमायें हैं। शासनदेवताओं की प्रतिमायें हैं। मूलनायक श्वेत पाषाण के हैं। अत्यन्त सुन्दर है। यहाँ २५ श्रावकों के घर हैं। आवश्यक समय पर उत्सव मनाते हैं। चतुर्दशी, पूर्णिमा आदि के व्रत भी करते हैं। तमिलप्रान्त में जैन महिलाओं में यह प्रथा प्रचलित है कि हर एक महिला

पौर्णमासी के दिन एकाशन करती है।

पेरमण्डूर. यह प्राचीन गाँव है। यहाँ दो दिगंबर जैन मन्दिर हैं। यहाँ विद्वान लोग रहा करते थे। इस मन्दिर में ताड़पत्र के सैकड़ों ग्रन्थराज थे। अब नहीं हैं। नष्ट हो गये या चोरी हो गये है। एक आदिनाथ स्वामी का मन्दिर है। दूसरा चन्द्रप्रभु भगवान का। धातु की हजारों मूर्तियाँ हैं। कुछ वेदी पर हैं और कुछ अलमारी में हैं। जिनालय हजारों वर्ष प्राचीन हैं। कूष्मांडिनी माताजी की मूर्ति नयनाभिराम है। शासनदेवताओं की सैकड़ों मूर्तियाँ हैं। साहू जैन के निधी से कुछ जीर्णोद्धार हुआ है। अपर्याप्त है। मानस्तम्भ और ध्वजस्तम्भ भी है। आचार्य श्री निर्मलसागर जी महाराज की चरणपादुकाएँ भी विराजमान हैं। सबसे पुरातन मन्दिर जो गाँव से जरा दूर पर है, उसका जीर्णोद्धार हो रहा है। शास्त्रभण्डार नही है। कभी था। मन्दिर के चारों ओर जैन लोगों का निवास है। यहाँ करीब ६० श्रावकों के घर हैं। लोग धर्म श्रद्धालु हैं।

विलुप्पुरम् . विलुप्पुरं, तालुका का प्रधान शहर है। यहाँ यात्री लोगों के बंगले के पास "पट्टनिल" नाम के स्थान पर पहले एक जैनमन्दिर था। परन्तु वह अब वहाँ पर नहीं है। यहाँ की जैन मूर्ति को ले जाकर 'टेट् पार्क' नाम के स्थान पर रखा गया है[१]।

अरियागुप्प · यह पाण्डि के पास एक गाँव है। यहाँ चार फुट ऊँची एक जैन मूर्ति है। एक अजैन साधु उसकी "ब्रह्मा" के नाम से पूजा करता था। अरियांकुप्पं अरूगन् (जिन) कुप्प का बदला हुआ नाम होगा।

पावण्डूर · यह तिरुकोयिलूर के दक्षिण-पूर्व में, पणरुट्टि के रास्ते पर है। इस गाँव में पहले एक जैन मन्दिर और जैनों का निवास रहा होगा। यहाँ के भगवान ऋषभनाथ की मूर्ति तिरुनरुगुट्ट में रखी हुई है। यह [illegible] जैन स्थल है।

तिरुनरुंकुन्ट्रं . यह अत्यन्त प्राचीन क्षेत्र है। यह तिरुक्कोयिलूर से १८ कि मी. पर है। यह अतिशय क्षेत्र है। पहाड़ पर है। ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ियों की व्यवस्था है। इस भगवान को "अप्पाण्डैनाथर" नाम से कहते हैं। यहाँ एक चन्द्रनाथ भगवान का मन्दिर भी है।

यहाँ कई शासन मिलते हैं। कुलोत्तुंग चोलराजा के नौवी सदी में "वीरसेगा काडवरायरं" ने पाठशाला के लिये ४८ हजार टेक्स दान दिया है। राजराज देव के १३ वें वर्ष में दूसरी पाठशाला को दान देने का विवरण दूसरे शासन-शिलालेख से मालूम होता है। यह दान पुष्पदन्तसेन नाम के आचार्य को सौपा गया था। अप्पाण्डैनाथर भगवान का चैत्रमास उत्सव और पूसमास उत्सव चलाने के वास्ते जमीन दान में दी गई थी। इस बात को त्रिभुवन चक्रवर्ती के समय का शासन बतलाता है और शासन यह भी बतलाता है कि श्रीधर नाम के व्यक्ति ने इस मन्दिर के लिये सोना दान में दिया था।

यहाँ का क्षेत्र पुराने जैनों के पास है[२]। कहा जाता है कि गुणभद्र मुनिराज के नेतृत्व में "वीर संघ" यहाँ रहा था। यहाँ दो गुफायें हैं। प्रवेशद्वार पर उन्नत शिखर है। गुफा के सामने ध्वजस्तम्भ है। प्रवेश करते ही चन्द्रप्रभु भगवान की गारे से निर्मित प्रतिमा है। प्रकोष्ठ में

---

१. S. Arcot Dist Gazetteer P-390. Top Antiq- P- 209- 210

२. Top Antiq- P- 211.

यक्ष-यक्षिणी की मूर्तियाँ है। बीच मे गुफाद्वार है। प्रवेश करते ही दाहिनी ओर पर्वत भित्ति पर उत्कीर्ण श्री १००८ पार्श्वनाथप्रभु की चमत्कारयुक्त अतिशय मनोज्ञ यक्ष-यक्षिणी सहित खड्गासन मूर्ति है। इसके चमत्कार से आकृष्ट जैन-जैनेतर लोग दूर-दूर से आकर पूजा-पाठ करते हुए मनौती करते हैं तथा अभीष्ट फल पाते है। अन्य धातु की मूर्तियाँ हैं। बिजली की व्यवस्था है। विशाल परिक्रमा है। बाई ओर विशाल मण्डप है। मध्य में पद्मावती देवी का मन्दिर है। इसके चारों ओर कुछ कमरे हैं। नीचे एक धर्मशाला है। यहाँ हर साल मई में १० दिन ब्रह्मोत्सव मेला लगता है। हजारों लोग आकर शोभा बढाते हैं। इस मन्दिर का अच्छे ढंग से जीर्णोद्धार हो कर प्रतिष्ठा भी हो चुकी है। नर्कांक्षी (सम्यग्दर्शन) व्रत वाले ४२ दिन व्रत करने के बाद यहाँ आकर उसकी पूर्ति करते है। एक जमाने मे यहाँ पर आठ हजार जैन परिवार थे। उसका प्रमाण यह है कि "तिल्लैमूवायिर-तिरुनरुंकुन्द्र एण्णायिर" याने लोकोक्ति अब भी कही जाती है कि चितम्बर में तीन हजार और तिरुनरुंकुन्द्र में आठ हजार जैन थे। यहाँ धातु प्रतिमा की चोरी हुई थी। चोर अपने आप पकडा गया। इससे इस क्षेत्र की महिमा जानी जा सकती है। वर्तमान में २ ही घर हैं और एक पुजारी है। परन्तु यह महान अतिशय क्षेत्र है।

यह गाँव मद्रास से तिरिच्ची जाने के रास्ते पर है। उलुन्दूरपेट उतर कर तिरुवन्नै नल्लूर रोड से पिल्लैयार कुप्प जाना होता है। यहाँ से यह क्षेत्र ५ कि मी पर है। बस की व्यवस्था है। जीर्णोद्धार कार्य मे साहू जैन के फण्ड से भी इसको सहायता मिली है।

ओलक्कूर · यह तिण्डिवनं तालुका में है। यहाँ का शासन पृथ्वी विडग अर्जिका के बारे में बतलाता है[१]।

तिरुक्कोयिलूर . यहाँ के कृष्ण मन्दिर का ध्वजस्तंभ जैनस्तंभ मालूम पडता है। इससे अनुमान किया जाता है कि यह मन्दिर पहले जैन मन्दिर रहा होगा[२]। यहाँ के राजाओं में बहुत से राजा जैन थे।

दादापुर : इसका पुराना नाम "राजराजपुर" है। यहाँ के कृष्ण मन्दिर के शासन में बताया गया है कि यहाँ जैन मन्दिर था। यह शासन राजकेशरिवर्मा राजराज देव का है। दूसरी बात यह है कि चोल राजा की बहन "कुन्दवै देवी" अपने नाम से "कुन्दवै जिनालय" बनवाकर, उस मन्दिर के लिये देवी ने सोना, चाँदी का बर्तन, मोती, जमीन आदि दान किया था[३]। इस राजकुल देवी ने पोलूर तालुका तिरुमलै में और तिरुच्चि तिरुमलैवाडी में जैन मन्दिरों को बनवाया था।

वेलूर : (तिण्डिवनं तालुका) यहाँ का शासन बतलाता है कि इस स्थल के मन्दिर का "जयसेन" ने जीर्णोद्धार किया था[४]।

वीरसेकरं पेरुपल्लि . यह वन्दवासी तालुका में सलुक्के गाँव के अन्दर एक गुफा मन्दिर था[५]।

तिट्टैक्कुडि : (तिरुत्ताजलं तालुका) यहाँ अजैन वैद्यनाथस्वामी मन्दिर के शासन में वाकैयुर पल्लिचन्द[६] "इडैच्चिरुवाय अमणप्पट्टु"[७] विवरण है। इससे पता चलता है कि

---

१. 356 of 1909. Top List No. 407-P-178 2. E.P. Rep -1922 -P -98
3. 1.8 of 1919. ४. 1-124 of 1929. ५. 474 of 1920. ६. S.I.I. Vol. VIII No. 279. ७. S.I.I., Vol VIII No. 289.

यहाँ जैन लोग रहते थे और जैन मन्दिर था।

कीलूर : (तिरुक्कोविलूर तालुका) यहाँ का शासन बतलाता है कि छत्रत्रयनाथ (मुक्कडैयव) का मन्दिर था [१]।

पल्लिच्चन्दल : (तिरुक्कोविलूर तालुका) यहाँ की एक छोटी पहाड़ी पर एक जैन मन्दिर है। यहाँ बाहुबली भगवान की मूर्ति है। यह शासन ई. १५३० का विजयनगर अच्युत देव महाराजा का है। इसमें जम्बै विजयनायनार् मन्दिर (जैन) के दान का विवरण है। अलावा इसके "वालैयूरनाट्टु" "पेरुंपल्लि" नाम के जैन मन्दिर के सहायतार्थ एक झील दान में दी गई हैं [२]। इससे २ कि. मी. पर राजराजचोल का शासन कण्डरादित्य पेरुंपल्लि नाम के जैन मन्दिर का विवरण बताता है[३]। वह यह भी बतलाता है कि यहाँ एक "अजिनान् पुगलिडं" भयभीतों का रक्षा स्थान था। यहाँ कोई भय से आवे तो उसकी रक्षा की जाय।

सोलवाण्डिपुरं : (तिरुक्कोयिलूर तालुका) यहाँ के कीरनूर गाँव में "किरनां पाटै" नाम की एक चट्टान है। उस पर भगवान गोम्मटेश्वर और पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ और साधु लोगों की शय्याये हैं। यहाँ पर एक जमाने में जैन लोग अत्यन्त वैभव के साथ निवास करते थे[४]। दूसरी बात यह है कि सोलवाण्डिपुर के आण्डि पहाड़ पर दसवीं सदी का शासन मिलता है। यहाँ की चट्टान में शासनदेवी पद्मावतीमाता, गोम्मटेश भगवान, पार्श्वनाथ भगवान और महावीरस्वामी की मूर्तियाँ हैं[५]। इसके पास देवियगरं-एलन्दूर में पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति है। इससे पता चलता है कि साऊथ आर्काड जिले के अन्दर जैन लोग एक जमाने में अधिक संख्या में रहते थे और उनके जैनमन्दिर भी थे। इन सभी जगह पर जैनमन्दिरों की जमीनें थीं।

कोलियनूर : विलप्पुरं से छ. कि. मी. पर है। एक जैन मन्दिर शिथिल है। यहाँ शासन भी है [६]। दूसरा शासन यह बतलाता है कि "अरुलपोलि नायनार" मन्दिर के लिये जमीन दी जा रही है। इसे हडप लेगा, तो उसको गंगा के किनारे गाय बलि का पाप और ब्राह्मण हत्या का पाप लगेगा।

जिनचिन्तामणि : यह विरुत्ताचलं तालुके में है। इसका नाम ही जैनत्व को प्रदर्शित कर रहा है।

एल्लानासूर : तिरुकोयिलूर के दक्षिण में २५ कि. मी. पर है। यहाँ एक पुरातन जैन मन्दिर है।

तिरुच्चिराप्पल्लि जिला

उरैयूर : यह चोल राज्य का प्रधान शहर था। यहाँ जैन लोग और जैनमन्दिर थे। सिलप्पधिकारं नामक जैन काव्य के पात्र कोवलन - कण्णकि के साथ जैन अर्जिका

---

1. S.I.I. Vol. No. VII 863. 2. 446 of 1937-38. 3. 448 of 1937-38. P-89
४. S.I. E.P Rep. 1936-37, P-2. ५. S.I. E.P. Rep 1936-37, P-60-61
६. Top Antiq-P- 209

"गौउन्दि" माता जी ने यहाँ के जिन भगवान की वन्दना की थी। फिर मथुरा (दक्षिण) नगरी की ओर तीनों ने प्रस्थान किया था। यह बात सिलप्पधिकारं मथुरा काण्ड में अंकित है। ई. दूसरी सदी में यहाँ जैन लोग अधिक संख्या में निवास करते थे। इस बात को नीलकेशी ग्रन्थ आजीवकवाद सर्ग में बतलाया गया है।

वेल्लनूर : तिरुच्चि जिले में यह गाँव है। यहाँ के खेतों में जैन मूर्तियाँ मिलती हैं। (आर्क-रिप. १९०९-१०)

पलनागप्पल्लि : यहाँ के अजैन मन्दिर में जो शासन है, वह बतलाता है कि कुलोत्तुंग राजा के जमाने में, पलनागप्पल्लि जैन मन्दिर के लिये दीपक दान में दिया गया है[1]। इससे पुराने जमाने में जैन लोग यहाँ बसते थे। इसकी जानकारी होती है।

अमुदमोलिप्पेरुंपल्लि : तिरुच्चि तालुका अन्बिल गाँव में एक शासन है। वह राजराज त्रिभुवन चक्रवर्ती चोलदेव के शासन काल में लिखा गया था। उसमे अमुदमोलि पेरुंपल्लि का विवरण है[2]।

पुलिवल्लं : यहाँ के मन्दिर (अजैन) शिलालेख से पता चलता है कि यहाँ पर जैन मन्दिर के लिये जमीन दान में दी गई थी। इससे जान पड़ता है कि यहाँ जैन लोग रहते थे और जैन मन्दिर था[3]।

अमण्कुडि : तिरुच्चेन्दुरै चन्द्रशेखर मन्दिर का शासन यह बतलाता है कि यहाँ पर जैन लोग रहते थे। उसे मथुरा के कोप्पकेशरिवर्म राज्यशासन के १६ वें वर्ष में (यह शासन) लिखा गया था[4]।

पलैय सगड : कुलित्तलै तालुका महादानपुर के एक हिस्से में जैन चिन्ह दिखाई देते हैं। यहाँ पुराने जमाने में जैन लोग रहते थे[5]।

सियालं : कुलित्तलै तालुका सियाल के एक चट्टान नाम की पहाडी से पता चलता है कि यहाँ श्रमण मुनिगण रहते थे[6]।

कुत्तालं : तेन्कासि तालुका कुत्तालुं की गुफा और पहाड़ी में श्रमण मुनिगण रहा करते थे[7]।

जंबुकेश्वरं : तिरुच्चि तालुके में यह गाँव है। वहाँ के जबुकेश्वर मन्दिर के राज-केशरिवर्म त्रिभुवन चक्रवर्ती का शासन बतलाता है कि यहाँ "कविराज पेरुंपल्लि" नाम का जैन मन्दिर था।

तिरुमलैवाडि : यहाँ कुन्दवै देवी ने (राजराज चोल नरेश की बहन) एक जैन मन्दिर बनवाया था[8]।

---

1. 256 of 1930-31. 2. S.I.I. VII No. 198, P98. 3. S.I.I. Vol. VIII No. 557 P-572. 4. S.I.I. Vol. VIII No. 609. 5. Trichinopaly gazetteer Vol. I, P-282. 6. Top Vol. III No. 132. 7. EP Rep 1912, P-57.
8. S.I.I. Vol I-67 -68.

जयंकोण्ड सोलपुरं : उडैयार पालयं से उत्तर-पश्चिम में ८ कि. मी. पर है। इसकी झील के किनारे पर एक ओर वीथी में जैन मूर्तियाँ हैं। झील की मूर्ति की, नगरवासी साल में एक बार, पूजा करते हैं[१]।

□ □

पुदुक्कोट्टै

अम्मासत्तिरं: इसके पश्चिम में "पल्लिकुलं" नाम का तालाब है। इसके पश्चिम में २५ फुट ऊंची चट्टान पर छत्रत्रय के साथ अरहन्त परमात्मा की मूर्ति उकेरी हुई है। यहाँ दो शासन हैं। इस तालाब के पास कई मूर्तियाँ टूटी पड़ी हैं।

आलुरुट्टिमलै: यह भी अम्मा समुद्र के पास है। यहाँ के छोटे पहाड़ पर दो जैन मूर्तियाँ हैं। यहाँ शासन भी है। उससे पता चलता है कि इस पहाड़ का नाम तिरुमानमलै है। इस तिरुमानमलै जिन भगवान के लिये दो एकड़ जमीन कनकचन्द्र पण्डित के शिष्य धर्मदेव आचार्य के पास सुपुर्द कर दी गई हैं[२]। यहाँ और भी कई मूर्तियाँ टूटी पडी हैं। एक जमाने में यहाँ अनेक जैन मन्दिर थे और जहाँ श्रावकगण रहते थे।

नारत्तमलै: पुराना शासन यह बतलाता है कि इसका नाम कुलोत्तुंगसोल नगर पर्वत है। यहाँ राजा का जो शासन मिला है उससे पता चलता है कि यहाँ के अरहन्त देव का नाम तिरुमान्मलै अरहंत देव है।[३] इस पहाड़ के दक्षिण-उत्तर छोटे-बड़े जैन मठ और मन्दिर थे। जमीन से आने वाली आमदनी को बड़े मठ के लिये दो हिस्सा और छोटे के लिये एक हिस्सा दिया जाता था। यह बात पोम्मैचट्टान के शासन के द्वारा जानी जाती है। यह शासन ई. ७५३ में लिखा हुआ है। इसमें दान की घोषणा लिखी हुई है।

पल्लिवासल: नार्तमलै के उत्तर में कुलोत्तुंग चोल राजा के जमाने का एक शासन है। उसमें यह लिखा हुआ है कि इस गाँव के तिरुमानै मलै अरहन्त देव के लिये दो एकड़ जमीन दी गई है[४]। यह शासन इ. १४३१ में लिखा गया है।

तेनीमलै: यहाँ पर कई जिन भगवान की मूर्तियाँ हैं। इस पहाड़ पर मलयध्वज नाम के साधु तप करते थे। इसे देख कर कोडुबालूर राजा ने जमीन दान में दी है।[५]

मलैयकोविल: यहाँ के चट्टान में लिखा हुआ शासन गुणसेनाचार्य के बारे में बतलाता है[६]। यहाँ की चट्टान को काट कर बनाये हुए दो जिन मन्दिर हैं, जिसको गुफा

---

१. Top List P–265. २. P.S.I. No. 474 & 367 of 1904. ३. P.S.I. No. 158.
४. P.S.I. No. 702. ५. P.S.I. No. 9. ६. P.S.I. No. 10.

मन्दिर कहते हैं।

सिद्धन्नवासल : सिद्धन्नवासल गाँव के पूर्व में २ कि. मी. पर एक लम्बा पहाड़ है। इस पहाड़ के ऊपर शय्यायें है। इस स्थान पर जैन मुनिगण तप किया करते थे। इसमें पत्थर को काटकर बनाया हुआ एक गुफा मन्दिर है। यह स्थान तमिलनाडु भर में अत्यन्त प्रसिद्ध है। पुराने जमाने में यह स्थान जैन साधुओं का केन्द्र था। इस गुफा-मन्दिर के सामने उत्तर दक्षिण २३ फुट लम्बा और १२ फुट चौड़ा एक मण्डप है। इस में कई खम्भे हैं। ये सब एक ही चट्टान में खोदे हुए हैं। इसे देखने से बहुत आश्चर्य होता है। इस मण्डप के उत्तर में छत्रत्रय के साथ अरहन्त भगवान की मूर्ति है। दूसरी ओर पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति है। मण्डप के चारों ओर चित्रकला अंकित है। इसे देखने रोज सैकड़ों लोग आते हैं। ये चित्र जरा घिसे हुए है। फिर भी चित्ताकर्षक हैं। जो जैन धर्म में जन्म लिये हैं, उन्हें एक बार ऐसे परम पवित्र स्थलों का दर्शन करना अतीव आवश्यक है, जिससे जन्म साफल्य अवश्य होगा, क्योंकि हजारों एव लाखों मुनिराजों के चरण स्पर्श से यह स्थल एकदम पावन है।

इस मण्डप के बीच में चट्टान को खोद कर तैय्यार किया हुआ एक गुफा मन्दिर है। इसकी लंबाई और चौडाई ११ फुट है। ऊँचाई करीब ६ फुट है। इस मन्दिर के अन्दर छत्रत्रय के साथ अरहन्त भगवान की तीन प्रतिमायें हैं। इस गुफा मन्दिर के निर्माण कर्ता जगत्प्रसिद्ध पल्लव राजाधिराज महेन्द्रवर्मन है। यह राजा ई. ६०० से ६३० तक चोल साम्राज्य का अधिपति था। एक कोने में उदारचित्त इस राजा की मूर्ति भी बनी हुई है। इस मन्दिर के उत्तर-पूर्व में एक स्वाभाविक गुफा है। इस गुफा के अन्दर जाना हो तो एलडिपट्टं रास्ते से जाना पड़ेगा। इस गुफा में पुराने जमाने में श्रमण साधुगण अपनी आत्माराधना (तप) करते थे।[१] यहाँ पर ब्राम्ही लिपि में शिलालेख है। यह शिलालेख कई तीर्थंकर भगवानों के तमिल नाम बतलाता है[२]। साधुओं के भी।

दूसरा शासन बतलाता है कि अवनिशेखरन श्री बल्लुवन[३] के जमाने में इलंगोतमन् नाम के बुद्धिमान व्यक्ति ने उक्त भीतर के मण्डप का जीर्णोद्धार किया था।

यहाँ के बगीचे में एक टूटी हुई जिनमूर्ति है। उसपर हलकासा आघात करने पर मधुर नाद निकलता है।

कई शिलालेख ये बतलाते हैं कि जैन मन्दिरों के लिये किसी व्यक्तिने पल्लिचन्द के नाम जमीन दान में दी थी।

कुलत्तूर तालुका कुन्नाण्डार (कोयिल) गुफा मन्दिर, जैन मन्दिर है। यहाँ के नारियल के बगीचे में दो जिन प्रतिमायें हैं। समणर मेडु में जमीन से मूर्ति मिली है। तेक्काटूर में एक जैन मूर्ति है। कइण्गुडि में एक जैन मूर्ति मिली है। कीलैत्तानियम गाँव में कुछ

---

१. Madras-Ep.-Rep 1915 P-86. २. P.S.I. No. 7. ३. पहले के जमाने में बल्लुवन शब्द को नामके रूप में उपयोग करते थे। शायद इसीलिए कुरल काव्य के कर्ता का नाम वल्लुवर पड़ा हो।

जैन मूर्तियाँ हैं। इन सबको देखने से पता चलता है कि प्राचीन काल में यहाँ और आसपास में बहुत अधिक जैन लोग रहते थे तथा जैन मन्दिर भी थे। कलह के समय सब नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया है। नहीं तो इतनी मूर्तियाँ और श्रमणों के (जैनों) चिह्न नहीं मिल सकते थे।

□ □

तंजाऊर जिला

तंजाऊर (सिटि करदट्टांगुडि) यह जिला है। यहाँ आदिनाथ भगवान का जिनालय हैं। यह बहुत प्राचीन है। यहाँ अनेकों धातु की प्रतिमायें है। शासन देवताओं की मूर्तियाँ हैं। प्रदक्षिणा में सरस्वती देवी का मन्दिर हैं। ब्रह्मदेव, ज्वालामालिनी और कूष्माण्डिनी के भी मन्दिर हैं। मन्दिर की व्यवस्था साधारण है। यहाँ श्रावकों के करीब २० घर हैं।

तंजाऊर (कोट्टै): यहाँ जैनियों के १५ परिवार हैं। एक चैत्यालय है। कई धातु की प्रतिमायें हैं। शासन देवताओं की मूर्तियाँ हैं। यह व्यक्तिगत चैत्यालय है। करन्दै से तीन कि. मी है।

तिरुवारुर: यह शहर है। प्राचीन काल में यहाँ जैन लोग समृद्धि के साथ रहते थे। उस समय यहाँ का तालाब छोटा था। उस तालाब के चारों ओर लोगों के मठ, पाठशाला और जमीन आदि थे। ई. सातवीं सदी के पहले यहाँ सांम्प्रदायिक उपद्रव हुए और जैनों को वहाँ से भगा दिया। "शैवपेरियपुराण" बतलाता है कि 'दण्डि अडि' के जमाने में इस तरह का कलह हुआ था। इस कलह के कारण जैनों के मठ, मकान आदि तोड़कर नष्ट कर दिये गये। अब वह तालाब १८ एकड़ में विस्तीर्ण है। पहले इसके बहु भाग में जैनों की जमीनें थीं। छीन कर तालाब बडा बनाया गया था[१]।

सेन्दलै: तंजाऊर तालुके में यह गाँव है। इसके शैव मन्दिर के दीवाल पर एक शिलालेख है। वह बतलाता है कि नक्कनीति नाम की महिला ने सोना दान दिया था।[२] इससे पता चलता है कि यहाँ जैन लोग रहते थे और जैन मन्दिर था तथा उसको सोना दान दिया गया था।

तिरुत्तुरैप्पुण्डि: इस गाँव के शैव मन्दिर के मण्डप का शासन त्रिभुवन चक्रवर्ती

---

१. तिरुत्तोण्डर पुराण २७. २. Top Ins. Vol. II (1293).

राजराज देव-३ का है। वह ई. सदी १२२७ ई-मई १३ में लिखा हुआ है। वह यह बतलाता है कि "सात्तमगलं" मन्दिर को "पल्लिचन्दं" (दान) दिया गया है। इसमे पता चलता है कि यहाँ जैन लोग रहते थे और जैन मन्दिर था। उसके लिये दान दिया गया था। अब यहाँ जैनों का नामोनिशान तक नहीं है[१]।

तिरुनाकेश्वरं: यह कुंभकोण तालुके में है। यहाँ के शैव मन्दिर के खम्भे का शासन जैन मन्दिर के बारे में विवरण देता है। यहाँ का मन्दिर मिलाड राजा के द्वारा बनवाया गया था। यहाँ के लोग कहते हैं कि जैन मन्दिर तोड़कर, उसके पत्थरों से शैवमन्दिर बनवा लिया गया है। उस मन्दिर के देवी मण्डप का जो खम्भा है, उसमें अब भी जैन मूर्तियाँ हैं। यहाँ की खेतों में जैन मूर्तियाँ पडी हैं[२]। इसका नाम पहले "कुमार मार्ताण्डपुर" था। यहाँ का मण्डप और गोपुर दोनो को एक व्यापारी ने बनवाया था। इसे राजकेशरी वर्मन चोल राजा के दूसरे वर्ष मे लिखा हुआ शासन बतलाता है[३]।

तिरुप्पुगलूर (वर्द्धमानीश्वरं): यह गाँव नल्लिलं रेलवे स्टेशन से ६ कि. मी. पर है। यहाँ "वर्द्धमानीश्वर" नाम का मन्दिर है। अब इसे शैव मन्दिर बना दिया गया है। इसके नाम से जान सकते हैं कि यह पहले जैन मन्दिर था। शैव मन्दिर बनाने की घटना सातवीं सदी के पहले घटित हुई थी। अप्पर और संबन्धर दोनों ने इस मन्दिर (शैव) के बारे में अपने पुराण में लिखा है। प्राचीन काल में यहाँ जैन लोग निवास करते थे और जैन मन्दिर था।

पलैयारै. पट्टीश्वर के दक्षिण में है। यहाँ चोल राजा के सम्बन्धी लोग रहते थे। उस समय जैन लोग भी निवास करते थे। ई. ११ वीं सदी में भी यहाँ जैन लोग और जैन मन्दिर थे। यहाँ के जिनेन्द्र भगवान के ऊपर भक्ति से गाये गये दो पद्य याप्परुगल वृत्ति की व्याख्या मे उदाहरण के रूप में दिये गये है। पद्य उपलब्ध है।

तालियोंगु...........आदि।

मरुत्तुवक्कुडि: यह गाँव पापनाशं तालुके में है। इस गाँव के शैव मन्दिर के मण्डप मे, त्रिभुवन चक्रवर्ती कुलोतुंग चोलदेव ३- के १६ वे साल में (ई सदी ११९४) लिखा हुआ शिलालेख है। यहाँ दो जैन मन्दिर थे।

मन्नार गुडि: यह तालुका है। पुराने जमाने में यहाँ जैन लोग अधिक संख्या में रहते थे। अब यहाँ जैनो के ३० घर है। यहाँ एक विशाल जैन मन्दिर है[४] यहाँ के राजगोपाल स्वामी मन्दिर (अजैन) का ध्वजस्तम्भ जैनों के मानस्तम्भ के समान होने से यह मन्दिर पहले जैन मन्दिर रहा होगा[५] यहाँ का मन्दिर किले के समान सुदृढ़ है। क्षेत्रपाल और ब्रह्मदेव की वेदी हैं। देवी ज्वालामालिनी का अलग मन्दिर है। यह देवी शक्तिशालिनी मानी जाती है। लोग इसकी मनौती करने दूर-दूर से आते हैं। अजैन

---

१. Top, Ins. Vol. II (1527-466 of 1912) २. S.I.I. Vol. III (No. 91) M.E.R. 1912 p. 7 & 62 ३. 222 of 1911 Ep. Rep. 1912-P-7.
४. Tanjore Dist. Gazetteer Vol. I Topagraphical list of Antiquities P-280.
५. E.P. Rep. 1922, P-98,99.

लोग भी आते है। अभीष्टफल पाते हैं। मूलनायक भगवान मल्लिनाथ हैं। यहाँ धातु की कई मूर्तियाँ हैं। शासन देवताओं की मूर्तियाँ भी हैं। तंजाऊर चैत्यालय से भी कुछ मूर्तियाँ लाकर रक्खी गई हैं। स्वस्तिक तम्बाकूवाले वेदारण्यंअरन्तराजय्यन मुदलियार के घरवालों की तरफ से इसका जीर्णोद्धार पूरी तरह से होकर, पंच कल्याण प्रतिष्ठा भी हो चुकी है। अब मन्दिर सुन्दर बन गया है। उसकी हानि किसी तरह से नहीं है। मन्दिर की जमीन है। यह मन्दिर बहुत पुराना है। तंजाऊर जिले में ही ज्यादा कलह हुआ था। न जाने यह मन्दिर कैसे बच गया है।

दीपंगुडि: यह नत्रिलं तालुके में है। यह भी एक जैन लोगों का मुख्य स्थल है। यहाँ "जयंगोण्डार" नाम के कविवर ने "दीपंगुडिप्पत्तु" के नाम से अत्यन्त भावपूर्ण भक्तिरसयुक्त दस पद्यो की रचना कर, भगवान के माहात्म्य को मुखरित किया है। यह दसों पद्य भक्ति के दस रत्न हैं। इन्हीं ने "कलिंगत्तुपरणी" की रचना की थी। यह ग्रन्थ उपलब्ध है।

इस मन्दिर के बारे में शासन भी है[१]। इस गाँव का नाम "अरसवनकाडु" है। धातु की कई मूर्तियाँ हैं। शासन देव-देवियाँ हैं। मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं। मन्दिर के सामने विशाल अहाता है। क्षेत्रपाल और ज्वालामालिनी का मन्दिर है। यह मन्दिर ईटों से बना हुआ है। ताम्र ध्वजदण्ड है। शिलापट्ट में मन्दिर जीर्णोद्धार का इतिहास है। मन्दिर विशाल है। यहाँ पहले दस दिन ब्रह्मोत्सव होता था। यह मन्दिर Archialogical Department के हाथ में है। वेदारण्यं स्वस्तिक तम्बाकू वालों की तरफ से अच्छे ढंग से जीर्णोद्धार हो गया है। अभी दो साल के पहले पंच कल्याण प्रतिष्ठा भी हो चुकी है। मन्दिर सुरक्षित हो गया है।

अमणकुडि: अमण का अर्थ है निर्ग्रन्थ। इस नाम से ही पता चलता है कि यहाँ प्राचीन काल में जैन लोग रहते थे। यहाँ राजराजेश्वर मन्दिर का शासन है। उसमें इन सब बातों का विवरण है[२]।

तंजाऊर जिले में जो शासन मिलते हैं उनसे जाना जाता है कि बहुत सी जगह जैन लोग निवास करते थे। सब जगह "पल्लिचन्द" के नाम से दान का माहात्म्य बतलाया गया है[३]। काल दोष के कारण सद्धर्म, जो अहिंसामय धर्म है, उसका ह्रास हुआ। हिंसामय धर्म की अभिवृद्धि हुई। कलिकाल का दोष ही कहना चाहिये और क्या करें?

रामनाथपुरं जिला

कोविलंकुलं: यह अरुप्प कोट्टै तालुके में है। यहाँ के एक मन्दिर के खण्डहर में कुछ शासन हैं। यह त्रिभुवन चक्रवर्ती कुलोत्तुंगदेव (चोल) के ४८ वें वर्ष में लिखे हुए

---

१. Tan. Dist. Gazetteer Vol. I, Top list of Antiquities, P-276. २. S.I.I. Vol. II Part II (No. 31-33-35). ३. S.I.I. Vol. II Part I (No. 4 P-47)

हैं। इनमें बताया गया है कि छत्रत्रयनाथ के लिये सोने के सामान, मण्डप और विमान, उनकी तांबे की यक्षिणी-मूर्तियाँ, मन्दिर बनवाने के लिये जमीन इस गाँव के जैन लोगों के द्वारा दी गई है[1]।

अनुमन्तक्कुडि: रामनाथपुरं के उत्तर में ४५ कि. मी. पर है। इस गाँव में मलवनाथ स्वामी नाम का जैन मन्दिर है। एक शासन यहाँ पर है। यह ई १५३५ का है। विजयनगर साम्राज्य के जमाने में लिखा गया है। इनमें "जिनेन्द्र मंगलं" गाँव का नाम है। यहाँ अब भी जैनों के २ घर हैं। एक जैन मन्दिर है। उनमें चार धातु की प्रतिमायें हैं[2]।

तिरुक्कलाक्कुडि: यह तिरुप्पतूर से २५ कि. मी पर है। यहाँ पहाड और मन्दिर है। यह पहले के जमाने में जैन मन्दिर था। अब शैव मन्दिर बना दिया गया है। फण के साथ पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति है[3]। इसके आसपास में जैन लोग थे, इसका आधार है —किडारं, पेरियपट्टिन, देविपट्टिनं, कोविलकुलं, मंजियूर, सेलवनूर आदि स्थानों की जैन मूर्तियाँ, जो अनाथ पडी हैं। इससे जान पडता है कि पहले यहाँ जैन लोग थे।

मथुरै जिला

प्राचीन काल में मथुरा में जैन धर्म महोन्नत स्थिति में था। मथुरा के आसपास जो पहाड़ और चट्टान हैं, उनमे ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ एक शासन इसापूर्व दो शताब्दी का लिखा हुआ मिलता है।

शैव पेरिय पुराणं के आधार से पाण्डिय देश मे जैन धर्म शोभायमान था। कून पाण्डियन नेडुमारन जैन धर्मानुयायी था। उस समय "ज्ञानसंबन्ध" राजा को रानी द्वारा शैव बना लिया गया था जिसके कारण से हजारों जैन साधु सूली पर चढ़ा दिये गये थे।

ज्ञानसबन्ध के समय में जैन धर्म का ह्रास हुआ। परन्तु सर्वथा नष्ट नही हुआ। यहाँ आसपास के पहाड़ो में साधु (जैन) गण तप करते थे। वे आठ पहाड़ हैं। इन पहाड़ पर आठ हजार मुनि लोग रहते थे। उन सबको सूली पर चढ़ाकर मार दिया था। यह शैवपेरियपुराणं स्वयं बतलाता हैं। जैसे–

"एण्णेरुकुन्द्रत्तु एण्णायिरवरूं एरिनारकल्'

–पेरियपुराण

इसका मतलब है —आठ पहाड़ों के आठ हजार मुनि लोग सूली पर चढ़े।

अब इन पहाड़ों के बारे में विचार करेंगे।

(१) यानै मलै: तमिल भाषा में पहाड़ को मलै कहते हैं। यानै– हाथी, "यानै

1. 396, 397 of 1914. 2. Top list of Antiq 298.
3. S.I.E.P Rep. 1936-37, P-59.

मलै" माने हाथी पहाड़। यह मथुरै के पास ९ कि. मी. पर है। यह जैन साधुओं के आठ पहाड़ों में से एक है।

इस पहाड़ में गुफा और ब्राह्मी लिपि का शासन है। लिपि अनुसंधान वालों का कहना यह है कि ये दो हजार साल पहले का है। इस गुफा में श्रमण साधुगण रहते थे। बाद में जैन मुनिराजों को भगा कर यहाँ एक वैष्णव मन्दिर बनवा दिया गया है। अब भी वह वैष्णव मन्दिर मौजूद है। इस मन्दिर के शासन से पता चलता है कि यह मन्दिर ई. ७७० में बनवाया गया है। एक शासन संस्कृत में है। दूसरा पुरानी तमिल भाषा में है[१]।

वैष्णव लोग जैन-बौद्ध मन्दिरों को ले लेते और वहाँ वैष्णव मन्दिर बनवाते थे। यहाँ भी यहीं हुआ। परन्तु इसकी एक कथा जोड दी गयी। वह यह है कि श्रमण लोगो ने अपनी मन्त्र शक्ति के द्वारा मथुरा नगरी को नाश करने के लिए हाथी भेजे। शिव ने उसे बाण के द्वारा मार डाला। वह हाथी पहाड़ के रूप में बच गया। वही आजकल का यानैमलै (हाथी पहाड़) है। इस तरह कपोल कल्पित कथाओं को बनाकर जोड दिया था। उसके भक्त उसे सच मानने के लिये तैयार बैठे हैं। फिर क्या? सच झूठ और झूठ सच बन जाता है। मत या धर्ममोह के कारण लोग अन्धविश्वासी जो होते हैं।

(२) **नागमलै**: यह भी मथुरा के पास का पहाड़ है। इसका रूप साँप के समान होने से इसे नागमलै (साँप पहाड़) कहते हैं। इस पहाड़ पर भी श्रमण साधुगण रहा करते थे। बाद में हिन्दू लोगों ने श्रमण साधुओं को भगा दिया था। इसके लिये भी एक झूठी कथा तैयार कर ली गयी थी। वह है —श्रमण लोगों ने मथुरा नगरी को खत्म करने के वास्ते अपनी मन्त्र शक्ति के द्वारा बड़े भारी साँप को भेजा। शिवजी ने अपने बाण से उसे मार डाला। वही साँप, पत्थर के रूप में वहाँ बैठ गया है। इसके अलावा और भी कुछ कथायें जोड दी गई हैं।

इस नागमलै पर चढ़ने की सीढ़ियाँ हैं। चढ़ाई में एक छोटा-सा मन्दिर है। उसमें एक छोटी-सी जिन प्रतिमा है। क्षेत्रपाल, कूष्मांण्डिनी और पद्मावती प्रतिमायें भी हैं इन सभी को अजैन लोग अन्य नामों से पूजते हैं। इसके ऊपर चढ़ने के बाद एक जिन बिंब है। पर्वत के शिलाखण्ड में मनोहर आठ प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं। बायीं ओर पहले पहल खड्गासन गोमटेश्वर भगवान हैं। तद्नन्तर फणासहित ४ खड्गासन प्रतिमायें हैं। बीच में पद्मासन महावीर प्रभु भगवान हैं। और दो पद्मासन प्रतिमायें भी हैं। उनमें एक को खण्डित कर दिया गया है। इनके नीचे शीतल जलधारा प्रवाहित है। उसके ऊपर जाने पर मन्दिर का भग्नावशेष है।

इससे आगे खण्डित मानस्तम्भ है। जिनालय का चिन्ह है। पर्वत के पीछे की ओर एक चट्टान के नीचे छोटी गुफा है। उसमें तीन जिन प्रतिमायें हैं। दोनों ओर शासन देवता हैं। गुफा के द्वार पर चट्टान में पद्मासन महावीर स्वामी विराजमान हैं। यह मूर्ति

---

१. EPI Report 1907, Page 60-61

अष्टप्रातिहार्य सहित है। पर्वत के ऊपर चढ़कर देखने से चारों ओर सुन्दर नयनाभिराम दृश्य दिखाई देते हैं। अनेकों विदेशी लोग भी आते हैं। पीछे से चढ़ने के लिये कच्ची सडक है।

(३) **इडपगिरि**: इसे सोलै मलै भी कहते है। "परिपाडल" नाम के ग्रन्थ के अन्दर इसके बारे में बताया गया है। यानैमलै के समान यह पहाड़ भी वैष्णवों का स्थल बन गया है। यानैमलै के सदृश यहाँ भी गुफा और ब्राह्मी लिपि का शिलालेख है। प्राचीन काल में यहाँ जैन साधुगण निवास करते थे[१]। वृषभ का परिमार्जित रूप "इडप" बना है। वास्तव में यह वृषभगिरि अर्थात् जैनों का वृषभनाथ पहाड़ था। यहाँ से भी जैन धार्मिक साधु महात्माओं को भगा दिया गया था। इस पहाड़ के बारे में भी झूठी कथा तैयार कर ली गई थी।

(४) **पशुमलै**: यह पहाड़ भी मथुरा के पास है। श्रमणों द्वारा भेजी गई मायामयी गाय को, सोम्मनाथ (शिव) के वृषभ ने मार दिया था। इसलिये वह "पशु-याने गाय" यहाँ पत्थर के रूप में बैठ गयी। हर एक बात के लिये शिवजी की वकालत ली जाती है। उन लोगों की कथा का सारांश यह है कि श्रमणों को मारने के लिये, शैव धर्म की रक्षा के लिये, साक्षात शिवजी प्रत्यक्ष होकर काम करते थे। जब कि करते तो ये लोग थे, शिवजी स्वयं नहीं।

(५) **मेत्तुपट्टीमलै**: यह मथुरै से तीन कि. मी. पर है। यहाँ मूर्तियाँ नहीं हैं। २० शैयायें हैं। एक लम्बी गुफा है। उसमें साधुओं के शयन के लिये शयनागार हैं। यहाँ भी श्रमण साधुगण रहकर तप किया करते थे।

(६) **करलीपट्टीमलै**: यह नागमलै के पश्चिम में ५ कि. मी. पर है। चट्टान पर दो प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं। महावीर स्वामी की एक पद्मासन प्रतिमा है। चालीस शय्यायें है। एक विशाल गुफा है और एक छोटी गुफा है जो सुन्दर चट्टान पर बनायी हुई है। यहाँ मुनिराज आसीन होते होंगे।

(७) **तिरुप्परंकुन्ट्रं**: यह मथुरा के पास का पहाड़ है। इस पहाड़ में श्रमण राजाओं की गुफायें, शय्यायें तथा उनके दर्शनार्थ जिनबिम्ब और ब्राह्मी शिलालेख हैं[२]। यहाँ पर शय्यायें कम नहीं है करीब ८० हैं। जिन मन्दिर को तोड़कर काशी शिव का मन्दिर बना लिया गया है। २५०० फुट लम्बी चट्टान में २ जिन प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं। इसके पास एक छोटा मन्दिर है। उसके पीछे चट्टान में जिन प्रतिमायें हैं। कुछ भग्नावशेष भी पडे हैं। इसकी तलहटी में पानी भरा रहता है। चारों ओर हरियाली दीखती है। सर्वत्र शिलासन हैं। शायद मुनिराजों के बैठने के लिए हैं। पीछे की ओर सैकड़ों गुफायें हैं, जिनमें कई सौ शय्यायें है। दुर्भाग्य से वहाँ जाने का रास्ता वर्तमान में ठीक नहीं है।

(८) **सिद्धरमलै**: इस नाम से पता चलता है कि श्रमण साधुगण यहाँ रहते थे। इसमें गुफायें और पत्थर की शय्यायें हैं[३]। यहाँ सातसमुद्र नाम का एक जलाशय है।

---
१. E.P.I.- Report-1910, P-8. २. Indian Antiquary Vol. XXII, Page-67.
३. Arch Report S. circle 1910-1911, P-50-51

इसको मेट्टुपट्टी पहाड़ भी कहते हैं।

समणमलै: यह मथुरै से १८ कि. मी पर है। यहाँ का पहाड़ पूर्व-पश्चिम के रूप में है। इस पहाड़ पर इधर-उधर सब जगह तीर्थकरों की प्रतिमायें बनी हुई हैं। इसका अपरनाम अमणमलै है। तमिल भाषा में निर्वाण के इच्छुक साधु को अमण कहते हैं। अमण कहें या श्रमण कहें, दोनों एक ही हैं। इसके पास आलंपट्टि और मुत्तुपट्टी नाम के दो गाँव हैं। इनके पास के पहाड़ पर पश्चिम की ओर "पंचवर पडुक्कै" पाँच लोकों की शय्या नाम का स्थान है। यहाँ की चट्टान में पत्थर की शय्यायें खोदी हुई हैं। ये साधु महात्माओं के लिये रही होंगी। यह जगह गुफा के समान है। यहाँ पर ब्राह्मी लिपि में लिखा शासन है। यह ई. के पहले का है। इन शय्याओं के पास एक पीठ पर जिन भगवान की प्रतिमा खोदी हुई है। चट्टान के पश्चिम में दो प्रतिमायें बनी हुई हैं। उसके नीचे तमिल शासन है। यह ई. दसवीं सदी का मालूम पड़ता है।

इस समण पहाड़ के दक्षिण-पश्चिम की ओर एक गुफा है। इसके बायीं ओर चट्टान पर तीर्थंकर भगवान की प्रतिमा बनी हुई है। इस प्रतिमा के नीचे तमिल शासन है। वह ई. दसवीं सदी का है। गुफा के अन्दर चन्द्राकार चट्टान पर पाँच मूर्तियाँ हैं। एक शासनदेवी की है। दूसरी ब्रह्मदेवयक्ष की है। इसके बगल में छत्रत्रय के साथ तीन तीर्थंकर प्रतिमायें हैं। इसके नीचे तमिल ई दसवीं सदी का शासन है।

सेट्टिपोडुवु गाँव के पूर्व में समणमलै पर पेच्चिपलं नाम का स्थान है। यहाँ के छोटे पहाड़ पर पंक्ति के रूप में तीर्थंकर भगवान की प्रतिमायें बनी हुई हैं। इसके नीचे तमिल शासन हैं। ये ई. आठवीं या नौवीं सदी के हैं।

इस तरह अलग-अलग व्यक्तियों से प्रतिमायें बनवायी गई हैं। उनके पूरे नाम आदि लिखने से ग्रन्थ बढ़ जायेगा।

उत्तमपालैयम्: मथुरै जिले में इस गाँव के उत्तर-पश्चिम पर तीन फर्लांग दूर एक बड़ी चट्टान है। उस पर तीर्थंकर भगवान की २१ प्रतिमायें बनी हुई हैं। इसके नीचे निर्माताओ के नाम भी अंकित हैं। इसके पास में एक जलाशय है। लोग उसमें से पानी भर ले जाते हैं। पानी स्वच्छ एवं निर्मल है।

तिरुनेलवेली जिला

एरुवाडि: यह नागुनेरि तालुके में है। इस गाँव की चट्टान में तीर्थंकर की प्रतिमायें हैं। इसके नीचे का शासन बतलाता है कि अच्चनन्दि महाराज ने इन प्रतिमाओं को बनवाया है[1]। दूसरा शासन यह बतलाता है कि उन भगवानों के लिये जमीन दान में दी गई थी। उक्त शासन में उसका विवरण उपलब्ध है[2]।

अरुगमंगलं: वैगुण्ड तालुका मारमंगलं गाँव का शासन अरुगमंगलं का विवरण देता है। अरुग का अर्थ है "अरहंत"। इससे पता चलता है कि भगवान अरहन्त देव

1. 603 of 1915. 2. EP-Rep-1916 Pagr-112-113.

के नाम से यह गाँव रहा होगा। आज भी इसका नाम अरुगमंगलं है। इससे जान पडता है कि पहले यहाँ जैन लोग रहते थे। तिरुच्चेन्दूर तालुके में आदिनाथपुरं नाम का गाँव है। आदिनाथ वृषभदेव का नाम है। गाँव का नाम भगवान के नाम पर है। इससे मालूम पडता है कि यहाँ जैन लोग अवश्य रहते थे। इसीलिये आज तक गाँव का नाम भगवान के नाम से प्रसिद्ध है।

कलुगुमलै: यह गाँव ऐयनारकोयिल के नाम से पुकारा जाता है। यह कोविलपट्टि तालुके में है। संकरनयिनार कोयिल के पूर्व में, १५ कि. मी. पर है। यहाँ के पहाड़ की चट्टान पर सैकड़ों जिन प्रतिमायें है। सैकड़ों शासन भी हैं[१]। पुराने जमाने में यहाँ और आसपास मे जैन लोग अत्यधिक समृद्धि के साथ रहते होंगे। इस पहाड पर सैकड़ों साधुवृन्द अपने तप-ध्यान में लीन रहे होंगे। यह स्थान जैन एव जैन मुनियो के लिये केन्द्र था। इन शासनों में महात्माओं के नाम गिनाये गये हैं।

जैसे कि– गुणसागर भट्टारक के शिष्य सात्तदेव द्वारा बनवायी गयी मूर्ति श्री वर्धमान के शिष्य श्रीनन्दीशान्ति से बनवायी गयी मूर्ति। कनकवीर महानुभाव से बनवायी गयी प्रतिमा। शान्तिसेन महानुभाव से बनवायी गयी प्रतिमा आदि .....। इसके बारें मे विशेष रूप से जानना हो तो South Indian Inscriptions ग्रन्थ मे देखना चाहिए।

पुराने जमाने में यहाँ जैन सिद्धान्त पढ़ाया जाता था। और एक शासन बतलाता है कि दान में यहाँ जमीन दी गयी थी। यहाँ की प्राकृतिक छटा अत्यन्त मनमोहन है। पर्वत की उपत्यका में एक मन्दिर है। यह गुफा को काटकर बनाया गया है। यहाँ के लोग अष्टान्हिका के समय रथोत्सव मनाते थे। यह जैन- परंपरा का प्रतीक है। पर्वत की तलहटी में १५-२० कुण्ड हैं जिनमे निर्मल जल भरा रहता है। कुछ ऊपर चढने पर जिन बिम्बों के दर्शन होने लगते हैं। यहाँ करीब २०० जिन प्रतिमायें हैं। यक्ष-यक्षिणियाँ भी यहाँ हैं।

गुफा के अन्दर अजैन लोगों ने मुरुगन कोयिल (अजैन मंन्दिर) बना रखा है। विशाल चट्टान के सामने वटवृक्ष है जिसकी यहाँ ठंडी छाया बनी रहती है। इसके सामने अजैनो के तीन मन्दिर हैं। सुना जाता है कि यहाँ बलि (जीव हिसा) दी जाती है। जीव रक्षा प्रचार सभा (मद्रास) के प्रयत्न से कहीं भी देवी-देवताओं को बलि (हिसा) नहीं चढा सकते हैं। विशेष बात यह है कि करीब दस साल के पहले आचार्य निर्मलसागर जी महाराज तमिलनाडु पधारे थे। वे सारे स्थानों पर गये थे। कोई भी स्थान बाकी नही बचा जहाँ आचार्य महाराज न गये हों। उनके कारण जोरदार अहिंसा प्रचार हुआ था। उन्होंने कलुगुमलै में चातुर्मास भी किया था। एक सौ साल से दिगंबर जैन मुनियों का विहार न होने के कारण हर जगह उनका विरोध होता था। फिर भी उन्होंने निर्भीकता के साथ सभी स्थानों और सभी गाँवों में विहार किया। करीब पाँच साल के पहले पूज्य विजयामती माताजी का भी विहार हुआ था। त्यागियों

---

१. EP. Rep.-1908, Page-57

का संचार होता रहे, तो जैन धर्म का प्रचार अवश्य होता रहेगा। इसमें कोई शक नहीं है।

वीरशिखामणी: यह शंकर नैनार कोयिलक्के के उत्तर पश्चिम में है। यहाँ की चट्टान में कंदरायें हैं। एक चन्द्राकार गुफा में दो चरण पादुकायें है। दूसरी कंदरा में कुछ प्रतिमायें बनी हुई हैं। यहाँ के लोग इन मूर्तियों को पंच पाण्डव कहते हैं[१]।

कुलत्तूर: ओट्टप्पिडार से २० कि मी पर है। यहाँ तीर्थंकर भगवान की मूर्तियाँ हैं। यहाँ के लोग इन मूर्तियों की पूजा करते हैं[२]।

मन्दिकुलं ओट्टपिडार से २२ कि. मी पर है। यहाँ एक जैन मूर्ति है[३]।

मुरंबन: ओट्टपिडार से सयत्तादु के रास्ते मे एक जैन मूर्ति है। गाँव वाले इमे "वमणर" कहते है[४]।

नागलापुर: ओट्टपिडार से ३० कि. मी. पर है यहाँ के खेत में एक जिन मूर्ति थी। इसे सरकार ने ले जाकर म्यूजियम में रखा है[५]।

कायल: सिरी वैगुण्ड से १५ कि. मी. पर है। तामिरपरनि नदी के किनारे पर स्थित है। यहाँ जिन भगवान की कई मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों में से एक को धोबी अपने कपडे धोने के काम मे उपयोग करता है[६]।

सिरीवैगुण्डम्: इस गाँव के पास आदिच्च नल्लूर है। वहाँ एक पहाड़ पर तीर्थंकर मूर्ति है[७]।

वल्लियूर: तिरुनेलवेली मे कन्याकुमारी जाने के रास्ते पर है। यहाँ पर जैन मन्दिर था। उसे तोड़कर उसके पत्थरों को लाकर यहाँ के सरोवर की सीढी बना दी गयी हैं। एक जिनमूर्ति थी। पता नही अब वह वहाँ है या नहीं[८]।

(कोंगुलाडु) सेलं, कोयंपुत्तूर जिले

सेलं: यह जिले का प्रधान शहर है। यहाँ की नदी के किनारे एक जिनमूर्ति थी। दूसरी मूर्ति कलेक्टर के घर के और चर्च के बीच में थी[९]। यहाँ एक नवीन मन्दिर है जो कि उत्तर हिन्दुस्तान से आये हुए मारवाड़ी दिगबर जैनों ने बनाया है। मूलनायक भगवान महावीर स्वामी हैं।

मारवाड़ी दिगंबर जैनों के १५ घर हैं। सभी सम्पन्न हैं और धर्म श्रद्धालु भी हैं।

अधमनकोट्टै: यह धर्मपुरी से ८ कि. मी. पर है। यहाँ दो जिनमन्दिर हैं। इस मन्दिर के पास एक जिन भगवान की मूर्ति भी है।

---

१. Top list P-306. २. Top list P-307. ३. Top list P-307. ४. Top list P-308. ५. Top list P-308. ६. Ind. Anti Vol. VI Top list P-312. ७. Top list P-312. ८. Top list P-315. ९. I.A.S.B. XIX P-76.

धर्मपुरी यह तालुके का प्रधान शहर है। इसका पुराना नाम तगडूर है। यहाँ मल्लिकार्जुन नाम का मन्दिर है। यह मल्लिनाथ भगवान के नाम का विकृत रूप है। रामक्का सरोवर की जिनमूर्तियाँ बतलाती हैं कि एक जमाने में यह जैनों का आराध्य स्थल था। मन्दिर के खम्भे में महेन्द्रादिराज नोलम्बन का शकसंवत् में लिखा हुआ शासन है। वह बतलाता है कि "निधियण्णन" नाम के व्यक्ति ने राजा से एक गाँव खरीद कर उक्त मन्दिर के रक्षार्थ, मूलसंघ सेनान्वय के कनकसेन सिद्धान्त भट्टारक को दान में दिया था[१]। दूसरा शासन है कि लोगैया व्यक्ति ने "पुरुकूर" गाँव को मन्दिर के लिये दान में दिया था[२]।

पेरून्दुरै : ईरोडुनगर से १५ कि मी पर है। जैन "विजयमंगलं" के पास है। यहाँ खण्डहर के रूप में एक जैन मन्दिर है। यह भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर था। यहाँ कई जिन प्रतिमायें है[३]।

विजयमंगलं : ईरोडु तालुके में विजयमंगलं रेलवे स्टेशन से उत्तर में ५ कि मी पर पुतूर गाँव में एक जैन मन्दिर है। मूलनायक आदिनाथ भगवान हैं। यहाँ कई मूर्तियाँ हैं। "विजयमंगल" में चन्द्रप्रभु तीर्थंकर का जिनालय है। पैरुंकयै नाम के तमिल काव्य के रचयिता कोंगुवेलिर का जन्मस्थान यही था। सिलप्पधिकारं तमिल काव्य के व्याख्याता "अडियार्कुनललार" का जन्मस्थान यही बताया जाता है।

कोंगुवेलीर एक राजा था। संस्कृत और तमिल भाषा का प्रख्यात विद्वान था। वह पेरुंकथै काव्य का कर्ता भी था। विद्वानों का भारी आदर करता था। इसलिये उक्त मन्दिर मे पाँच विद्वानों की मूर्ति बनवाकर स्थापित की थी। आज तक वे मूर्तियाँ मौजूद हैं। इस राजा के बारे में विदेशी विद्वान "टूभ्रिसन" का कहना है कि राजा ने तमिल विद्वानों का संघ (The Idols of The Tamil king) स्थापित किया था। यही तमिल सघ का स्थान था। इसके राजमहल की नौकरानी भी तमिल भाषा की विदुषी थी।

दूसरे संघवालों ने राजा की विद्वत्ता की परीक्षा करने के लिये कविता लिख कर भेजी थी। उस नौकरानी का जवाब यह था कि इसके लिये राजा के पास क्यो जाना हैं? मैं अब स्वय बता दूँगी, कह कर, उसका फौरन जवाब दे दिया था। राजघराने में विद्वत्ता की इतनी महिमा थी।

चामुण्डराजा की बहन "पुलप्पै" नाम की देवी इस मन्दिर में समाधि सल्लेखना के द्वारा आत्मसाधना कर स्वर्ग सिधारी थी।

कोंगुमण्डलशतकं नाम का ग्रन्थ इन सभी बातों का खुलासा करता है।

इस गाँव के पास एक छोटा सा पहाड है। उसमें गुफा और शासन है। यह ब्राह्मी लिपि में है। १८०० वर्ष पहले का है।

इसके पास "तिंगलूर" में श्री पुष्पदन्त भगवान का मन्दिर है। "पूंतुरै" गाँव में भी पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर है। पद्मावती देवी की मूर्ति है। "वेल्लेडु" गाँव के पास

---

१. EP Ind. Vol. X p-54-70, 304 of 1901. २. 305 of 1901.
३. Top list of P-217 Madras Journal for 1918 p-152.

खेत में आदिनाथ भगवान का मन्दिर है जिसमें यहाँ के लोग भक्तिभावना के साथ पूजा किया करते हैं।

इन सभी आधारों से पता चलता है कि यह स्थान जैनधर्म का केन्द्र रहा था। आज वहाँ जैन पुजारी का एक ही घर है। सेलम के श्वेताम्बर लोगों ने इन मन्दिरों को हडपने की कोशिश की थी। मद्रास के दिगंबर लोगों ने रोका और "एण्डोरमेन्ट" में शामिल करा दिया। मन्दिर के जीर्णोद्धार की बड़ी आवश्यकता है।

आनैमलै: यह पोल्लच्चि से दक्षिण-पश्चिम में १२ कि. मी. पर है। इस गाँवके पश्चिम में समणदुर्ग नाम का एक छोटा सा पहाड़ है। यह समण याने श्रमण नाम ही जैनत्व के अस्तित्व को बतलाता है। अर्थात् यहाँ पर जैन लोग निवास करते थे। यहाँ के यानैमलैक्काडु नाम के स्थान पर एक जिन मन्दिर है[१]।

वेल्लोडु: ऊपर कहे गये पून्दुरै से ७ कि. मी. पर यह गाँव है। इस गाँव में आदिनाथ भगवान का मन्दिर है।

तिंगलूर: यह गाँव ईरोडु तालुके में है। यहाँ पर पुष्पदन्त तीर्थंकर भगवान का मन्दिर है[२]।

तिरुमूर्तिमलै: यह उडुमलैपट्टै से १५ कि. मी पर है। यह यानैमलै के नीचे का गाँव है। यहाँ के झरने के पास ३० फुट ऊँची एक चट्टान है। इसमें तीर्थंकर भगवान की मूर्ति है। शासनदेवता हैं। पहले इसका अमण समुत्तिरं नाम था। अमण, समण ये दोनों (श्रमणों) जैनों के नाम है।

सीनापुर : ईरोडु तालुके में है। यहाँ आदिनाथ भगवान का मन्दिर है। इसका पुराना नाम जनकापुरं था। कहा जाता है कि नन्नूल व्याकरण के कर्ता भवणन्दि महाराज का जन्मस्थान है। कुछ लोग इस बात को स्वीकार नहीं करते। अर्थात् उनका जन्म स्थान यह नहीं, दूसरा है।

मेट्टुप्पुत्तूर : यह गाँव ईरोडु तालुके में है। यहाँ पर एक जैन मन्दिर है[3]।

महाबलिपुर : यह जैन स्थल नहीं है। यहाँ चट्टानों पर शिल्प कला के कई नमूने हैं। उनमें एक, अजित तीर्थंकर पुराण में कहे गये सगर चक्रवर्ती की कथा को प्रदर्शित करता है। इन उकेरी हुई मूर्तियों को आजकल "अर्जुनतप" कहते हैं। गलत रूप में कहा जाता है। वास्तविक बात यह है कि सगरराजा के पुत्रगण कैलाश पर्वत को घेर लेते हैं। उसके चारों ओर खाई बनाकर उसमें गंगा नदी के प्रवाह को प्रवेश कराते हैं जिसके प्रवाह से देश-नगर नाश होने लगते हैं। भगीरथ उस प्रवाह को समुद्र में मिला देता है। इस कथा को बड़े सुन्दर ढंग से उस चट्टान पर चित्रित किया गया है। पल्लवराजा के जमाने में इसका निर्माण हुआ था। आजकल यह स्थान पर्यटन क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। सालाना लाखों लोग इसे देखने आते हैं। यह स्थान मद्रास से करीब ८५ कि. मी. पर है। चित्रकला के नमूने देखने लायक हैं।

---

१. Top list P-221. २. 614 of 1905. ३. Arch. Rep. 1911-12P-39

पाण्डिचेरी : यहाँ मारवाड़ी दिगंबर जैनोंके करीब ८० घर हैं। दो दिगबर जैन मन्दिर हैं। नवीन पंचायती मन्दिर बन कर प्रतिष्ठा भी हो चुकी है। स्थानीय दिगम्बर जैन लोगों के घर करीब दस हैं।

कडलूर (ओटी) : प्राचीन नगर है। अब ५ घर हैं। श्री आदिनाथ भगवान का जिनालय है। यह प्राचीन है। पहले यहाँ जैनियों पर बहुत अत्याचार हुए थे। हजारों जैन साधु-साध्वियों को कत्ल कर दिया गया था। पुराने समय में इसका नाम पाटलिपुत्र था। यह जैन धर्म का प्रधान केन्द्र था। यहीं से जैन धर्म का प्रचार होता था। इस मन्दिर में कई धातु की मूर्तियाँ हैं। चाँदी की प्रतिमायें भी हैं। जिनालय शिखरबद्ध है। किन्तु हालत ठीक नहीं है। विजयामती माता का यहाँ चातुर्मास हुआ था।

पण्रुट्टि : यह भी पुरातन नगर है। पहले यहाँ भी जैन रहे होंगे। स्थानीय जैनों के घर नहीं है। परन्तु दिगंबर मारवाडी जैनों के ५ घर हैं। यहाँ एक चैत्यालय की स्थापना की गई। जिनालय बनवाए जाने की संभावना है।

कुंभकोणं : यह बहुत बड़ा शहर है। यहाँ स्थानीय दिगंबर जैनों के घर करीब १२ हैं। यहाँ एक जिनमन्दिर है। मन्दिर छोटा है। जीर्णोद्धार की आवश्यकता है। पहले यहाँ के जैन लोग संपन्न थे। परन्तु अब उतने नहीं हैं। मन्दिर के मूलनायक चन्द्रप्रभु भगवान हैं। मन्दिर के पीछे नारियल का बगीचा है। धातु की करीब ४० मूर्तियाँ हैं। शासनदेवताओं की मूर्तियाँ भी हैं। यहाँ के लोग धर्म के प्रति अच्छे श्रद्धालु है।

□ □

इस भांति, इस ग्रन्थ में लगभग दो सौ स्थानों का विवरण दिया गया है। प्राचीन काल में यहाँ जैन धर्म के अनुयायीगण, जैन मन्दिर, जैन तीर्थ और साधु-साध्वियों की स्थिति का विवेचन है। उनकी परिस्थितियाँ, उत्थान-पतन और संघर्ष आदि की संक्षिप्त जानकारी भी दी गई है।

इससे पाठक गण समझ सकते हैं कि एक जमाने में तमिलनाडु भर में जैन धर्म अपना झण्डा फहराता था। वह उसका युग था, जो अब बीत चुका है। वह अतीत हो गया है।

ऐसी परिस्थिति में भी वहाँ जैन लोग रहते हैं, मन्दिर हैं, धर्म का प्रचार है, साधु-साध्वियों का आहार-विहार होता रहता है, फिर भी यह स्मरण रखना है कि धर्म के उत्थान एवं पतन की ओर विवेक के साथ जाग्रति की जरूरत है साथ ही एकता भी बड़ी बात है।

□ □

(७) आचार्य-परंपरा

आचार्य कुन्दकुन्द

समस्त तीर्थंकरों ने जन्म लेकर केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद अपने दिव्यज्ञान से जैनधर्म का उपदेश दिया। तेईस तीर्थंकरों के मोक्ष चले जाने के बाद चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर हुए। उनके जमाने के बाद श्रुतज्ञानी, अंगधारीगण धर्म की देशना करते आये। सारे तीर्थंकर उत्तर भारत में हुए परंतु आचार्यगण दक्षिण के रहें। उनमें महान आचार्य पुष्पदन्त - भूतबलि, दोनों आचार्योंने सर्नश्रेष्ठ षट्खण्डागम की रचना की थी जिससे जैनधर्म एवं तत्व की रक्षा हुई।

आचार्य कुन्दकुन्द भी जैनधर्म की रक्षा में अग्रसर रहे।

दिगम्बर जैन समाज के महनीय आचार्यों में कुन्दकुन्द का स्थान कितना ऊँचा है इसे कौन नहीं जानता? इनके महत्त्व के बारे में जैन समाज आज तक गुणगान करता आ रहा है। जैसें-

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोस्तु मंगलम्॥

अर्थात् भगवान महावीर पहला मंगल है। दूसरा मंगल गौतम गणधर है। तीसरा मंगल कुन्दकुन्दाचार्य है और चौथा मंगल जैनधर्म है।

परंतु ऐसे महान आचार्यों के जन्मस्थान एवं काल आदि के बारें में अवगत होना कौन नहीं चाहेगा? क्योंकि जैन साहित्य एवं तत्व की उन्नति के लिये कुन्दकुन्दाचार्य की सेवा सर्वश्रेष्ठ कही जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। उन्होंने अपनी अतुलनीय प्रतिभासे 'समयसार', 'प्रवचनसार', 'पंचास्तिकाय' आदि अत्युत्तम ग्रंथों की रचना की जिन्हें तत्वज्ञानियों ने अपने गले का हार बनाया। उससे सम्यक्ज्ञानी पुरुष अपने को

आत्मोन्नति के मार्गपर लगाने में अग्रसर हुए। इसके अलावा उन्होंने जैनधर्म की ख्याति के लिये अपने जीवन का पूर्ण समर्पण कर दिया। अतः समस्त विश्व का जैन समाज कुन्दकुन्दाचार्य का सदा ऋणी रहेगा।

आचार्य कुन्दकुन्द का पहला नाम पद्मनंदि था और इनका जन्मस्थान कौण्ड-कुन्दपुर है। इस महान आचार्य के निवास से वह स्थान लोकप्रसिद्ध एवं सर्वप्रिय बना। उसीसे इनका नाम भी कुन्दकुन्द पड गया। अर्थात् कुन्द-कुन्द नाम के गाँव में जन्म लेने और रहने के कारण ये उसीके नाम से प्रसिद्ध हुए। आचार्य इन्द्रनन्दी के 'श्रुतावतार' नामक ग्रन्थ में पद्मनन्दी का निवासस्थान कुन्दकुन्दपुर कहा गया है। इस बात का एक शिलालेख भी समर्थन करता है। मैसूर राज्य के हासन जिले के अन्तर्गत बस्तिहल्ली में स्थित शिलालेख में यह बात लिखी हुई हैं कि "सर्वश्रेष्ठ महान आचार्य कुन्दकुन्द के ज्ञानभण्डार, शान्तस्वरूप और ज्योतिर्मय दिव्य शरीर को देख कर देवतागण भी उनकी प्रशंसा करते हैं।" ऐसे दिव्य ज्ञानमय आचार्य कुन्दकुन्द रहे।

श्रवणबेलगोल में स्थित मल्लिपेणाचार्य के शिलालेख पर इन आचार्य का जन्मस्थान कुन्द-कुन्द या कोण्ड-कोण्ड लिखा गया हैं। इन आधारों के जरिये हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कोण्ड-कोण्ड किसी स्थान का नाम था, उसीसे वह आचार्य पद्मनन्दि आचार्य कुन्दकुन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस बात पर हम आगे भी विचार करेंगे।

आन्ध्र राज्य (पहले तमिलनाडु) के अन्तर्गत अनन्तपुर जिले में कुन्दकुन्द नाम का एक गाँव हैं। यह गाँव गुण्टकल से चार मील की दूरी पर है। यह स्थान पुराने जमाने में तमिलनाडु के अन्तर्गत था। बाद में वह आन्ध्र राज्य में सम्मिलित होकर कोण्ड-कुन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ। फिर भी वहाँ के निवासी कुन्दकुन्दाचार्य का जन्मस्थान बताकर उसका जो गुणगान करते हैं वही हमें आनन्दसागर में डुबो देता है। इसके अलावा वहाँ के लोग करीब दो हजार सालों से महनीय कुन्दकुन्दाचार्य को श्रद्धा भक्ति के साथ पूजते आ रहे हैं। वह हमें और भी उक्त विषय पर दृढ बना देता है। आज भी वहाँ के निवासी अपनी सन्तति को कुन्दकुन्द के नाम से अंकित करना अपना अहोभाग्य समझते हैं।

उक्त स्थान पर पुरातन शिलालेख तथा तीर्थंकरों की अनेक प्रतिमायें मौजूद हैं। कोण्ड-कोण्ड या कुन्दकुन्द गाँव के उत्तर भाग में करीब आधे मील की दूरी पर "रससिद्धल गुट्टा" नाम का एक छोटासा पर्वत है। उस पर बहुत से पुरातन शिलालेख भरे पडे हैं। रससिद्धल गुट्टा नाम के तेलगू शब्द का अर्थ है रसायन बनानेवालों का (Al-chemist) पहाड। यह नाम बडे मजेदार अर्थ को बतलाता हैं। इस पहाड के ऊपर एक विशाल मण्डप है। उसमें खड्गासनवाली तीर्थंकरों की दो मनोज्ञ प्रतिमायें छत्रत्रयसहित विराजमान हैं। उनकी ऊँचाई करीब ढाई फुट है। वहाँ के निवासी (ग्रामीण लोग) उन प्रतिमाओं को लोहे को सोना बनानेवाले सिद्धों की प्रतिमएँ बतलाते हैं।

इस मण्डप के पीछे एक चट्टान पर कमल के ऊपर स्थित एक खड्गासन प्रतिमा हैं। दूसरी चट्टान पर कुछ मन्त्र खोदे हुए हैं। इस चट्टान के आसपास की जगह पर बहुत से शिलालेख हैं जो सातवी सदी के माने जाते हैं। इन शिलालोखों में कई जैन महात्माओं के बारे में जिक्र हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

महात्मा सिहनन्दी द्वारा पूजे जाते हैं। इसका मतलब यह हो सकता है कि आचार्य कुन्द-कुन्द सिंहनन्दी के गरु थें। दुसरा नागसेनदेव के निषिधि स्मारक (Nishidhi Memorial) के रूप में बनाया गया है।

वहाँ के कैलाप्रप्पगुद्दा नामक पहाड पर स्थित अन्य दो शिलालेख बहुत ही महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। उनमें से एक में "नालिगप्पि" नामक एक महिलाने अपने पति के स्मरणार्थ कुण्ड-कुण्ड तीर्थ में बनाये गये 'गद्दाजिनालय' मंदिर के लिये दी हुई जमीन आदि का उल्लेख हैं। दूसरे में चालुक्य राजवंशीय छठवें विक्रमादित्य के समयान्तर्गत "एक हजार चित्र वाडि" नामक एक विशाल जमीन के अधीश "जोयिमय्यावसारां" से दी हुई जमीन आदि का उल्लेख है।

प्रलेख से यह पता चलता है कि इस स्थान का नाम कुण्डकुण्ड था। दूसरा यह बतलाता है कि वह पहाड और गाँव आदि जैनों का पुण्य स्थान था।

वहाँ के गाँव में एक जैन मन्दिर है, जिसका नाम "आदिचेन्नगेश्वर" है। उसके सामने स्थित एक पत्थर के खम्भे पर एक शिलालेख और कुन्दकुन्दाचार्य की मूर्ति भी है। दुर्भाग्यवश, उस शिलालेख के कुछ अक्षर घिसे हुए है और टूट भी गये हैं। अतः उसका पूरा वाचन नही हो पाता। फिर भी वह एक जैन शिलालेख ही है, उसमें वहाँ की महिमा का वर्णन है। तथा उसका आरंभ जैन पद्धति के अनुसार हुआ है। यथा–

....संसार सागर को तैरने के लिये सच्चे जहाज जैसे अनेकान्त तत्व के बल से परसमयवादियों को पराजित कर विजयध्वज फहराये हुए पद्मनन्दि भट्टारक महाराज (कुन्दकुन्द) का जन्मस्थान होने के कारण यह गाँव लोकप्रसिद्ध एवं ख्याति प्राप्त हुआ है। उसमें बहुत विख्यात गणों का जिक्र भी है। पहले बतायें गये "बस्तिहल्लि" शिलालेख के आधार से कुन्दकुन्द का प्रारंभिक नाम "पद्मनंदि" था और वे गणों के नायक थें, यह बात निश्चित हो जाती है। इसके बाद उक्त शिलालेख तद्ग्राम संबंधी विवरण बतलाता है। आगे चालुक्य राजा का राज्यकाल आदि घिस गया है। फिर भी अनुमान किया जाता है कि यह लेख ग्यारहवीं शताब्दी का हो सकता हैं।

इन शिलालोखों से दो बातें निश्चित हो जाती है। पहली यह कि कुन्दकुन्द का दूसरा नाम पद्मनन्दि था। दूसरा यह है कि "कुण्ड कुन्डा" गाँव आचार्यजी का जन्मस्थान था और वह स्थान उक्त ग्राम ही है।

इससे आगे और भी कुछ सच्ची बातों का पता चलना है वह यह है कि "रससिद्दल गुद्दा" के पहाड पर श्री विद्यानन्द स्वामी का जिक्र करनेवाला लेख है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि वादी विद्यानन्दस्वामी ने कई स्थानों में जाकर अपनी दिव्य प्रतिभा के द्वारा जिनधर्म की विजयभेरी बजायी थी। इन बातों के काफी

प्रमाण मिलते हैं। अतः वे महान आचार्य इस "कुन्ड-कुन्डा" में भी पधारे होंगे।

उस गाँव के निवासियों से यह पता चलता है कि थोडे अर्से के पहले तक वहाँ जैन लोग रहा करते थे। धीरे धीरे कम हो गये। लेकिन अब वहाँ कोई भी जैन नहीं हैं।

हम अब तक की खोज से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "कुन्ड-कुन्डा" बहुत पुराने समय से लेकर अबतक जैनधर्म का केन्द्र होने के साथ ही समयसार आदि के रचयिता कुन्दकुन्द का जन्मस्थान भी था।

इस सिलसिलें में उक्त बात की पुष्टि के लिये शिलालेख के अन्दर और एक बात दिखाई देती है, वह यह है कि कुन्दकुन्दाचार्य ने प्राभृतत्रय की रचना पल्लववंशीय शिवकुमार महाराजा[1] की प्रार्थनासे ही की थी और इस राजाने आचार्यप्रवर को अपना गुरु मानकर भक्ति-श्रद्धा से पूजा था। यह बात हमें आश्चर्यचकित करने के साथ साथ आचार्यवर के जीवनस्थान को निःसंदेह स्वीकार करने में सहायता देती है। इसमें और एक खास बात समझने की है कि आचार्यश्री का जन्मस्थान तेलुगू प्रान्त (भूतपूर्व तमिल प्रान्त) होने पर भी सारा शिलालेख तमिल भाषा में ही है। तमिल भाषियों के कहे अनुसार द्राविड भाषा अलग रूप में न रहकर एक तमिलनाडु भाषा के रूप में रही हैं।

आचार्य काल : कुन्दकुन्द के काल के बारे में भिन्न भिन्न मत है। प्रो. चक्रवर्ती एव डा. हारनले का मत यह हैं कि कुन्दकुन्द का समय ई. पूर्व पहली शताब्दी का है। मुख्तार जी का अभिप्राय यह है कि वीरनिर्वाण सम्वत् ६०८ से ६९२ के मध्य का है। कुछ अन्य विद्वानों का विचार यह है कि उनका जन्म ई. पहली शताब्दी के ६४ वर्ष का है। परन्तु वे गुरुपीठ पर ई. १०८ में आसीन हुए इस तरह का भी एक मत है। कुछ भी हो, आचार्यजी का काल सभी लोग ई. पहली शताब्दी का मानते हैं। सोचने की बात यह है कि उनके जन्म के काल को न मान कर गुरुपीठ में आसीन होकर जैनधर्म की सेवा के काल को प्रधानरूप से मानते हो। बहुत करके उनका काल ई. पहली शताब्दी का माना जाता है।

विदेह क्षेत्र गमन की बात : आचार्य विदेह क्षेत्र गये और श्रीमन्धर भगवान के दिव्य उपदेश सुनकर आये। उसीके आधार से आचार्यजी ने जैनधर्म का प्रचार किया। इस तरह कहा जाता है। इसके विषय में आचार्य देवसेन ने (ई नौवी शती) दर्शनसार में लिखा है कि-

जई पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
णविसडड्तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति॥

अर्थात् पद्मनन्दिनाथ यदि सीमन्धर स्वामी द्वारा प्राप्त दिव्यज्ञान से बोध (उपदेश) न देते तो श्रमण मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते इस बात की जयसेनाचार्य ने भी पुष्टि की है। आचार्यों के वचन होने के कारण ही विश्वास किया जाता है। फिर भी कुछ लोग इस बात को स्वीकार नहीं करतें।

---

१. सी. म. ३ आ. पेज १०८

आचार्यजीके दिगम्बर-श्वेतांबर वाद-विवाद में विजय प्राप्ति के उल्लेख भी मिलते हैं।

कुन्दकुन्दगणी येनोर्जयन्तगिरिमस्तके।
सोऽवदात् वादिता ब्राह्मी पाषाण घटिता कलौ॥ (पाण्डवपुराण)

इसका मतलब है कि कलिकाल में भी आचार्य कुन्दकुन्द ने ऊर्जयन्तगिरि के ऊपर पाषाणनिर्मित ब्राह्मी मूर्ति को बुला दिया था। इस बात की शुभचन्द्राचार्य ने भी उक्त कथनद्वारा पुष्टि की है।

अतः आचार्य का ऊर्जयन्तगिरि पर श्वेतांबरों के साथ जो वादविवाद हुआ था उसमें जीतने के प्रमाण मिलते हैं। यह मान्य हो सकता है या नहीं, इसपर विद्वद्‌गण स्वयं निर्णय करें।

आचार्य के पाँच नाम थे। इस बात को विजयनगर -अभिलेख में भी बताया गया है कि–

आचार्य: कुन्दकुन्दाख्यो वक्रग्रीवो महामुनिः।
एलाचार्यो गृद्धपिच्छ इति तन्नाम पंचधा॥

इसका तात्पर्य यह है कि पद्मनन्दि, कुन्दकुन्द, वक्रग्रीव, एलाचार्य और गृद्धपिच्छ ये पॉच नाम कुन्दकुन्दाचार्य के बताये गये हैं। कुन्दकुन्द तमिलनाडु में एलाचार्य के नाम से प्रसिद्ध है।

ग्रन्थ रचना : आचार्य कुन्दकुन्द ने 'समयसार', 'प्रवचनसार', 'पंचास्तिकाय सार', 'नियममार', एवं पाहुडं आदि ८४ ग्रन्थों की रचना की थी। इनमें कुछ ग्रन्थ अप्राप्य हैं। इनकी रचनायें शौरसेनी प्राकृतभाषा में ज्यादा हैं। कुछ विद्वानों की दृष्टी में संस्कृत में लिखित पद्मनन्दी पच्चीसी इन्हीं की कही जाती है।

कुरल काव्य की बात : कुरल काव्य एलाचार्य और के द्वारा रचित है। इस तरह की बात तमिल प्रान्त में कही जाती हैं। विचार करने पर यह बात समझ में आती है कि कुरल काव्य के रचयिता जैनाचार्य ही होने चाहिये क्योंकि पहला जो भगवान का स्तोत्र है, वह सारा का सारा जैनत्व के साथ ही घटित होता है। जैसे कमल के ऊपर चलनेवाले, सर्वज्ञ, वीतराग, पंचेन्द्रिय- विजयी, धर्मचक्र के नायक, आठ गुणोंवाले आदि। बाकी के वर्णन में भी सूक्ष्म अहिंसा, मांसत्याग, सदाचार, तप ये सब जैनत्त्व के महत्त्व को ही बतलाते हैं। ये बातें अन्य मत में कहाँ हैं ? इस विषय में डा. उपाध्ये का मत भी यही है।

दक्षिणदेशेमलये हेमग्रामे मुनिर्महात्मासीत्।
एलाचार्यो नाम्ना द्रविडगणाधीश्वरो धीमान्॥

ज्वालामालिनी मंत्रग्रन्थ

मतलब यह है कि दक्षिण देश के हेमग्राम याने पोन्नूर ग्राम में एक महामुनि थे। उनका नाम एलाचार्य था। वह बुद्धिमान मुनि द्रविडगण के नायक थे।

द्रविड गण के नायक कुन्दकुन्द थे। उनका नाम एलाचार्य भी था। इसलिए

तमिलनाडु में कुरल काव्य एलाचार्य द्वारा बनाया गया है, इस तरह का कथन चलता आ रहा है। जनश्रुति सर्वथा असत्य नहीं है। ऊपर के आधार से एलाचार्य (कुन्दकुन्द) द्वारा कुरल-काव्य की रचना हुई हो, इस तरह विश्वास किया जाता है। कुछ भी हो कुरल-काव्य एक जैनाचार्य द्वारा विरचित ही है, इसमें कोई शक नहीं है।

परंपरा: इनकी परंपरा में आचार्य उमास्वामी मुख्य है। उन्होंने 'तत्वार्थसूत्र' की रचना की है। बादमें जितने भी आचार्य हुए वे सब के सब आचार्य कुन्दकुन्द का स्मरण कर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

इन सभी बातों से हम इस निर्णयपर पहुँचते हैं कि आचार्य कुन्दकुन्द प्राकृत, संस्कृत, तमिल आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। खास कर प्राकृत भाषा में जैनत्व सभी के रहस्य को एकदम भर दिया है। इनके सारे ग्रन्थ अमूल्य होनेसें जैन और जैनेतर लोग मुक्त कण्ठ से उनकी प्रशंसा करते हैं।

□ □

आचार्य समन्तभद्र

लोकोपयोगी पुराण, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, तर्कविषयक ग्रन्थों के प्रणयन करनेवाले सारस्वताचार्यों में स्वामी समन्तभद्र सर्वप्रमुख हैं। इनकी समकक्षता श्रुतधराचार्यों से की जा सकती है। विभिन्न विषयक ग्रन्थरचना करने में ये अद्वितीय माने गए हैं। यथा—

श्रीमत्समन्तभद्रादि कविकुंजर संचयम्।
मुनिवन्द्यं जनानन्दं नमामि वचनश्रियै॥

- अलंकार चिन्तामणि

इसका मतलब यह है कि कवियों में श्रेष्ठ, मुनियों द्वारा वन्दनीय एवं लोगों को आनन्द देनेवाले समन्तभद्र को मैं नमस्कार करता हूं।

स्तोत्रकाव्य का सूत्रपात आचार्य समन्तभद्र से ही होता है। ये स्तोत्रकवि हैं। साथही साथ तर्कशास्त्र में कुशल हैं। इनकी रचनाओं पर अकलंक और विद्यानन्द जैसे महान आचार्यों ने टीकाएँ लिखी है जिससे ग्रन्थ-रचयिता यश को प्राप्त हुआ हैं।

आचार्य कुंदकुंद के चरण चिन्ह

पोन्नूरमलै का दर्शनी दृश्य

जिनकांची

यह पवित्र क्षेत्र है। पहले यहाँ एक विद्यापीठ था। भट्टारक मठ भी था। इस मन्दिर मे चोल, पल्लव और विजयनगर राजाओं की चित्रकारी अंकित है। पहले चार मठ थे। दिल्ली, कोल्हापूर, जिनकांची और पेनुगोंडा। इनमे से जिनकांची मठ यही पर था। यहाँ चन्द्रप्रभु भगवान का पुरातन जैन मन्दिर है। यह एक शान्त और मनोहर स्थान है। वर्तमान मे वह सरकार के कब्जे मे है।
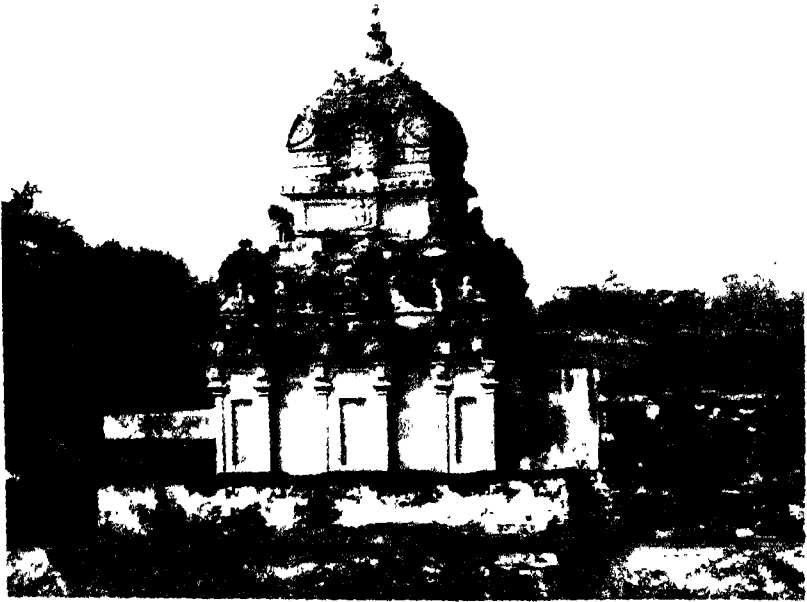
प्राचीनतम मंदिर

प्रारभ मे गोपुर द्वार है, तथा सगीत मडप है। इसमे हजारो लोग बैठ सकते हैं। यहाँ से करीब २ फर्लांग पर ५ समाधि-स्थान है, जो कि भग्नावशेष के रूप मे विद्यमान हैं।

जिनकांची
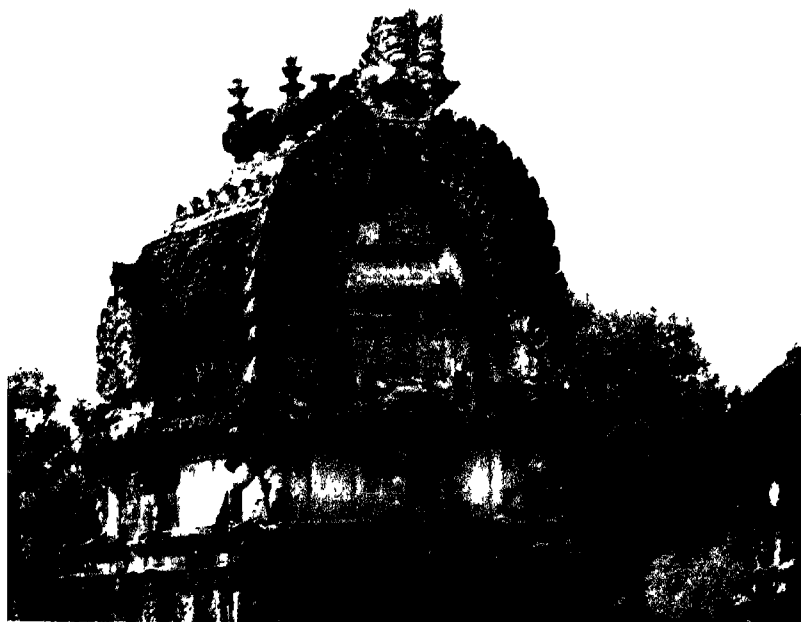
शिल्पकला का अप्रतिम सौंदर्य
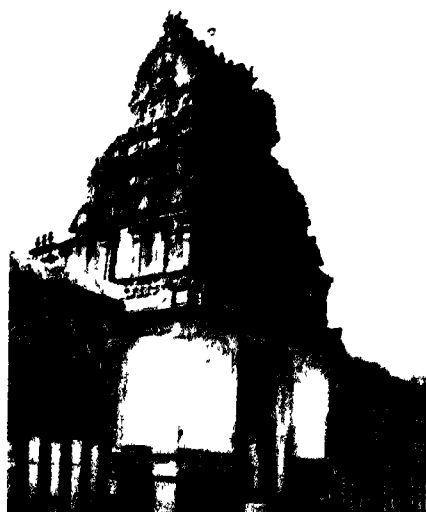
मंदिर का मुख्यद्वार

शिलालेख के साथ
चरण चिन्ह (तिरुमलै)

प्रसिद्ध पुरातन वृक्ष
जिनकांची

मडप का दर्शनी भाग

मदिर से सलग्न मडप का दृश्य

मंडप का कलात्मक स्तभ

तीर्थकर प्रतिमा - छत्रत्रय के साथ
(कुलुमलै)

तिरुनरुकुन्द्र का ब्रह्मदेव-
देवताओं के साथ

तिरुनरुकुंट्र
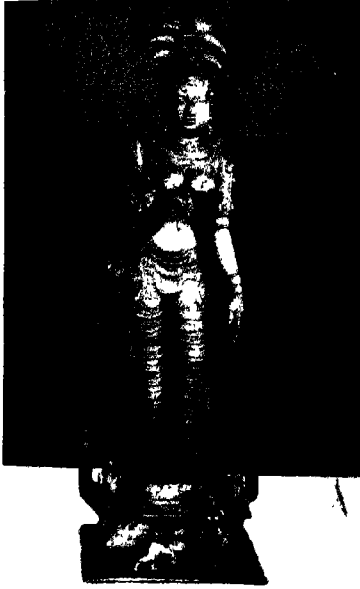
← धर्मदेवी ❖ पद्मावती ↓

तिरुनरुकुट्र

- धरणेंद्र यक्ष
- छत्रत्रय
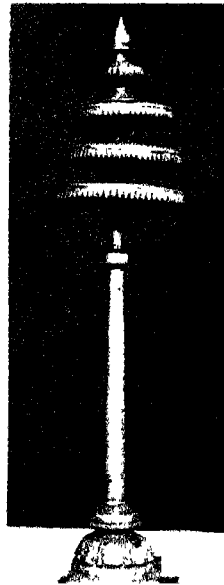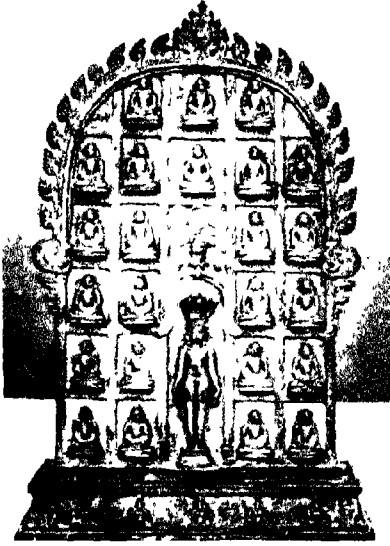
तीर्थकरो की चौबिस प्रतिमाएँ
चतुर्विंशति (तिरुनरुकुट्र)

कलुगुमलै पार्श्वनाथ
तीर्थकर प्रतिमा
शासन देवताओं के साथ
(कमठोपसर्ग)

आदिपुराण में जिनसेनाचार्य ने कई विशेषणों से इनकी तारीफ की है। इन्हें कवियों का विधाता भी बतलाया है–

कवीनां गमकानां च वादिनां वाग्मिनामपि।
यशः समन्तभद्रीयं मूर्ध्नि चूडामणीयते ॥
नमः समन्तभद्राय महते कविवेधसे।
यद्वचो वज्रपातेन निर्भिन्नाः कुमताद्रयः ॥

इसका मतलब यह है कि जो कवियों के ब्रह्मा है, जिनके वचनरूपी वज्रपात से मिथ्यामतरूपी पर्वत चूरचूर हो जाते हैं उन कविराज समन्तभद्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

स्वतंत्र कविता करनेवाले को कवि कहते हैं। शिष्यों के अन्ततक पहुँचाने वाले को गमक कहते हैं। शास्त्रार्थ करने में जो निपुण है, उसे वादी कहते हैं। दूसरों को हृदयस्पर्शी व्याख्यान देनेवाले को वाग्मी कहते हैं। ये सारे गुण श्री स्वामी समन्तभद्राचार्य के अन्दर मौजूद थे। अर्थात् वे सर्वगुणसंपन्न थे।

श्रवणबेलगोल के शिलालेख सं. १०५ में समन्तभद्राचार्य की सुयुक्ति पूर्ण उक्तियों को वादीरूप गणों को वश में करने के लिए वज्रांकुश बतलाया गया है। अर्थात् परवादियों को परास्त करने में आचार्यजी अद्वितीय महात्मा थे। इस वादिविजय –सूर्य के कारण परवादि लोग अन्तर्धान हो गये।

'ज्ञानार्णव' के कर्ता शुभचन्द्राचार्य ने समन्तभद्राचार्य को "कवीन्द्रभास्वान्" कविराज बताया है।

महान आचार्य समन्तभद्र संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के निष्णात विद्वान थे। दक्षिण भारत में इन्हीं के कारण संस्कृत के ज्ञान को प्रोत्साहन मिला और प्रसार हुआ। इस विषय में आचार्य का नाम स्मरणीय एवं उल्लेखनीय हैं। आचार्य समन्तभद्र तमिल प्रान्त के होने के कारण तमिल भाषा में भी निष्णात रहे होंगे। परन्तु तमिलभाषा में इनकी कोई कृति नहीं मिलती। आचार्य समन्तभद्र ने द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शून्य, क्षणिक आदि वादों को अपनी प्रतिभा के द्वारा निर्मूल कर दिया। इनके जमाने में कोई भी इनके सामने शास्त्रार्थ करने के लिये धीरज के साथ नहीं आ सकते थे। वे सातिशय तर्कवादी थे।

श्रवणबेलगोल के शिलालेख में उन्हें जिनशासन के प्रणेता एवं भद्रमूर्ति कहा गया है। इनकी प्रतिभा-शक्ति अनुपम थी। ये शास्त्रों के पारंगत एवं प्रकांड पंडित थे।

जीवन परिचय : समन्तभद्र महाराज का जन्म दक्षिण भारत के तमिलनाडु में हुआ था। ये चोलवंश के राजकुमार थे। इनके पिता उरगपुर (उरैयूर) के क्षत्रिय राजा थे। यह स्थान कावेरी नदी के तट के अन्तर्गत होने के साथ-साथ अतीव समृद्धिशाली माना जाता था। पं. जुगलकिशोर जी का अनुमान है कि यह उरगपुर 'उरैयूर' का श्रुतिमधुर नाम है। चोल राजाओं की सबसे प्राचीन ऐतिहासिक राजधानी "त्रिचनापल्ली" थी। इसका प्राचीन नाम उरयूर था। यह नगर कावेरी के तटपर बसा हुआ है। पहले

बन्दरगाह था और वह बडा ही समृद्धिशाली जनपद माना जाता था।

आचार्यजी का जन्मनाम शान्तिवर्मा बताया जाता है। इनके द्वारा विरचित जिनस्तुति शतक के अन्त में "शान्तिवर्मकृतम्" अर्थात् शान्तिवर्मा द्वारा विरचित है, यह पद आया है। अतः इनका नाम शान्तिवर्मा होना चाहिये। परन्तु यह नाम मुनि अवस्था का नहीं हो सकता। ये गृहस्थावस्था में भी कवि एवं वाग्मी रहे होंगे। साथ ही जिनस्तुति आदि रचना भी करते रहे होंगें।

मुनिपद एवं भस्मकव्याधि : ये राजकुमार कैसे मुनि बनें ? इन्हें कैसे वैराग्य हुआ ? इनके बारे में पता नही चलता। राजकुमार होने के कारण संसार-बन्धन को छोडकर मुनि बनने का कुछ कारण अवश्य होना चाहिये। कुछ भी हो, मुनि-दीक्षा ग्रहण करने के बाद इन्हें "मणुवकहल्ली" नामक स्थान में विचरण करते समय भयानक भस्मक नाम का रोग हो गया। वह रोग खाये हुए सभी वस्तुओं को क्षणभर में भस्म कर देता था। जिससे दिगम्बर मुनिपद निर्वाह करना असंभव दिखने लगा। अत आचार्यजी ने गुरु महाराज से समाधिमरण धारण करने की अनुमति मांगी। गुरुजी ने भविष्णु शिष्य को आदेश दिया कि आप प्रतिभावान हैं, आपसे धर्म और साहित्य की अभिवृद्धि होने की बडी-बडी आशायें हैं। अतः आप दीक्षा कुछ समय के लिए छोड दें ओर रोग शमन करने का उपाय करें। रोग दूर होने पर पुनर्दीक्षा ले लेवें। गुरु के आदेशानुसार मुनिपद को छोड कर संन्यासी बन गये और सब जगह विचरने लगे।

उन्होंने कई वेश धारण किये। पश्चात् वाराणसी में शिवकोटि महाराजा के भीमलिग नामक शिवालय में जाकर राजा को आशीर्वचन दिया और शिवजी को अर्पण किये जानेवाले नैवेद्य को शिवजी को ही खिला देने की घोषणा कर दी। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें शिवजी को नैवेद्य खिलाने की अनुमति दे दी। समन्तभद्र अनुमति प्राप्त कर शिवालय के किवाड बन्द कर उस नैवेद्य को स्वयं भक्षण कर रोग को शान्त करने लगे। धीरे-धीरे उनका रोग शान्त होने लगा और भोग –सामग्री बचने लगी। राजा को इस पर सन्देह हुआ। अतः उसने गुप्तरूप से शिवालय के भीतर कुछ व्यक्तियों को छिपा दिया। छिपे हुए व्यक्तियों ने समन्तभद्र को नैवेद्य भक्षण करते हुए देख लिया। समन्तभद्र ने इसे उपसर्ग समझ कर चतुर्विंशति तीर्थंकरों की स्तुति प्रारंभ की। राजा शिवकोटि के डराने पर भी आचार्य एकाग्रचित्त से स्तवन करते रहे। जब ये चन्द्रप्रभ तीर्थंकर की स्तुति कर रहे थे, उस समय भीमलिंग शिव का पिण्ड विदीर्ण हो गया और मध्यसे चन्द्रप्रभु भगवान का स्वर्णिम मनोज्ञ बिम्ब प्रकट हो गया। समन्तभद्र के इस माहात्म्य को देखकर राजा और उसका भाई दोनों आश्चर्यचकित हुए। आचार्य ने स्तुति पूर्ण होने के बाद राजा को आशीर्वाद दिया। यह भी कहा जाता है कि इस माहात्म्य से प्रभावित होकर वह राजा जैन बन गया।

उक्त कथा राजावली कथा में है। सेनगण की पट्टावली से भी इस बात की पुष्टि होती है। पट्टावली में शिवकोटि महाराजा के आचार्य से दीक्षित होने का उल्लेख भी मिलता है। साथ में उसे नवतिलिंग देश का राजा सूचित किया गया है, जिसकी

राजधानी संभवतः कांची रही होगी। यहाँ यह अनुमान लगाना अनुचित नही हैं कि सम्भवतः यह घटना काशी की न होकर कांची की हो। कांची को दक्षिण काशी भी कहा जाता रहा है।

इस तथ्य का समर्थन श्रवणबेलगोला के एक अभिलेख से होता है। यह अभिलेख शक संवत् १०२२ का है। अतः समन्तभद्र की भस्मक-व्याधि की कथा ई. सन् १० वी और ग्यारहवी शताब्दी में प्रचलित रही हैं।

ब्रह्म नेमिदत्त के आराधनाकथाकोश में शिवकोटि राजा का उल्लेख है। सारी बातें वर्णित हैं। इन्होंने काशी का ही उल्लेख किया है। इसलिए इस कथानक पर विश्वास किया जा सकता है।

काल: आचार्य समन्तभद्र के काल के सम्बन्ध में विद्वानों ने बहुत खोज की है। मि. लेविस राईस का अनुमान है कि समन्तभद्र ई. प्रथम-द्वितीय शताब्दी में हुए हैं। कन्नड ग्रन्थ के रचयिता आर. नरसिंहाचार्य ने ई. सन १३२ के लगभग इनका काल माना है। डॉ. सतीशचन्द्र विद्याभूषण नें यह अनुमान किया है कि समन्तभद्र ई.सन ६०० के लगभग हुए हैं। पंडित नाथूरामजी और डॉ. हीरालालजी इन दोनों का मत यह है कि उनका काल ई. छठी शताब्दी का है। पं. महेन्द्रकुमारजी का मत भी यही हैं। परन्तु बहुत से खोजकारों के अभिप्राय से आचार्यका समय ई. दूसरी शताब्दी माना जाता है। यह बात विचारणीय है। फिर भी कुछ खोजकार कहते हैं कि ई. छठी शताब्दी का होना अनुकूल मालूम पडता है

समन्तभद्र की रचनायें: संस्कृत काव्य का प्रारंभ स्तुतिकाव्य से हुआ है। आचार्य ने भी दर्शन, सिद्धान्त और न्याय संबन्धी विषयों को स्तुतिकाव्य से अभिव्यक्त किया है। निम्नलिखित रचनायें समन्तभद्र के द्वारा विरचित मानी जाती हैं-

१. बृहत् स्वयंभूस्तोत्र २. स्तुतिविद्या-जिनशतक ३. देवागम स्तोत्र-आप्तमीमांसा ४. युक्त्यानुशासन ५. रत्नकरण्डक श्रावकाचार ६. जीवसिद्धि ७. तत्वानुशासन ८. प्राकृत व्याकरण ९. प्रमाण पदार्थ १०. कर्म प्राभृत टीका एवं ११. गन्धहस्तिमहाभाष्य.

आचार्य समन्तभद्र की रचनाएं अद्वितीय है। सबसे बडा ग्रंथ 'गन्धहस्तिमहाभाष्य' समझा जाता है। परंतु वर्तमान में वह अप्राप्त है।

आचार्य समन्तभद्र के बारे में कहना यह है कि दर्शन, आचार, तर्क, न्याय आदि क्षेत्रों में प्रस्तुत किये गये ग्रन्थों की दृष्टि से वे ऐसे सारस्वताचार्य हैं, जिन्होंने कुन्दकुन्दादि आचार्यों के वचनों को ग्रहण कर सर्वज्ञ की वाणी को एक नये रूप में प्रस्तुत कर उसे जगत में विख्यात किया है और खुद भी विख्यात हुए हैं।

आचार्य अकलंकदेव

जैन परंपरा में यदि समन्तभद्र जैन न्याय के पितामह हैं तो अकलंकदेव उसके पिता। ये बड़े प्रखर तार्किक और दार्शनिक थे। बौद्ध दर्शन के अन्दर जो स्थान धर्मकीर्ति को प्राप्त है, जैन दर्शन में वही स्थान अकलंकदेव का भी है। इनके द्वारा विरचित सारे ग्रन्थ जैन दर्शन और जैनन्याय से ओतप्रोत हैं। अकलंकदेव के इन ग्रन्थों को उस विषयों का "आकर" ग्रन्थ माना जा सकता है।

अकलंकदेव का श्रवणबेलगोल के अभिलेखों में अनेक स्थानों पर स्मरण किया गया है। अभिलेख संख्या ४७ में लिखा गया है[१]--

"षटतर्केष्वकलंकदेव विबुधः साक्षादयंभूतले।"

अर्थात् अकलंकदेव षट्दर्शन और तर्कशास्त्र में इस पृथ्वीतल पर साक्षात् विबुध (बृहस्पति) थे।

एक अन्य अभिलेख में इनके द्वारा बौद्धादि एकान्तवादियों को परास्त किये जाने की चर्चा की गयी है। यथा

भट्टाकलङ्को कृत सौगतादि दुर्वाक्यपङ्कैस्सकलङ्कभूतम्।
जगत्स्वनामेव विधातुमुच्चैः सार्थं समन्तादकलङ्कमेव[२]।

वस्तुतः अकलंकदेव द्वारा जैन न्याय का अभिवर्द्धन हुआ है। अभिलेख सं. १०८ में पूज्यपादाचार्य के बाद अकलंकदेव का स्मरण किया गया है, और मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को नाश करने के लिये उन्हें सूर्य के समान बताया गया है।---

ततःपरं शास्त्रविदां मुनीना मग्रेसरोऽभूदकलङ्कसूरिः।
मिथ्यान्धकारस्थगिताऽखिलार्थाः प्रकाशिता यस्य वचोमयूखैः[३] ॥

इसका अर्थ है कि अकलंकाचार्य शास्त्रों को जाननेवाले मुनियों में अग्रसर रहें तथा मिथ्यारूपी अन्धकार को हटाने में सूर्य के समान रहे। इस तरह आचार्य का महत्त्व कहा गया है।

जीवन परिचय : राजावली कथा में अकलंकदेव को कांची के जिनदास नामक ब्राह्मण का पुत्र कहा गया है। परन्तु तत्त्वार्थराजवार्तिक के प्रथम अध्याय के अन्त में उपलब्ध प्रशस्ति से ये लघुहव्य नृपति के पुत्र प्रतीत होते है। प्रशस्ति में लिखा गया है ---

जीयाच्चिरमकलङ्क ब्रह्मा नृपतिवरतनयः।
अनवरत निखिलजननुतविद्यः प्रशस्तजनहृद्यः।

ये लघुहव्य नृपति कौन थे और किस प्रदेश के राजा थे, यह इस पद्य से या अन्य

---

१. जैन शिलालेख संग्रह प्रथम भाग अभिलेख ४७, पृष्ठ ६२, पद्य १०.
२. जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग अभिलेख ४७, पृष्ठ १९८-१९९, पद्य २१.
३. जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग अभिलेख ४७, पृष्ठ २११, पद्य १८, अभिलेख १०८.

आधार से ज्ञात नहीं होता। नाम से इतना मात्र प्रतीत होता है कि उन्हें दक्षिण का होना चाहिये। दक्षिण तमिलनाडु के होने के कारण सम्भवतः वे पल्लव वंश के कोई राजा रहे हों।

आचार्य प्रभाचन्द्र के कथाकोश में अकलंक की कथा देते हुए लिखा गया है कि एक बार अष्टान्हिका –पर्व के समय पर अकलंक के माता-पिता अपने पुत्र अकलंक और निष्कलंक के साथ मुनिराज के पास दर्शन करने गये। धर्मोपदेश सुनने के बाद उन्होंने (माता-पिता ने) आठ दिनों के लिए मुनिराज से ब्रम्हचर्य व्रत ग्रहण किया और पुत्रों को भी ब्रम्हचर्य व्रत दिलाया। जब दोनों पुत्र वयस्क हुए और माता-पिता ने उन दोनों का विवाह करना चाहा तो पुत्रों ने मुनि के समक्ष ली गयी प्रतिज्ञा की उन्हें याद दिलायी और विवाह करने से इन्कार कर दिया। तब पिताने पुत्रों को समझाते हुए कहा कि वत्स, "यह व्रत तो सिर्फ आठ दिनों के लिये ही ग्रहण किया गया था। अतः विवाह करने में कोई रुकावट नहीं है।" पिता के वचनों को सुनकर पुत्रों ने उत्तर दिया कि "उस वक्त, समय की सीमा का जिक्र नहीं किया गया था। अतः अब ली गई प्रतिज्ञा को तोडा नहीं जा सकता।"

पिताने फिर से समझाया कि "बेटा, तुम लोग उस समय अबुद्ध थे। अतः ली गयी प्रतिज्ञा में समय सीमा का ध्यान नहीं रखा गया। उस समय लिये गये व्रत का आशय केवल आठ दिनों के लिये ही था, जीवन पर्यन्त के लिए नहीं। अतएव विवाह कर तुम्हें हमारी इच्छा की पूर्ति करनी चाहिये"।

पुत्र बोले– "पिताजी, एक बार ली गयी प्रतिज्ञा को तोडा नहीं जा सकता। अतः यह व्रत तो जीवनपर्यन्त के लिये ही है। विवाह करने का अब प्रश्न ही नहीं उठता"।

पुत्रों की दृढता को देखकर माता-पिता को आश्चर्य हुआ। पर वे उनके अभ्युदय का ख्याल कर उनके विवाह करने में समर्थ नहीं हुए। अकलंक और निष्कलंक ब्रह्मचर्य की साधना करते हुए विद्याध्ययन करने लगे।

कांचीपुरी में बौद्धधर्म के पालक पल्लवराजा की छत्रछाया में अकलंक ने बौद्ध-न्याय का अध्ययन किया। अकलंक शास्त्रार्थी विद्वान थे। उन्होंने दीक्षा लेकर सुधापुर के देशीयगण का आचार्यपद सुशोभित किया।

ब्रह्म नेमिदत्तकृत आराधनाकथाकोश और मल्लिषेण –प्रशस्ति से उक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

यहाँ पर और एक बात समझने की है कि आचार्यवर्य द्वारा अकलंकाष्टक नामक आठ श्लोक का एक अष्टक लिखा हुआ है। उसका एक श्लोक यह है कि–

नाहंकारवशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलं,
नैरात्म्यं प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्यबुद्ध्या मया।
राज्ञः श्री हिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनां
बौद्धौघान् सकलान् विजित्य सघटः पादेन विस्फालितः॥

इसका आशय यह है कि न मुझे अहंकार है, न बौद्धों से द्वेष है, पर जनसमुदाय

नैरात्म्यवादको लेकर नष्ट हो रहा है। उसे देखकर मुझे करुणा आयी है। अतः मैनें राजा हिमशीतल की राज्यसभा में सारे बौद्धों को जीतकर उनके घट को अपने पादों से विस्फोटित कर दिया है।

यह अष्टक उन्हींकें द्वारा लिखा हुआ होने से ग्राह्य है। पर प्रश्न उठता है कि हिमशीतल महाराज कौन और कहाँ के थे?

प्रो. ए. चक्रवर्ती का कथन है कि कांची के पल्लव राजाओं में हिमशीतल राजा भी एक था। शायद उन्ही के राज्यकाल में यह शास्त्रार्थ हुआ होगा।

इस कथन के आधारपर यदि हम सोचते हैं तो कांची के अन्तर्गत करन्दै (अकलंकबस्ति) के पास हिमशीतल राजा के खण्डहर मिलते हैं। सम्भवतः वहीं पर यह शास्त्रार्थ छः महिने तक हुआ होगा। आखिर आचार्य स्वयं विजयी न होने का कारण सोच रहे थे। अतः उनके स्वप्न में कूष्माण्डिनीदेवी ने आकर परदे के पीछे बौद्धों द्वारा स्थापित घट में तारादेवी का आहवान यह कारण बताया है। उसे जीतने के लिये फिर से प्रश्न पूछना यही एक उपाय है। इस तरह देवीने वचन दिया। उसी के अनुसार अकलंक द्वारा दुबारा प्रश्न पूछा गया। किन्तु जवाब न मिलने से, परदे को हटा कर घट फोड दिया गया। यह तथ्य उनके वचन के आधार पर लिखित है।

उस कूष्माण्डिनी का मन्दिर करन्दै (अकलंक बस्ति) में आज तक मौजूद है। वहाँ के तालाब के किनारे पर उनका समाधिस्थल भी है। करन्दै जिनालय की दीवार पर आचार्य की मूर्ति भी खोदी हुई है। इससे अनुमान किया जाता है कि आचार्य की तपोभूमि कांची के पास के करन्दै होने में आश्चर्य की बात नहीं है। वह स्थान आज तक अकलंक बस्ती के नाम से प्रसिद्ध होता हुआ आ रहा है।

नेमिदत्त कृत आराधनाकथाकोश में भी ऊपर की बात की पुष्टि की गई है। साथ ही साथ उसमें विशेष बात यह है कि उस जमाने में सर्वत्र बौद्धधर्म का प्रचार था। इससे वे दोनों याने अकलंक और निष्कलंक महाबोधि-विद्यालय में बौद्ध-शास्त्रों का अध्ययन करने लगे।

एक दिन गुरु महोदय शिष्यों को सप्तभंगी सिद्धान्त समझा रहे थे। पर पाठ अशुद्ध होने के कारण वे उसे ठीक से नहीं समझा सके। गुरु के कहीं चले जाने पर अकलंक ने उस पाठ को शुद्ध कर दिया। इससे गुरु महोदय को उन पर जैन होने का सन्देह हुआ। कुछ दिनों में उन्होंने अपने प्रयत्नों द्वारा उनको जैन प्रमाणित कर लिया। दोनों भाई कारागृह में बन्द कर दिये गये। रात्रि के समय दोनों भाइयों ने कारागृह से निकल जाने का प्रयत्न किया। वे अपने प्रयत्न में सफल भी हुए और कारागृह से निकल भागे। प्रातः काल बौद्धगुरु को उनके भाग जाने का पता चला। गुरु ने चारों ओर घुड़सवारों को दौड़ा कर दोनों को पकड़ लाने का आदेश दिया।

घुड़सवारों ने उन का पीछा किया। कुछ दूर आगे चलने पर दोनों भाईयों ने अपने पीछे आनेवाले घुड़सवारों को देखा और अपने बचने की राह न होते देख अकलंक निकट के एक तालाब में कूद पड़े और कमलपत्रों से अपने को आच्छादित कर लिया।

निष्कलंक भी प्राणरक्षा के लिये शीघ्रता से भाग रहे थे। उन्हें भागते देख तालाब का एक धोबी भी भयभीत होकर साथ-साथ भागने लगा। घुडसवार निकट आ चुके थे। उन्होंने उन दोनों को पकड लिया और उनका वध कर डाला. घुडसवारों के चले जाने पर अकलंक तालाब से निकले और निर्भय होकर भ्रमण करने लगे।

राजावली कथा में बताया गया है कि कांची के बौद्धों ने हिमशीतल महाराजा की सभा में इस शर्त पर शास्त्रार्थ किया कि जो हारते हैं उस सम्प्रदाय के सभी मनुष्य कोल्हू में पेलवा दिये जाँय। इस कथा के अनुसार शास्त्रार्थ १७ दिनों तक चला था। अकलंक को कूष्माण्डिनी देवी ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि तुम अपने प्रश्नों को प्रकारान्तर से उपस्थित करने पर जीत सकोगे। अकलंक ने वैसाही किया और वे विजयी हुए। अहिंसाप्रधान जैनधर्म सिद्धान्त के अनुसार कोल्हू में न पेलवा कर सारे बौद्ध कांची से सिलोन भेज दिये गये। यह बात एक तरह से विश्वसनीय मालूम होती है।

समय निर्धारण : अकलंक देव के समय के सम्बन्ध में दो धारायें प्रचलित हैं। प्रथम धारा के प्रवर्तक प्रो. श्रीकण्ठ शास्त्री तथा आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार हैं। डॉ. पाठक ने मल्लिषेण-प्रशस्ति के "राजन् साहसतुंग" श्लोक के आधार पर उन्हें राष्ट्रकूटवंशी राजा दन्तिदुर्ग या कृष्णराज प्रथम का समकालीन सिद्ध किया है तथा अकलंकचरित्र के निम्नलिखित पद्य में आये हुए विक्रमार्क पद का अर्थ शक संवत् किया है। यथा:

विक्रमार्क शकाब्दीय शतसप्तप्रमाजुषि।
काले अकलंकयतिनो बौद्धैर्वादो महानभूत्॥

अतः इनके मतानुसार अकलंक का समय शक-संवत् ७०० (ई. ७७४) है। आचार्य जुगलकिशोर मुख्यातार का मत है कि वि. सं. ७०० (ई. सन.६४३) है। प्रथम परम्परा के समर्थकों में स्व. डॉ. आर.जी. भण्डारकर, स्व. डा. सतीशचन्द्र विद्याभूषण और स्व. श्री. पं. नाथूरामजी प्रेमी है। दूसरी धारणा के पोषकों में डॉ. ए. एन्. उपाध्ये, आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार और पं. कैलाशचन्द्रजी शास्त्री हैं।

उक्त दोनों धाराओं का आलोकन कर डॉ. (पं.) महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य ने अकलंक के द्वारा भर्तृहरि, कुमारिल, धर्मकीर्ति आदि आचार्यों की आलोचना पाकर अकलंक का समय ई. सन. ८वीं शती सिद्ध किया हैं। डॉ. (पं.) न्यायाचार्य के प्रमाण पर्याप्त सबल है।

आचार्य कैलाशचन्द्र शास्त्री ने गहन अध्ययन कर अकलंक देव का समय ई. सन. ६२० से ६८० तक निश्चित किया है। और पं. महेन्द्रकुमारजी के अनुसार यह समय ई. सन. ७२० से ७८० आता है। इस तरह इन दोनों समयों के मध्य में १०० वर्षों का अन्तर है। इन अभिप्रायों से अकलंक देव का समय ७वीं या ८वीं शती का माना जा सकता है।

अकलंक देव की जैन न्याय को सबसे बडी देन है —प्रमाण वाद। इनके द्वारा

की गई प्रमाण –व्यवस्था का दिगम्बर और श्वेतांबर दोनों संप्रदायों के आचार्यों ने अपनी-अपनी प्रमाणमीमांसा विषयक रचनाओं में ज्यों का त्यों अनुकरण किया है। अतः धनंजय ने जैन तार्किक अकलंकदेव और उनके प्रमाण शास्त्र का गौरवपूर्ण उल्लेख किया है।

वीरसेन स्वामीने भी अपनी धवला तथा जयधवला टीकाओं में और उनके शिष्य जिनसेनाचार्य ने अपने महापुराण में अकलंक का निर्देश किया है।

वीरसेन ने धवल टीका में "इति" शब्द का अर्थ बतलाने के लिए एक पद्य उद्धृत किया है, जो धनंजय कवि की अनेकार्थ नाममाला का ३९वाँ पद्य है। अतः धनंजय वीरसेन से पूर्ववर्ती है और धनंजय से पूर्ववर्ती अकलंकदेव है। अतएव अकलंक का समय सातवीं शती का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है।

रचनायें : १. स्वोपज्ञवृत्तिसंहित लघीयस्त्रयी, २. न्यायविनिश्चय सवृत्ति, ३. सिद्धिविनिश्चय सवृत्ति, ४. प्रमाणसंग्रह सवृत्ति, ५. तत्वार्थवार्तिक एवं ६. अष्टशती-देवागम विवृत्ति आदि।

इस प्रकार अकलंक आचार्य ने कई ग्रन्थों का निर्माण कर, उनकी टीका कर और शास्त्रार्थ कर जैन धर्म को उद्योतित किया है। इनका यश आचन्द्रार्क तक बना रहेगा, इसमें कोई शक नही है।

□ □

(८) भट्टारक-परंपरा

तमिलनाडु के अन्दर भट्टारक- परंपरा का इतिहास प्रकाशमान नहीं है। परन्तु तमिलनाडु के मेल सित्तामूर में भट्टारक मौजूद है। इससे अच्छी तरह पता चलता है कि भट्टारक- परंपरा का इतिहास अवश्य होना चाहिए। इसके विषय में तमिलनाडु के इतिहासकारों ने कुछ भी लिखा नहीं है। फिर भी हम मिलनेवाले आधारों से अवश्य कुछ लिखेंगे।

सित्तामूर ई. ९वी शती में जैनों का तीर्थ स्थल रहा था। परन्तु उस समय वहाँ जैन मठ था या नहीं इस का आधार नहीं मिल रहा है। लेकिन मेक्कन्जी के विवरण में इसका याने जैन मठ का जिक्र मिलता है। किन्तु वह टूटा हुआ होने से ठीक तरह से पता नहीं चलता।

ई. १४७८ में जिजी शहर में वेंकटप्पनायकन राज्य करता था। मेक्कन्जी के विवरण ग्रन्थ में इसका सन्दर्भ मिलता है। उसके जमाने में जैनों के ऊपर भयंकर अत्याचार हुए थे जिनके कारण बहुतसे लोग शैव बन गये थे। बाद में तालनूर का एक व्यक्ति श्रवणबेलगोला गया और वहाँ से श्री वीरसेनाचार्य को ले आया और उनसे सित्तामूर में जैन मठ की स्थापना करायी[१]। उसके बाद जो लोग जैन धर्म को छोडकर शैव बन गये थे उनका पुनरुद्धारण कर उन्हें जैन बनाया गया था। इससे पता चलता है कि सित्तामूर के अन्दर पन्द्रहवी शती में जैन मठ की स्थापना हुई थी और उस मठ के मठाधीश के द्वारा जैन धर्म का प्रचार किया गया था।

भट्टारकों के बारे में इतिहासकारों का भिन्नभिन्न मत है। कुछ लोगों का कहना यह है कि ये भट्टारक लोग पहले नग्न दिगम्बर के रूप में थे। बाद में राजनैतिक एवं सामाजिक दबाव से वस्त्रधारी भट्टारक बन गये।

दूसरे मतवालों का कहना यह है कि ९वीं शती में आदिशंकराचार्य का जन्म हुआ

---

1. **Mackenzee Manuscripts M SS, 11 Sec-2.**

था। उनकी उत्पत्ति के विषय में मतभेद है। कुछ भी हो आदिशंकराचार्य शैवमत के पक्षपाती एवं जैनमत के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक संचार कर शैवमठ की स्थापना करते हुए उक्त धर्म का खूब प्रचार किया जिसके कारण जैनधर्म की अवनति हुई। उसे देखकर जैनधर्मवालों ने भी जैनमठ की स्थापना कर उसमें भट्टारकों की नियुक्ति करते हुए जैनधर्म का प्रचार करना शुरु किया। एक तरह से यह बात मानी जा सकती है।

इसके आधार से देखा जाय तो जैनमठ और भट्टारकों की स्थापना आठवीं या नौवी शताब्दी की मानी जा सकती है। 'भट्टारक संप्रदाय' के लेखक प्रोफेसर विद्याधर जोहरापुरकर का आशय भी नौवीं शताब्दी से है। उनके विचार के अनुसार भट्टारक लोग पहले नग्न दिगम्बर थे। फिर धीरे धीरे कपडा पहनने लगे। बाद में जमीन-जायदाद के साथ मठ की सारी व्यवस्था भट्टारकों के अधीन होने लगी।

यहाँ विचार करने की बात यह हैं कि दिगम्बर संप्रदाय, नग्नत्व पर कडा जोर देनेवाला है। ऐसे संप्रदाय के अन्दर एकदम कपडा पहनना, सारे परिग्रहों को रखना इस तरह के विचार को दिगम्बर संप्रदाय ने कैसे अंगीकार किया? महान आचार्य कुन्दकुन्द अपने ग्रन्थों मे नग्नत्व पर बहुत जोर देते हैं। ऐसी परंपरा के अन्दर सवस्त्रधारी एवं परिग्रही भट्टारकों को दिगम्बर संप्रदाय ने आसानी से मान लिया हो यह विश्वास करने की बात नहीं है। इसमें और कुछ विशेषता जरूर होनी चाहिये।

शंकराचार्य आदि जैनेतर मतवालों ने जैनधर्म के विरोध में वितण्डावाद खडा करने के साथ साथ मठ की स्थापना कर जैनधर्म के विरोध में खूब प्रचार किया था जिसके कारण जैनधर्म का ह्रास होने लगा। इस तरह शैवों की देखादेखी से जैनधर्म के रक्षणार्थ जैनों के द्वारा मठ की स्थापना एवं भट्टारकों का अस्तित्व हुआ हो तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। क्योंकि धर्म के उत्थान के लिये कोई न कोई रास्ता निकालना जरूरी था। विवश होकर जैनधर्म को भी भट्टारक संप्रदाय के स्वीकार के सिवा कोई मार्ग नहीं रहा होगा। अन्यथा, दिगम्बर संप्रदाय सवस्त्र भट्टारक संप्रदाय को कतई स्वीकार नहीं करता। यह निश्चित बात है। सवस्त्र श्वेताम्बर संप्रदाय का खण्डन करनेवाले दिगम्बर सप्रदाय के लोग इसे अंगीकर नहीं करते। यह सोचने और विचारने की बात है। इसमें और एक विशेष बात यह है कि सवस्त्र श्वेताम्बर धर्मवालों ने भी मठों की स्थापना की है। उनके मठों की स्थापना बीकानेर, दिल्ली, लखनऊ आदि स्थानों में हुई थी[१]। श्वेताम्बर लोग तो वस्त्रधारी थे फिर भी उस सम्प्रदाय में इस तरह के मठों की स्थापना होने का कारण मालूम नही पडता। शायद चमत्कार के द्वारा अन्य धर्मवालों को तथा लोगों को अपने धर्म की तरफ आकर्षित करने के लिये इस तरह की स्थापना की गई हो?

'विद्यासागर' नाम के ग्रन्थ से यह बात मालूम होती है कि तमिल प्रान्त में दि. जैन मुनिगण शास्त्रज्ञान में अग्रगण्य रहा करते थे। उनमें से एक महात्मा जैनधर्म की

---

१. भट्टारक संप्रदाय पेज-२३.

परिस्थिति को देख कर दक्षिण से लेकर दिल्ली तक अपने जैनधर्म का प्रचार करते गये। उनकी प्रचार-वाणी अच्छी थी। इसलिये हर स्थान के लोग उनका स्वागत कर अपने-अपने स्थान में रह कर प्रचार करने की प्रार्थना करने लगे। उस महात्मा ने एक जगह रहना पसन्द नहीं किया। परन्तु सारे प्रान्त में प्रचार होने की दृष्टि से दिल्ली तक गये और जगह-जगह लक्ष्मीसेन मठ की स्थापना करते गये। उनकी परंपरा आजकल तमिलनाडु में चलती आ रही है। जैसे दिल्ली, कोल्हापूर, जिनकांची, पेनगोंडा। ये चारों लक्ष्मीसेन मठ है। तमिलनाडु में वर्तमान में लक्ष्मीसेन-जिनकांची-मठ मौजूद है।

दिल्ली का मठ नष्ट हो गया है। कोल्हापूर का मठ मौजूद है। उसके मठाधीश भी हैं। तमिलनाडु के मठाधीश की स्थापना होते समय कोल्हापूर के मठाधीश आकर कार्य संभालते हैं। यह प्रथा आजतक चलती आ रही है। पेनगोंडा मठ कर्नाटक में था। उसके सन्दर्भ मे कोई जानकारी नहीं मिलती। दिल्ली, कोल्हापूर, जिनकंची, और पेनगोण्डा इन चारों मठों के मठाधीशों का एक ही नाम होता हैं वह है लक्ष्मीसेन भट्टारक।

कर्नाटक में पांच मठ है। जैसे मूडबिद्री, श्रवणबेलगोला, होंबुच, कार्कल और बस्तिमठ (नरसिहराजपूर)। इन मठाधिशोंके नाम हैं– चारुकीर्ति (श्रवणबेळगोळ तथा मूडबिद्री), देवेन्द्रकीर्ति (होंबुज), ललितकीर्ति (कार्कल), और लक्ष्मीसेन (बस्तिमठ-नरसिहराजपूर)। शायद लक्ष्मीसेन मठ के साथ इन मठों का संबंध नहीं रहा हो।

चमत्कारः भट्टारक लोग विद्या, यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र आदि सकल कलाओंमे चतुर रहा करते थे। मन्त्र-तन्त्रों की साधना के द्वारा किसी देवी-देवता को प्रसन्न कर लेना इन भट्टारकों का कार्य माना जाता था। चमत्कार दिखाया जाय तो सभी लोग वशीभूत हो जाते हैं। ऐहिक दृष्टिसे चमत्कार दिखाना मुनियों के लिये निषिद्ध था। फिर भी आचार्य कुन्दकुन्द के बारे में चमत्कार की महिमा गायी जाती है।

एक बार कुन्दकुन्द महाराज पोन्नूरमलै में संघ सहित विराजमान थे। उस समय संघ की एक अर्जिका को दुर्दैव सता रहा था। आचार्य महाराज ने सिद्धचक्र की आराधना कर उसका निवारण किया था। गिरनार की बात तो सर्वविदित है ही। आचार्य महाराज का संघ गिरनार में था। उस समय वहाँ श्वेतांबरों का संघ भी था। रथोत्सव होने वाला था। दोनो संप्रदायवालोंने रथ निकाला। परंतु प्रश्न यह उठने लगा कि किसका रथ आगे जाना हैं। इसमें दोनों संप्रदायवालोने अपने-अपने रथ को आगे जानेपर जोर दिया। इससे दोनों मे विवाद खडा हो गया। आखिर कुन्दकुन्द आचार्य ने कृष्माण्डिनी की सहायता से दिगम्बर संप्रदाय के रथ को आगे जाने की आकाशवाणी सुनवायी थी। तदनुसार ही कार्य हुआ।

महान आचार्य अकलंकदेव के शास्त्रार्थ में भी उन्हें कृष्माण्डिनी देवी की सहायता प्राप्त हुई थी। ऐसी हालत में परिग्रही भट्टारकों का कहना ही क्या है? ये तो मन्त्र-तन्त्रादिक में समर्थ थे ही। फिर चमत्कार दिखाने में क्या कमी रही होगी? इसी

दृष्टि से हम देखते हैं कि भट्टारक सोमकीर्ति ने पावागढ में, तथा भट्टारक मलयकीर्ति ने आंतरी में चमत्कार दिखाए थे। भट्टारक विद्यासागर ने बहादुरशाहा अकबर के दरबार में चमत्कार दिखाए था। यह कथा बहुत लंबी है। इस दृष्टि से हम देखते हैं कि भट्टारकों ने अपनी मंत्र-साधना के जरिये जैनधर्म की काफी रक्षा की है।

ग्रन्थ रचना: दि. जैन साधु लोग तो अनवरत ग्रन्थ लेखन कार्य में तत्पर रहा करते थे। उसीके अनुसार भट्टारक लोग भी इस ग्रन्थ रचना के कार्य में पीछे नहीं रहें। आजकल भी काफी ग्रन्थों का नामोल्लेखन मिल रहा है। जैसे संस्कृत में ईडर शाखा के भट्टारक सकलकीर्ति और भट्टारक शुभचन्द्र के विभिन्न पुराणग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। अपभ्रंश में माथुर गच्छ के भट्टारक अमरकीर्ति, तथा भट्टारक यशकीर्ति की रचनायें स्मरणीय हैं। इस तरह प्रायः सभी भाषाओं में इन भट्टारकों की रचनायें पायी जाती हैं।

भट्टारकों के कार्यक्षेत्र में पूजापाठ, अष्टक, स्तोत्र, जयमाला, आरती, उद्यापन आदि सम्बन्धी साहित्य मुख्यता से देखा जाता है। जिनेंद्र भगवान की मूर्तियाँ और यन्त्रों की प्रतिष्ठा इन्हींके द्वारा होती थी। ये लोग न्यायशास्त्र में भी निपुण थे। भट्टारक धर्मभूषण कृत न्यायदीपिका लोकप्रसिद्ध है। कर्मशास्त्र पर भट्टारक ज्ञानभूषण और शुभकीर्ति की कर्मकाण्ड-टीका उल्लेखनीय है। भट्टारक धरसेन विरचित विश्वलोचन-कोश एक अद्वितीय रचना है। ज्योतिष और वैद्यशास्त्रपर भी इनके द्वारा लिखित काफी ग्रन्थ हैं। प्राचीन ग्रन्थों की रक्षा हस्तलेखन के द्वारा इन भट्टारकों द्वारा होती थी।

मूर्ति-प्रतिष्ठा: भट्टारकों के जीवन काल में सब से अधिक विस्तृत रूप में मूर्ति और मन्दिरों की प्रतिष्ठा हुआ करती थी। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रतिष्ठा-महोत्सव को धार्मिक से अधिक सामाजिकरूप प्राप्त होता था। इसलिए उसमें भट्टारकों का प्रमुख स्थान रहता था। उस जमाने में तीर्थंकर, नन्दीश्वर, पंचमेरु, सहस्त्रकूट, सरस्वती, पद्मावती, यक्षिणी और क्षेत्रपाल आदि मूर्तियों की प्रमुखता दिखाई देती थी। तीर्थंकरों की मूर्तियाँ पद्मासन और कायोत्सर्ग में होती थी। नागफणासहित पार्श्वनाथ की मूर्ति प्रचुर मात्रा में देखी जाती थी। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ इन तीन तीर्थंकरों की संयुक्त मूर्तियों को रत्नत्रय मूर्ति कहा जाता है। इसी प्रकार अनन्तनाथ तक के चौदह तीर्थंकरों की संयुक्त मूर्तियाँ भी पायी जाती है। ये अनन्तव्रत कथा के आधार पर निर्मित हैं। सामान्य तौरपर उस समय की मूर्तियाँ सादी होती थीं। परन्तु इस युग की मूर्तियाँ भामण्डल, छत्रत्रय, सिंहासन आदि के साथ विराजमान होती हैं। इस तरह इन भट्टारकों के द्वारा जिनेन्द्र भगवान की मूर्तियाँ, मन्दिर, प्रतिष्ठा आदि प्रचुर मात्रा में हुआ करती थी।

शिष्य परंपरा: शिष्य परंपरा में ब्राह्मण परंपरा के समान इसमें शिष्य परंपरा व्यवस्थित नहीं रहती थी। इस कमी को दूर करने के लिये शिष्य परंपरा के विस्तार का प्रयत्न मुनिराजों द्वारा किया गया था। भट्टारक संप्रदाय इस कमी की पूर्ति करता

था। इस में ब्रह्मजिनदास, श्रुतसागर सूरि, पण्डित राजमल्ल आदि भट्टारक –शिष्यों के नाम स्मरणीय है। दक्षिण के पण्डित देव और नागचन्द्र जैसे विद्वानों के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

जैनेंद्रव्याकरण, गणितसारसंग्रह, कल्याणकारक आदि ग्रंथों का पठन-पाठन लुप्तप्राय था। इस कमी को भट्टारक –शिष्य परंपरा ने इन ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ कराकर उनका अभ्यास स्वयं किया और दूसरों को कराया। जिसके कारण ग्रन्थ स्थिर रह सके। पहले के जमाने में सारे ग्रन्थ ताडपत्र में लिखे जाते थे। एक समय में एक ही प्रति तैयार होती थी। अधिक प्रतियाँ मिलना असंभव था। आजकल यह दिक्कत नहीं है। हजारों और लाखों प्रतियाँ एक साथ तैयार की जाती हैं। काम आसान हो गया हैं।

धर्म प्रचार के लिये, शास्त्र-पठन-पाठन के लिये शिष्य-परंपरा की बडी जरूरत है। इस विषय में आचार्यो की शिष्य परंपरा काफी कार्य करती थी। उसके साथ-साथ भट्टारकों की शिष्य– परंपरा धर्मरक्षा के लिये चमत्कार के द्वारा राज्यसत्ता एवं साधारण जनता को अपनी तरफ खींचने में समर्थ होती थी।

वस्तुत· शिष्य-परंपरा के रूप में तमिलनाडु का जो मठ है, उसकी परंपरा की ठीक– जानकारी नही मिल पाती। करीब सौ साल के अंतर्गत भट्टारक की परंपरा की जानकारी मिलती है। उनमें उप्पुवेलूर, वीरणामूर, (दो) एरुंबूर, तच्चूर, तंजाऊर, फिर से उप्पुवेलूर, फिर से एरुंबूर इन भट्टारकों की परंपरा अवगत है। वीरणामूर भट्टारकों के जमानें में मठ के लिए काफी जमीन-जायदाद एकत्रित की गई थी। इस कारण से अभी भी उनके पास काफी जमीन है।

तमिलनाडु में मठाधीश का कार्य: जैनधर्म का प्रचार, मठ की जमीन की व्यवस्था, मठ के मन्दिरों की देखरेख, सकल जिनालय धर्म परिपालक के कारण सारे जिनालयों की साधारण व्यवस्था, बच्चों का पंच नमस्कार मन्त्रोपदेश। सात आठ साल के बच्चों-बच्चियोंको पहले-पहल मठाधीश के द्वारा पंच नमस्कार मंत्रोपदेश देने की प्रथा है। यह प्रथा अब तक चालू है।

मंन्दिर का निर्माण, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा :- किसी भी गाँव के मन्दिर की प्रतिष्ठा होती हो, वह भट्टारक के नेतृत्व में ही हुआ करती है, यह प्रथा अभी तक चालू है। गाँव के अन्दर जैनियों में लडाई-झगडा हो गया हो तो उसे निपटाना आदि कार्य वे ही करते थे। परन्तु आजकल लडाई-झगडे के मामले में शिथिलता आ गयी है। क्योंकि वे लोग सीधे कोर्ट चले जाते हैं।

इस तरह सारे धार्मिक कार्यो का नेतृत्व भट्टारक ही संपन्न करते थे। काल-दोष के कारण आजकल शिथिलता पायी जाती है। फिर भी सर्वथा अभाव नहीं हुआ है।

□ □

(९) राज्यसत्ता एवं परंपरा

भारत देश में धार्मिक लोगों के साथ राज्य परंपरावालों का काफी संबन्ध रहा करता था। उन धार्मिक लोगों के पवित्र मन्दिर आदि धर्मायतनों का उनसे सम्बन्ध रहना भी स्वाभाविक था। उस जमाने के शिलालेख हमें इस प्रकार के बहुत से विषयों की जानकारी देते हैं।

ई. तीसरी शताब्दी तक के काल को संघकाल कहते हैं। उस जमाने में तिरुक्कोविलूर को राजधानी बनाकर मलैयमान नामका राजा राज्य करता था। उसके जमाने में "तिरुनरुकुन्टूं" का मन्दिर उसके शासन के अन्तर्गत रहा होगा। ई. दूसरी सदी का "जंबै" ब्राह्मी शिलालेख इसे स्पष्ट बता रहा है[१]।

पुराने जमाने में यह बात निश्चित हुआ करती थी कि जिस धर्म का उत्थान होना हैं उसके लिये राज्यसत्ता के आश्रय की जरूरत है। क्योंकि उस जमाने में राजा ही सर्वेसर्वा होता था। उसे न कोई पूछ सकता था और न पूछने की किसी को हिम्मत ही होती थी। राजा चाहे जिस किसी भी धर्म को ऊपर उठाना चाहें, आसानी से उठा सकता था और यदि गिराना चाहे तो गिरा भी सकता था। यह उसके बस की बात थी। हर एक धर्म के उत्थान-पतन की यही हालत हुआ करती थी। उसमें जैनधर्म को भी हम शामिल कर सकते हैं।

साधारणतया तमिलनाडु में प्राचीन काल में पाँच धर्म थे। जैसे- जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव और आजीवक। आजीवक धर्म का सिद्धान्त यह था कि उसके भगवान अदृश्य रहते हैं और वे तिरोहित हो जाते हैं। उनके धर्म की अधिकतर विशेष बात नहीं थी। इसलिये वह आजीवक धर्म एक तरह से खतम ही हो गया। वह पनप नहीं सका। उसी तरह भारत में बौद्धधर्म भी एक तरह से तिरोहित हो गया। रहे तीन धर्म। अर्थात्

---

१. Express Magazine-6-12-1981.

जैन, शैव और वैष्णव। इन तीनों के साथ ही हमेशा झगडा चलता रहा। सातवीं और आठवीं सदी (ई) तक जैन धर्म उन्नति पथ पर था। उस समय शैव-वैष्णव धर्मों का जोर नहीं था। बाद में इन दोनों का प्रभाव बढ गया। उसमें तमिलनाडु में वैष्णव धर्म की अपेक्षा शैव धर्म जैनधर्म के प्रति अधिकता से विरोध दिखाकर उसका पतन करने में अग्रसर रहा। हर एक धर्मवालों को अपने धर्म के प्रति प्रेम तो रहता ही है। परन्तु दूसरे धर्म के प्रति द्वेष भाव रखने की आदत भी रहती है।

इसी तरह आपस के वैमनस्य के कारण हर एक धर्मवालों ने शासन करनेवाले राजाओं को अपने पक्ष में खींच कर स्वधर्म अभिवृद्धि में दिलचस्पी ली। इसमें जैन-धर्म को भी शामिल करना जाहिए। ऐसी हालत में जैनधर्म पर सहानुभूति दिखाने वाले और जैनधर्म को अंगीकार कर उसकी अभिवृद्धि में योगदान करने वाले राजाओं के बारे में हमें यहाँ विचार करना है।

वास्तव में देखा जाय तो जैनधर्म को अंगीकार करनेवाले राजाओंकी अपेक्षा सहानुभूति दिखलानेवाले राजाओं की गिनती ज्यादा दिखाई देती हैं। परन्तु इन जैन राजाओं का इतिहास प्रकाशमान नहीं है। फिर भी जानकारी का सर्वथा अभाव हों ऐसी बात भी नहीं हैं।

यह बात मानी जाती है कि संघकाल (ई. २०० तक) के बाद चार तरह के राजा लोग तमिलनाडु में राज्य करते थे। जैसे— चेर, पल्लव, चोल और पाण्ड्य। इन लोगों का काल क्रमशः चेर का ई. दूसरी सदी, पल्लवों का छठवीं सदी, चोलों का नौवीं सदी, पाण्ड्यों का तेरहवीं सदी और विजयनगर नायकन का काल १६वी सदी माना जाता हैं। इन लोगों के काल के विषय में इतिहासकारों में मतभेद भी है। किन्तु कुछ भी हो, हमें तो मोटे तौर से ही देखना और समझना हैं।

ई. दूसरी शताब्दी के इलंगोवडिगल ('सिलप्पधिकारं' के कर्ता) राजवंशके एक युवराज थे। ये चेरवंश के थे। ये पक्के जैनी थे। इनके द्वारा लिखा गया 'सिलप्पधिकारं' यह एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। यह प्राप्य है। ग्रन्थकर्ता ने "गौन्दियडिगल" को पात्र बना कर जैनधर्म का विशद विवेचन किया हैं। इसको ग्रन्थ के अन्दर देख सकते हैं।

चेरवंश के राजा "माधव" ने बडे भारी जिनालय का निर्माण किया था और उसे जमीन आदि का दान भी किया था। इनके बारे में विशेष बात मालूम नहीं पडती।

क्रिया माधव, तिसरा माधव, अविनिति, दुर्विनिति आदि तमिलप्रान्त के राजा लोग जैन थे। इन लोगों के बारे भी विशेष बात मालूम नहीं पडती।

ई. छठवी शताब्दी में कांजीपुरं को राजधानी बना कर तोंडमण्डल प्रदेश (चेंगलपट्टु, नॉर्थ आर्काड, साऊथ आर्काड) आदि स्थलों में पल्लव राजा लोग राज्य करते थे। इनमें सिंहवर्म जैनी था। इन्होंने जैनधर्म की उन्नति में क्या किया? यह पता नहीं चलता। इनके जमाने में बहुत से जैनधर्मानुयायी एवं सहानुभूति वाले लोग रहते थे।

इन पल्लवों में पहला महेन्द्रवर्म पक्का जैनी था। इन्होंने सिद्धन्नवासल के गुफा-मन्दिर को बनवाया था। इसके अलावा बहुत से जिनालयों का निर्माण कराया था। ये स्वयं संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान रहे। इनके द्वारा "मत्तविलासप्रहसनं" नामका ग्रन्थ लिखा गया है। उसमें अन्य धर्मो के सिद्धान्तों का उपहास याने खण्डन और जैनधर्म का मण्डन किया गया है। इस ग्रन्थ को प्रो. चक्रवर्ती नैनार, एम्. ए. ने प्रकाशित किया था। बाद में वह राजा शैव बन गया, इस तरह कहना कहां तक सच है, यह समझ में नही आता।

ई. नौवी सदी में पल्लवों का राज्य खतम हुआ। बाद में चोल राजाओं का राज्यकाल प्रारंभ हुआ। इन राजाओं का जमाना स्वर्णिम था। इस काल में कई राजाओ ने राज्य किया था। पहला राजराजन्, पहला राजेन्द्र, पहला राजाधिराज, पहला कुलोत्तुंग, विक्रचोल, दूसरा कुलोत्तुंग, दूसरा राजराज, तीसरा कुलोत्तुग, तीसरा राजराज इस तरह के राजा लोग थे।

इनमें राजराज चोल की बहन कुन्दवै नामक महिला ने तिरुमल्लै में अपने नामसे जिन-मन्दिर बनवाया था। जमीन-जायदाद भी दान में दी गयी थी। राजा भी जैनधर्म के प्रति सहानुभूति रखता था।

"कोप्पेरुचोलन" नाम का राजा जैनी था। किन्तु इसके विषय में जैन -मन्दिर निर्माण आदि की कोई विशेष बात मालूम नहीं पडती। परन्तु उन्होंने अंतिम अवस्था में समाधि-सल्लेखना लेकर मरण प्राप्त किया, इसका प्रमाण मिलता है।

चेरन पेरुंचेरलादनने भी समाधि- सल्लेखना के साथ अन्तिम अवस्था निभायी। परन्तु इसके बारे में अन्य विशेष जानकारी नहीं मिलती।

स्वामी समन्तभद्राचार्य स्वयं चोलवंश के राजा थे। उन्होंने जैनेश्वरी दीक्षा लेकर कैसे जैनधर्म का प्रचार किया और अन्य धर्म का कैसा ताडन किया यह सर्वविदित है।

इसके बाद पाण्ड्य राजाओं का काल आता है। इनमें राजा "कून पाण्ड्य" जैन था। फिर वह शैव बन गया। इसीके जमाने मे शैवमतानुयायी सम्बन्धन के प्रयत्न से आठ हजार मुनिराज सूली पर चढाये गये थे। इसका विवरण प्रस्तुत ग्रन्थ के पिछले प्रकरणों में देख सकते हैं।

तमिल भाषा का अत्युत्तम नीतिग्रन्थ 'नालडियार' के जमाने का राजा पाण्ड्य जैन था। उसका यथार्थ नाम क्या था इसका पता नहीं चलता। उसके शासन काल में उसके राज्य के अन्दर हजारों जैन मुनिगण विराजमान रहते थे। इसका विवरण प्रस्तुत ग्रन्थ के नालडियार-ग्रन्थ के परिचय में देख सकते हैं।

इस तरह कई राजा लोग स्वयं जैनी थे और कई राजा लोग जैनधर्म के सहानुभूतिवर्द्धक थे। इन राजाओं के द्वारा जैनधर्म की अच्छी उन्नति की गई थी तथा मन्दिर, मूर्तिनिर्माण, मठ, दानशाला आदि का काफी निर्माण कराया गया था। इन सबके लिये धन, सोना, चांदी, जमीन आदि दान भी दिया गया था। इन सबका विवरण

प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्दर भी देख सकते हैं।

जब जैनधर्म के लिये राजाओं का सहयोग और सहानुभूति मिलना बन्द हुआ, तब से तमिलनाडु में जैनधर्म की अवनति होने लगी। साधारण जनता तो कभी इधर रहती थी और कभी उधर।

खास कर समझने की बात यह है कि जैनधर्म को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन मतवाले लोग ही अपनाते थे, तथा आचरण में लाते थे। इससे नीचे दर्जे के लोग जैनधर्म को अपनाते भी नहीं थे और अपनाना भी आसान नहीं था, क्योंकि जैनधर्म कठिण आचरण का धर्म है। इसे ऊँचे धर्मवाले ही पा सकते हैं। इसमें मधु, मद्य, मांस का त्याग करने के साथ साथ अहिंसा आदि पाँच अणुव्रतों का पालन अनिवार्य रूपसे करना पडता है। साधारण लोग इस आचरण को पालन करने के लिये तत्पर नही रहते। मदिरा आदि का सेवन तो उन लोगों के लिये सर्वसाधारण है। जैनेतर धर्मवालों ने इन सबकी (मदिरा, मांस की) छूट दे दी। इसीलिये वह धर्म भक्तिमार्ग को लेकर पनप सका। जैनधर्म वैसा नहीं हैं। इसीलिये इसकी अभिवृद्धि भारत को छोडकर अन्य देशों में नहीं हो सकी। अतः जैन धर्म का आचरण सामान्य लोगों के पास न होकर विशिष्ट लोगों के पास ही सुरक्षित रह सका। यह समझने की बात हैं।

परिशिष्ट : १

तमिलनाडु के वे गाँव/नगर जहाँ पर वर्तमान में जैन समाज है

मद्रास, कांजीपुरं, सेवूर, अनन्तपुरं, आरनि, तिरुप्पनमूर, पोन्नूर, देसूर, तेल्लार, वेण्कुट्टं, तिण्डिवनं, जिंजी, तोण्डूर, कल्लाप्पुलियूर, वलत्ति, मेलमलैयनूर, तायनूर, तोरप्पाडि, ओदलवाडि, तच्चांबाडी, पेरणमल्लूर, वालपन्दल, मेलपन्दल, कोइलांबूडि, नगरम, मोट्टूर, तच्चूर, सेदप्पेरिपालयम, नावल, वेल्लै, वेलियनल्लूर, कलवै, वेणबाक्कं, वन्दवासी, विरुदूर, नेल्यांगुलम, विल्लिवनम्, नल्लूर, एरंबलूर, मुदलूर, एलंगाड, वंगारं, सात्तमंगलम्, गुडलूर, अगर कोरक्कोट्टै, पेरिय कोरक्कोट्टै, अरुगावूर, मंजपट्टु, तेन्नात्तूर, इसा कोलत्तूर, सोलै अरुगावूर, सेन्दमंगलम्, एरुंबूर आयलपाडि, विलुक्कं, एलमगलं, अगलूर, अत्तिपाक्कं, नेमेली, वेल्लिमेडुपेट्टै, वीडूर, पेरनी, पेरावूर, उप्पुवेलूर, आलग्रामं, सेण्डियंपाक्कं, पेरमण्डूर, विलुप्पुरं, वेलूर, तंजाऊर, तंजाऊरकोट्टै, मन्नार्गुडि, दीपंगुडि, अनुमन्तकुडि, सेलं, पाण्डि, कडलूर, पणरुट्टि, कुभंकोणं

ये कुल ७९ हैं। ये गाँव भी है और शहर भी हैं। इन गाँवों में दस, बीस, पचास, सत्तर के हिसाब से जैनों के घर हैं। बहुत करके हर एक गाँव में जैन मन्दिर हैं। कहीं व्यवस्थित और अव्यवस्थित भी हैं।

अतिशय एवं पुण्य-स्थल

तिरुपरुत्तिकुन्ट्रं, आरपाक्कं, तिरुमलैं, करन्दै, पूण्डि, पोन्नूरमलै, मेलचित्तामूर, तिरुनरुकुन्ट्रं, तिरुनाथंकुन्ट्रं.

अतिशय क्षेत्र और यात्रा-स्थल

वल्लिमलै, पंचपाण्डवमलै, अरुंगुलं, सलुक्कै आलुरुट्टिमलै, नार्तमलै, तेनीमलै, सिद्धन्नावासल, नागमलै, इडबगिरि, पशुमलै, मेत्तुपट्टिमलै, करलीपट्टुमलै, तिरुप्परंकुन्ट्रं, कलुगुमलै, सिद्धरमलै, समणरमलै, विजयमंगलं, आनैमलै, महाबलिपुरं.

□ □

परिशिष्ट : २

पाठकों को आसानी से समझने के लिये तमिल भाषा में जैन आचार्यों द्वारा रचे गये ग्रंथों के विषय वर्गीकृत नाम लिखना आवश्यक समझता हूँ। इस प्रकार हैं :—

साहित्य :

(१) सिलप्पधिकारं, (२) जीवकचिन्तामणि, (३) नरिविरुत्तं, (४) पेरुंकथै, (५) चूलामणि, (६) वलयापति, (७) मेरुमन्दरपुराणं, (८) नारदचरितं, (९) शान्तिपुराणं, (१०) नीलकेशि, (११) उदयनकुमारकावियम्, (१२) नागकुमारकावियम्, (१३) नबि अगप्पोरुल, (१४) कलिंगत्तुप्परणि, (१५) यशोधरकावियं, (१६) रामगाथै, (१७) किलिविरुत्तं, (१८) एलिविरुत्तं, (१९) तत्वदर्शनं

कोश :

(१) चूड़ामणि निखण्डु, (२) दिवाकरं, (३) पिंगलन्दै,

व्याकरण :

(१) पेरहित्तयं, (२) तोलकाप्पियं, (३) नन्नूल, (४) याप्पेरुंगलं, (५) याप्पेरुंगलक्कारिकै, (६) नेमिनाथ, (७) अविनयं, (८) वेण्बा पट्टियल, (९) सन्दनूल, (१०) इन्दिरकाणियं, (११) अणियियलं, (१२) वाप्पियं, (१३) मोलिवरि, (१४) कंडियनन्नियं, (१५) काक्कै पाडियं.

नीतिग्रन्थ :

(१) तिरुक्कुरल, (२) नालडियार, (३) अरनेरिच्चारं, (४) पलमोलि नानूर, (५) सिरुपंचमूलं, (६) तिणैमाले नूट्रैंबटु, (७) आचारक्कोवै, (८) एलादि, (९) अरुंगलचेप्पु, (१०) जीवसंबोधनै, (११) औवै अगत्तिलचूडि, (१२) नानू मणिक्काडिगै, (१३) इन्ना नार्पदु, (१४) इनियवै नार्पदु, (१५) तिरिक्कडुगं, (१६) कोंगु मण्डलशतकं, (१७) नेमिनाथशतकं.

ज्योतिष ग्रन्थ :

(१) जिनेन्द्रमालै, (२) उल्लमुडैयान,

गणित ग्रन्थ :

(१) केट्टिएण चुवडि, (२) कणक्कधिकारं, (३) नल्लिलक्कवायपाडु, (४) सिरुकुलिवायप्पाडु, (५) कीलवाय इलक्क, (६) पेरुक्कल वायप्पाडु.

संगीत ग्रन्थ :

(१) पेरुंगडुगु, (२) पेरुनारै, (३) सेयिदियं, (४) भरतसेनापतियं, (५) सयन्तं.

प्रबन्ध ग्रन्थ :

(१) तिरुक्कलंबकं, (२) तिरुनूट्रन्दादि, (३) तिरुवेंबावै, (४) तिरुप्पामाले,

(५) तिरुप्पुगल, (६) आदिनाथ-पिलैत्तमिल, (७) आदिनाथर उला, (८) तिरुमेट्टिसै यन्दादि, (९) धर्मदेवि यन्दादि, (१०) तिरुनाथर कुन्द्रत्तु पत्तुप्पदिकं.

□ □

परिशिष्ट : ३

तमिलनाडु के जैन मन्दिरों की कुछ विशेषताएँ

तिरुनरुकुंट्रं

यह मन्दिर राजराज चोल की बहन कुन्दवै देवी के प्रयत्न से बनवाया गया है। "अप्पाण्डैनाथर", उला नामका एक ग्रन्थ है उसमें पार्श्वनाथ भगवान का विशेषरूप से गुणगान किया गया है। चन्द्रनाथ, पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर के पार्श्व में गुफा और १२ शय्यायें हैं। यहाँ के शिलालेख से पता चलता है कि इन्हें वीरसंघवालोंने तैयार किया है। यहाँ के मण्डप का शिलालेख इसे "मलैप्पल्लि" बतलाता है। चन्द्रनाथ भगवान का गर्भगृह और मण्डप नौंवी सदी का है। चित्रकूट-मण्डप, मुखमण्डप, अलगम्मै-मण्डप ऐसे ही मण्डप हैं। इनको बनवाने के लिये राजाओं की और श्रद्धालु, श्रीमन्तों की सहायता मिली है।

मन्दिर का नाम ही गाँव का नाम हैं। वर्तमान में गाँव साधारण है। इसे चोलराजा का शिलालेख "तिरुनरुंगोण्डै" बनलाता है। इसका नाम जिनगिरि भी है। (ARE 299/1939-40) इसका काल ७ वी या ८ वीं सदी का माना जाता हैं।

चित्तामूर

यह एक बडा गाँव है। यह तिण्डिवनं से दस मील एवं जिंजी से पाँच मील की दूरी पर है। यहाँ पर चोलराजाओं के शिलालेख मिलते हैं। इनमें राजकेशरी का शिलालेख पुराना है। आदित्यचोल का शिलालेख ई. सन ८८८ का है। बाकी शिलालेख पीछे के हैं। यह गाँव ई.९वी सदी में जैनियों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। ई. १८वीं सदी के अनन्त विजयनामक कविने इस गाँव को अप्पानाथर उलानाम के ग्रन्थ में सिद्धिनगर बतलाया है। इसका अपरनाम सिंहपुरी भी है।

तिरुमलै

तिरुमलै के अन्य नाम श्रीपुरं, वैगैमलै, "एणगुणइरैवन्कुन्टूं" (आठ गुणों के अधिनायक भगवान का पहाड) कहा गया हैं। कुन्दवै देवी जिनालय का शिलालेख (SII Vol No-98) सोपान के पास है उसमें तमिल भाषा में पद्य लिखे हुए हैं। "अलैपुरियं ......को वै" इसे आर्कोलोजिकल डिपार्टमेंट ने सुरक्षित किया है। प्रवेश द्वार के बगल का शिलालेख बतलाता है कि पोन्नूर की "नल्लाताल" नामकी महिला ने श्री विहार पोन्नेयिलनाथर नाम की प्रतिमा उत्सव के लिये दी है। भीतर के जो मण्डप हैं उनके कई शिलालेख यह बतलाते हैं कि पल्लवराज वंशकी एक देवी "इलैयमणिमंगै" ने अखण्ड दीप के लिये सोने का साठ टक्का (Coin) और जमीन दान में दी थी।

करन्दै

पुरातन पल्लवराजवंशीय नन्दिवर्मा के काल का शिलालेख (ई. ८४६-८६९) बतलाता है कि यहाँ का मंदिर उन लोगों द्वारा बनवाया गया था। ई. ११ वी सदी के शिलालेख से पता चलता है कि कुन्थुनाथ भगवान के मन्दिर का जीर्णोद्धार किया गया था। इसका ई. १६०३-१६९३ में चोलराजा वीरराजा के शासन कालमें भी जिर्णोद्धार हुआ हैं। तीसरे चोलराजा राजराजा के जमाने में करन्दै मन्दिर के लिये कई तरह के दान दिये गये थे। राजराजा के शासन काल में देवपुर के व्यापारी लोगों नें प्रातःकालीन अखण्डदीप के लिये कई दीप दानमें दिए थे। इस तरह कई लोगों ने इस मन्दिर के लिये दान दिए थे।

□ □

परिशिष्ट : ४

तमिलनाडुके जैन-व्रत और त्यौहार

नर्कोटिच व्रत

कार्तिक महिने में आखिर के अठारह दिन, पूस महिने के तीस दिन सब मिलाकर अडतालीस दिन का यह व्रत होता है। अडतालीस दिन को एक मण्डल कहते हैं। २४ दिन को आधा मण्डल कहते हैं। १२ दिन को पाव मण्डल कहते हैं। इस तरह अपनी शक्ति के माफिक पूरा, आधा, पाव मण्डल व्रत ग्रहण करते हैं। इन व्रत के दिनों में एकाशन करते हैं। मन्दिर हो तो जरूर वन्दनार्थ जाते हैं। भक्तिस्तोत्र, पाठ आदि खूब करते हैं। आखिर के दिन भगवान पार्श्वनाथ का जो अतिशयक्षेत्र मन्दिर "तिरुनरुंकुन्ड्र" में है, वहाँ जाकर पूर्ति करते हैं। याने उन लोगों का मतलब यह है कि काणुंपोंगल (संक्रान्ति का तीसरा दिन) बन्धु मित्रों से मिलने की अपेक्षा अतिशय भगवान का दर्शन करें। इस व्रत को पुरुषों में छोटे-बडे सभी करते हैं। परन्तु इसे महिलायें नहीं करतीं।

दीपावली त्योहार

यह भी सार्वजनिक त्योहार माना जाता हैं। इस दिन नहा-धोकर नये कपडे पहनते हैं और मिष्टान्न बनाकर खाते हैं। जैनी लोग जिनेन्द्र भगवान के मन्दिर जाकर भगवान महावीर निर्वाण कल्याण मनाते और अभिषेक आदि करते हैं। जैनेतर लोगों का कहना यह है कि शिवजी ने उस दिन नरकासुर को मार कर भला काम किया हैं। उसके लिये उन लोगों ने उनके पुराणकथा आदि लिख रखे हैं। उसीके यादगार में मनाते हैं।

कार्तिक त्योहार

यह त्यौहार कार्तिक माह अपर पक्ष कृत्तिका नक्षत्र के दिन मनाया जाता है। जैन लोग जैन मन्दिर में जाकर अभिषेक और पूजा आदि करने के बाद रात को भगवान मूलनायक के शिखर पर बडा दीप जलाकर रखते हैं। अन्य लोग अपने-अपने मन्दिर में दीप जलाते हैं। हर एक घर के अन्दर अच्छे ढंग से दीप जलाए जाते है। इन इन सब त्यौहारों को ईसाई और मुसलमान लोग नहीं मनाते।

पोंगल त्योहार

पूस महिने का पहला दिन याने संक्रान्ति के दिन पोंगल त्यौहार मनाया जाता है। यह तीन दिन का होता हैं। यह सामूहिक त्यौहार है। इसे जातिभेद के बिना सारे लोग मनाते हैं। पहले दिन नये बर्तन में चाँवल पकाते हैं। उसे पोंगल कहते हैं। साग-भाजियाँ खूब बनाते है। घर के सब लोग मिलकर खाते हैं। अजैन लोग सूर्य आदि देवताओं को भी नैवेद्य दिखाते हैं। यह एक तरह से किसानों का त्यौहार हैं। इस महिने में किसान लोग नया धान तैयार करते हैं। नये धान का चाँवल बनाकर भाईबन्धुओं के साथ त्यौहार के रूप मे मनाते हुए सभी मिलकर खाते हैं।

दूसरा दिन माट्टु (बैल आदि) के पोंगल का दिन हैं। उस दिन भी नया चाँवल पकाकर गाय-बैलों को नैवेद्य खिलाते हैं। यह देशीय त्यौहार हैं।

तीसरा दिन काणुंपोंगल का दिन है। काणुं पोंगल याने अपने रिश्तेदार-दोस्त आदि लोगों से मिलकर कुशल पूछते हैं। जैन लोग तिरुनरुंकुन्रू जाकर भगवान पार्श्वनाथ के सामने नर्कोटिच व्रत पूरा करते हैं। इस तरह पोंगल त्यौहार को सारे समाज के लोग बडे मजे के साथ मनाते हैं। सारे समाज का होने के कारण इस त्यौहार का महत्त्व ज्यादा हैं।

ब्रह्मोत्सव

ब्रह्मोत्सव वह कहलाता है कि जो पंचकल्याण प्रतिष्ठा के समान जैन मन्दिरों में हर साल दस दिन मनाया जाता है। यह परंपरा कर्नाटक में भी है। हर दिन सुबह-शाम दोनों वक्त भगवान का श्रीविहार (भगवान को रथ या पालकी में विराजमान कर, जैन श्रावकों की वीथियों, गलियों) में रथयात्रा होती है। श्रावक लोग अपने-अपने घर के सामने भगवान का उत्सव आने पर फल-फूल के दीप जलाकर आरती उतारते हैं। इस प्रकार चैत्र में पंचमी से लेकर पौर्णिमा तक मेलसित्तामूर (जिनकांची) में वैशाख शुद्ध में तिरुनरुंकुन्रूं में, आषाढ शुद्ध में आलग्रामं में, फाल्गुण शुद्ध में, करन्दैं, (अकलंकबस्ती) में इन चार स्थानों मे हरसाल ब्रह्मोत्सव मनाया जाता हैं। स्थानके अनुसार बहुत से जैनी लोग इसमें शामिल होते हैं, आखिर के दिन १००८ कलशों से भगवान का महाभिषेक होता हैं। इन दिनों में बाहर से आनेवाले जैनी लोगों के लिये भोजन की व्यवस्था होती हैं। एक-एक दिन एक एक श्रावक विहित (कर्तव्य) के रूप में सारा खर्च उठाकर उत्सव मनाते हैं। यह कब शुरु हुआ इसका पता नहीं चलता। बराबर चलता आ रहा हैं। यह उत्सव हरसाल एक पंचकल्याण प्रतिष्ठा के समान होता हैं।

शासन देवताओं की पूजा

चौबीस तीर्थंकर भगवानों की यक्ष-यक्षी शासनदेवतायें होती हैं। यह प्रथा आदिकाल से चलती आ रही हैं। कट्टाक की गुंफा बहुत पुरानी है। महाराजा खारवेल के जमाने की हैं। उसमें तीर्थंकर भगवान के साथ शासनदेवताओं की प्रतिमायें खोदी हुई हैं। जबलपुर के हनुमानताल के मन्दिर में एक प्राचीन प्रतिमा हैं। उस तीर्थंकर प्रतिमा के साथ यक्ष-यक्षी भी खोदी हुई हैं। इससे पता चलता हैं कि यह प्रथा अर्वाचीन नहीं हैं बल्कि प्राचीन हैं। कुछ लोग इसके खिलाफ मे हैं। वे लोग इतिहास को अच्छी तरह समझ लेंगे तो इसे स्वीकार करने में हिचकिचाहट नहीं कर सकते।

यह प्रथा क्यों हुई इसमें एक तथ्य हैं। भगवान तीर्थंकर वीतरागी हैं। वे न तो कुछ दे सकते हैं और न ले सकते हैं। उनकी भक्ति करें या न करें वीतरागी के लिये दोनों एक ही हैं। सांसारिक लोग सरागी हैं। उन्हें कर्मोदय के कारण शुभाशुभभाव हैं। उस समय शक्तियुक्त सम्यग्दृष्टि देवताओं से सहायता माँगना अनुचित नहीं हैं।

शासनदेवतायें सम्यग्दृष्टि हैं। वे सम्यग्दृष्टि मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविकाओं की सहायता कर सकती हैं और करती भी हैं। यह बात आगम में लिखी हुई है। जैसे आचार्य कुन्दकुन्द, समन्तभद्र और अकलंक आदि वीतरागी मुनिराजों के लिए शासनदेवताओं ने सहायता की हैं। सरागियों को ऐसे देवताओं से सहायता माँगना क्या अनुचित है? कदापि नहीं।

इसी दृष्टि से तमिलनाडु के जितने भी मन्दिर हैं चाहें वे प्राचीन हों या अर्वाचीन हों सारे के सारे मन्दिरों में शासनदेवता विराजमान किए जाते हैं। यह प्रथा कर्नाटक और महाराष्ट्र में भी हैं। उत्तर में पहले सब जगह थी। अब कुछ सुधारक लोगों ने परिवर्तन किया ।

तमिलनाडु के अन्दर पुरुष देवताओं में सिर्फ ब्रह्मयक्ष पूजे जाते हैं। स्त्री शासनदेवताओं में ज्वालामालिनि, कूष्माण्डिनी (धर्मदेवी) और पद्मावती पूजे जाते हैं। पूजाविधि तीर्थंकर की अलग होती हैं और शासनदेवता की अलग हैं। तीर्थंकर पूजा-विधि तो सबको मालूम हैं। शासनदेवता की पूजा अत्र आगच्छार, जलं, गंधं, अक्षतं, पुष्पं, नैवेद्यं, चरुं, फलं, वस्त्रं, आभरणं, तांबूलं इत्यादि गृहाण गृहाण इत्यादि कहकर करते हैं।

इस शासनदेवता की पूजा से तीर्थंकर की पूजा में विराधना नहीं आती। और एक बात समझने की है कि भक्तिमार्ग के जमाने में शासनदेवताओं की भक्तिपूजा नहीं होती तो साधारण जैन लोगों की अजैनों के भक्तिमार्ग में घुस जाने की संभावना थी। होती भी हैं। अमुक देवता की भक्ति करने से अमुक फल मिलता है, इस तरह का लालच दिखाने से जैनेतर मार्ग में प्रवेश होने की संभावना हैं। शासनदेवता की पूजा इसे रोक कर जैनधर्म में स्थिर करती हैं। अतः शासनदेवताओं की पूजा को अमान्य बतलाना युक्तिसंगत नहीं हैं।

परिशिष्ट : ५

तमिलनाडु में तीर्थंकर भगवान की (नित्यप्रति) पूजाविधि

तमिलनाडु के गाँवो में मन्दिरों में रोज पूजा होती हैं। श्रावक लोगों द्वारा खुद पूजा करने की परिपाटी नहीं हैं। वे केवल दर्शन करते हैं। खेती का धंधा होने से उन्हें समय भी नहीं मिलता। मन्दिर में पूजा करनेवाले को उपाध्याय कहते है। उनका लेन देन अलग ही रहता है। उनके साथ बेटी लेन देन वाला व्यवहार भी नही है। उपाध्याय लोग पूजा करते हैं और निर्माल्य खाते हैं। श्रावक लोग निर्माल्य नहीं खाते।

नित्यप्रति होनेवाली तीर्थंकर की पूजा में पंचकुमार (वास्तुकुमार, मेघकुमार आदि) देवताओं का आह्वान किया जाता है। विशेष पूजा में भी यही बात हैं। फिर प्रशस्ति बोली जाती हैं। जैसे यतध्वमधुनानिशं ..... लक्ष्मिसेन भट्टारक की तपोवृद्धि की प्रशस्ति बोलने के बाद (अर्थात् भट्टारक तपोराज्याभ्युदयार्थ सर्वलोकशान्त्यर्थ श्री वृषभस्वामिनां मंगलाभिषेक:) इस तरह कहने के बाद अभिषेक होता है। जलाभिषेक, दूध का अभिषेक, और गंधाभिपेक होता हैं। पूजा संस्कृत में होती हैं।

उपाध्याय रोज सुबह हर एक घर भगवान के अभिषेक के लिये दूध प्राप्त करने जाता हैं। प्रत्येक घर से दूध देते हैं। उसे लेकर पूजारी अभिषेक करता हैं। यह प्रथा सर्वत्र हैं।

श्रावकों का विचार यह रहता है कि अपने घर से हर रोज भगवान के अभिषेक के लिये दूध अवश्य जावें। दुग्धाभिषेक का फल मिलें। यह प्रथा आज तक प्रत्येक गाँव में चलती आ रही है। विशेष पूजा में शास्त्री लोग शामिल होते हैं। जैसे ढाई द्वीप की पूजा, सहस्त्रनामपूजा, और पंचकल्याणप्रतिष्ठा आदि। इनमें फूल-फल वगैरह चढाया जाता हैं। पूजा बडे ठाट-बाठ के साथ चलती हैं।

अष्टान्हिक पूजा

यह पूजा आषाढ, कार्तिक और फागुन के तीनों अष्टान्हिक समय पर बराबर होती हैं। इसमें नन्दीश्वर, महामेरु आदि अकृत्रिम चैत्यालय जिनबिंबों की पूजा होती हैं। श्रावकों को निश्चित किया हुआ रहता है कि अमुक दिन अमुक व्यक्ति को करना है। उसीके अनुसार करते हैं और बराबर चलता हैं। यह विशेष पूजा के अन्तर्गत आती हैं।

दशलक्षण / पर्यूषण पूजा

यह पूजा तामिलनाडु भर में नहीं है। मेरे ख्याल से कर्नाटक में भी नहीं हैं। मैने एक लेख पं. कैलाशचन्द्रजी शास्त्री के जमाने में 'जैन सन्देश' में लिखा था जिसमें इन बातों का जिक्र किया था कि पर्यूषण को किसी विशिष्ट व्यक्तिने चलाया है। व्रत विधान के अन्दर इसका जिक्र नहीं है। इसलिए वह केवल उत्तर प्रान्तीय पर्व के रूप में रह गया है। यदि शास्त्रीय रूपमें होता तो सारे भारत में होता। परन्तु इस को मनाना अनुचित नहीं है। इससे धर्म का प्रचार खूब होता है। मेरे लेख को पंडितजीने आदर के साथ प्रकाशित किया था। किसी ने उस का विरोध या खंडन नहीं किया था।

परिशिष्ट : ६

सामाजिक रिवाज

बच्चों को पहले पहल मुण्डन कराना और कर्णछिद्र कराना इन कार्यों को तिरुनरुंकुन्ड्रं –अतिशय पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर, तथा आर्पाक्कं, अतिशय आदिनाथ भगवान का मन्दिर, इन दो मन्दिरों में कराते हैं। उस समय भगवान का अभिषेक वगैरह किया जाता हैं। साथ में मनौति भी करते हैं कि अमुक कार्य में सफलता मिल जाय तो आपकी सन्निधि में आकर पूजा भक्ति करेंगे। इसमें फल मिलता हैं या नहीं, वह बात अलग हैं। कुछ लोगों को फल मिलता भी हैं। इस तरह की प्रथा बहुत दिनों से चलती आ रही हैं। जैनेतर लोग इस कार्य को तिरुप्पति बालाजी के मन्दिर में जाकर करते हैं। जैन लोग वहाँ नहीं जाते, अपने ही मन्दिर में जाते हैं। यह विशेषता हैं।

विवाह-पद्धति

विवाह जैनों में पहले तो चार दिनों तक चलता था। अब एक दिन का हो गया हैं। पहले पहल जन्मकुण्डली देख कर विवाह निश्चित किया जाता हैं। वर-वधू के पक्ष के लोग मिलकर सम्बन्ध होने का कार्यक्रम किया करते हैं। शादी लडके के यहाँ पहले होती थी। परन्तु अब लडकी के यहाँ भी होने लगी हैं। हवन होता हैं। वर-वधू को बिठाकर मांगल्यधारण (वर, वधू के गले मे बांधना) होता हैं। उसके लिये कुछ प्रान्तीय रीति रिवाज होता है। विवाह पुजारी (उपाध्याय) कराता है। जैनोंके अन्दर ही लेन-देन होता हैं, अजैनों से नहीं। गोत्र होता है। भिन्न गोत्र में ही लडकी दी जाती है, सगोत्र में नहीं। उसमें बन्धु बान्धव लोग इकट्ठे होते हैं। ठाट-बाठ से भोजन होता हैं।

मृत्यु के बाद की क्रियायें

मरण को सुगति-प्राप्ति कहा जाता हैं। शव को जलाते हैं। यह क्रिया श्मशान में होती हैं। दस दिनों तक सूतक (पूजा आदि सत्कार्य न करना) माना जाता हैं। मरण के दूसरे दिन श्मशान में क्षीरसेचन क्रिया होती हैं। दसवें दिन दशाहसु (उपाध्याय से कुछ विधि कराना) क्रिया की जाती हैं। दस दिनों तक ज्ञाति (कुटुम्ब के लोग) धार्मिक क्रिया में शामिल नहीं होते। इन दिनों को अशुभ दिन माना जाता हैं।

ग्यारहवे दिन घर पर हवन क्रिया की जाती हैं। उसके बाद मन्दिर जाकर भगवान का अभिषेक आदि करते हैं। उसके बाद ही उस कुटुम्बवाले और ज्ञातिलोग (सगोत्रवाले) धार्मिक कार्य में शामिल होते हैं।

रहन-सहन

पुरुष लोग साधारणरूप से चार हाथ लम्बी धोती पहनते हैं। ऊपर एक छोटासा कपड़ा डालते हैं। महिलायें बारह या सोलह हाथ लम्बी साडियाँ पहनती हैं। घूँघट नहीं डालती। घूँघट डालना अशुभ माना जाता है। महिलाओं का चेहरा खुला रहता है। कुछ इतिहासकर्त्तों का कहना है कि उत्तर में सिर पर कपड़ा डालकर चेहरा छिपाने की प्रथा महिलाओं में मुसलमान लोगों के कारण आयी है। मद्रास प्रान्त समशीतोष्ण

रहने के कारण ओढनें आदि के लिए ज्यादा कपडे और बिस्तर आदि की जरूरत नहीं पडती। गरमी के समय में लोग जमीन पर ही सो जाते हैं। बरसात या ठंड (साधारण) के समय में चारपाई पर तकिया लगाकर सो जाते हैं। कपडे के लिये ज्यादा खर्च नहीं करना पडता। नौजवान लोग पेंट-शर्ट पहनते हैं। परन्तु सादगी ज्यादा है।

खान-पान

सारे जैन लोग शाकाहारी होते हैं। गाँवों मे जैनियों की बीथी गली (जाने-आने का रास्ता) अलग होती है। वहाँ माँस और मछ्ली बेचनेवाले भी नहीं आते। यदि आने लगेंगे तो अजैन लोग यह कह कर उन्हें रोक देते हैं– 'वहाँ मत जाओ, क्योंकि वहाँ नैनारों (जैनियों) के घर हैं। वे लोग माँस-मछ्ली नहीं खायेंगे। अतः वे लोग नहीं खरीदेंगे। बेकार क्यो जाते हो?'

जैन लोगों में मदिरा पीने की आदत भी नही हैं। वे उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। शाकभाजी लौकी को साधारण से साधारण जैनी भी नहीं खाता। यही प्रथा है। शायद बहुबीज के कारण ही उसका त्याग किया गया हो। परन्तु उत्तर में तो मुनियों को भी देते हैं। जैनी लोग कन्द-मूल खाते नहीं हैं। आजकल के नवयुवक आदि लोगों की बात दूसरी हैं। प्याज आदि का उपयोग भी उनमें नहीं होता।

यहाँ के लोग चाँवल ज्यादा खाते हैं। तमिलनाडु का इडली-सांभार, दोसा दुनियाँ में मशहूर हैं। इसे उत्तरवाले भी चाव से खाते हैं। हलका खाना है। आसानी से हजम हो जाता हैं। इडली आदि नाश्ता कहलाता हैं। दोपहर को शाक-भाजी के साथ भोजन करते हैं। रात में चाँवल खाने की प्रथा नहीं हैं। नाश्ता में दूध आदि लेते हैं। वृद्ध लोग कुछ भी नहीं लेते। यहाँ तक कि पानी तक नहीं पीते।

व्रत-पालन

तमिलनाडु की दिगम्बर जैन महिलायें बहुत से व्रत पालती हैं। यथाशक्ति पुरुष लोग भी पालन करते हैं। परन्तु पुरुषों की अपेक्षा नारियाँ इसमें ज्यादा दिलचस्पी लेती हैं। उन व्रतों के नाम इस प्रकार हैं–

जैसे- अनन्तव्रत, दीपावली व्रत, जीवदयाष्टमी व्रत, सौभाग्य व्रत, मंगलवार व्रत, शुक्रवार व्रत, आदित्यवारव्रत, कल्याणमाले व्रत, श्रुतपंचमी व्रत, रत्नत्रय व्रत, सप्तज्योति व्रत, शिवरात्रि व्रत, षोडसभावना व्रत, चक्रवाल व्रत, कर्मदहन व्रत, जिनगुणसंपत्ति व्रत, सिद्धचक्रव्रत, नन्दीश्वर व्रत, भक्तामर व्रत, कल्याण मन्दिर व्रत आदि।

इन व्रतों का विधान ताडपत्र में हैं। उसीके आधार से पालते हैं। अनन्तव्रत का पालन चौदह साल करना होता है। पर्यूषण के त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को अनन्तव्रत होता हैं। व्रत के दिन नहा धोकर मन्दिर जाते हैं। पूजापाठ होने के बाद व्रत ग्रहणकर घर आकर पहले दिन सिर्फ एकबार भोजन करते हैं। दूसरे दिन उपवास रहता है। तीसरे दिन एकाशन रखते हैं। तीनों दिन मन्दिर में जाते हैं। यही दीपावली के समय पर भी आता है। सभी व्रतों का दिन निश्चित रहता हैं। जैसे विधान में कहा गया हैं, इसीके अनुसार निश्चित दिन पालन करते हैं। भक्तामर व्रत और कल्याण मन्दिर

व्रतों का मद्रास शहर में साठ-सत्तर महिलायें धारण करती हैं। तमिलनाडु में व्रत पालने की परिपाटी इस तरह होती है। उस दिन मन्दिर जाकर व्रत धारण करते हैं। उपाध्याय व्रत धारण का मंत्र पढ़ता है। लोग नतमस्तक होकर उसे ग्रहण करते हैं।

□ □

परिशिष्ट : ७

तमिलनाडु के जैन मंदिरों की व्यवस्थाएँ

जैन मन्दिरों की व्यवस्था गाँव के लोगों के हाथों में रहती है। हर मन्दिर के लिये जमीन रहती है। उसकी आमदनी से पुजारी को धान दिया जाता है। इसकी देखभाल करने के लिए धर्मकर्ता की नियुक्ति की जाती हैं। इसे हरसाल बदलते हैं। (चार-पाँच सालों से बरसात के अभाव के कारण व्यवस्था में गडबडी रही हैं।)

मन्दिर बनाने की पद्धति

तमिलनाडु का जैन मन्दिर गर्भगृह, अर्धमण्डप, महामण्डप आदि की पद्धति से बनाया जाता है। सबसे आगे मानस्तंभ रहता है। जिस मन्दिर में ब्रह्मोत्सव होता है उसमें ध्वजस्तंभ भी रहते है। गर्भगृह में मूलनायक रहता है। महामण्डप में बाकी प्रतिमायें रखी जाती हैं। हर मन्दिर में शिलाबिब के साथ पंचलोह के बिंब भी रहते हैं। नन्दीश्वर, महामेरु आदि बिम्ब भी रहते हैं।

गोपुर चौकट के रूप में बनाया जाता है। वह कलात्मक रहता हैं। चारों तरफ चतुर्मुख जिनबिंब रखे जाते हैं। गोपुर ऊँचा बनाया जाता है। इसका मतलब यह हैं कि बाहर से या दूर से मन्दिर के शिखर को देखकर भगवान का स्मरण और नमन करें। चित्तामूर (जिनकांचि) का गोपुर देखने लायक है। यहाँ का गोपुर सात मंजिल का हैं। गोपुर में चित्रकारियाँ ज्यादा रहती हैं। वे देखने में सुन्दर लगते हैं। अजैनों के मन्दिर भी ऐसे ही होते हैं। बहुत करके दोनों के मन्दिर बनाने की पद्धति एक सी हैं।

□ □

प्राक्कथन लेखन में सहायक ग्रन्थ

१. समणमुं तमिलुं : लेखक, मयिलै सीनु वेंकटस्वामी.

२. तमिलर वीट्टिच : लेखक, नील दुरैक्कणन.

३. कलवेट्टिल समणं : लेखक, डा. एकाम्बरनाथन.

४. आचार्य निर्मलसागरजी की तमिलनाडु-विजय : लेखक, निर्मलसागर संघ.

५. समण काप्पियंगल : डा. सुनन्दा देवी.

६. विजय मंगलं : जीवबन्धु टी. एस्. श्रीपाल.

७. करन्दै वरलारु : डा. एकाम्बरनाथन्.

८. चित्तामूर वरलारु : डा. एकाम्बरनाथन्.

९. तिरुनरुंकुन्ट्रं वरलारु : डा. एकाम्बरनाथन्.

१०. तमलगमुं जैन इलक्कियमुं : जीवबन्धु टी. एस्. श्रीपाल.